डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक चेतना

DR. RAMESH POKHARIYAL 'NISHANK' KE UPANYASON MEIN LOK CHETANA

(मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल के हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी

(पी-एच. डी.) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

A THESIS SUBMITTED IN PARTIAL FULFILLMENT OF THE REQUIREMENTS FOR THE DEGREE OF DOCTOR OF PHILOSOPHY

मेरी आर. ललरिनमुआनपुई

MARY R. LALRINMUANPUII

MZU REGN.NO: 1906479

Ph.D. REGN. NO.: MZU/Ph.D./1805 of 25.08.2021

हिंदी-विभाग

मानविकी एवं भाषा संकाय

DEPARTMENT OF HINDI

SCHOOL OF HUMANITIES AND LANGUAGES

फरवरी, 2025

FEBRUARY, 2025

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक चेतना

DR. RAMESH POKHARIYAL 'NISHANK' KE UPANYASON MEIN LOK CHETANA

अनुसंधित्सु

मेरी आर. ललरिनमुआनपुई

हिंदी-विभाग

BY

MARY R. LALRINMUANPUII

DEPARTMENT OF HINDI

शोध-निर्देशक

वरिष्ठ आचार्य सुशील कुमार शर्मा

SUPERVISOR

SENIOR PROFESSOR SUSHIL KUMAR SHARMA

मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल के मानविकी एवं भाषा संकाय के अंतर्गत हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पी-एच. डी.) की उपाधि के लिए अपेक्षित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

Submitted
In partial fulfillment of the requirement of the Degree of Doctor of Philosophy in Hindi of Mizoram University, Aizawl

प्रो. सुशील कुमार शर्मा
वरिष्ठ आचार्य (लेवल-15)
हिंदी विभाग
मिज़ोरम विश्वविद्यालय
आइज़ोल-796004

केंद्रीय विश्वविद्यालय
A Central University
(Accredited by NAAC with 'A' Grade)

Prof. Sushil Kumar Sharma
Senior Professor (Level-15)
Department of Hindi
Mizoram University,
Aizawl-796004

Mobile No. 09436105977;09366112421; Email: sksharma19672@gmail.com ; Website : www.mzu.edu.in

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि मेरी आर. ललरिनमुआनपुई ने मेरे निर्देशन में मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल की डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पी-एच.डी.) हिंदी की उपाधि हेतु **'डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक चेतना'** विषय पर शोध-कार्य किया है। प्रस्तुत शोध-कार्य अनुसंधित्सु की अपनी निजी गवेषणा का फल है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, प्रस्तुत शोध-प्रबंध या इसके किसी भी अंश को किसी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी प्रकार की उपाधि हेतु अद्यावधि प्रस्तुत नहीं किया गया है।

मैं प्रस्तुत शोध-प्रबंध को मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल की डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पी-एच.डी.) हिंदी की उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

(प्रो. सुशील कुमार शर्मा)

शोध-निर्देशक

हिंदी-विभाग
मिज़ोरम विश्वविद्यालय
आइजॉल
फरवरी, 2025

घोषणा-पत्र

मैं मेरी आर. ललरिनमुआनपुई एतद् द्वारा घोषणा करती हूँ कि प्रस्तुत शोध-प्रबंध की विषय सामग्री मेरे द्वारा किए गए शोध-कार्य का सुपरिणाम है। इस शोध-सामग्री के आधार पर न तो मुझे और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, न किसी अन्य को कोई उपाधि प्रदान की गयी है और न ही यह शोध-प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय या संस्थान में प्रस्तुत किया गया है। इस शोध-प्रबंध लेखन के दौरान जिन ग्रंथों की सहायता ली गयी है, उसे समुचित रूप से उद्धृत किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल के सम्मुख हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पी-एच. डी. – हिंदी) की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

(प्रो. सुशील कुमार शर्मा)	(प्रो. सुशील कुमार शर्मा)	मेरी आर. ललरिनमुआनपुई
अध्यक्ष	शोध-निर्देशक	अनुसंधित्सु

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन : i – iv

प्रथम अध्याय: डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 1 – 55

(क) डॉ. निशंक का व्यक्तित्व
(ख) डॉ. निशंक का कृतित्व

द्वितीय अध्याय: लोक और लोक चेतना : स्वरूप विवेचन 56 – 83

(क) लोक : अर्थ, परिभाषा और स्वरूप

(ख) लोक चेतना : अवधारणा एवं आयाम

तृतीय अध्याय: डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में

लोक चेतना : विविध आयाम 84 – 120

(क) सामाजिक चेतना (ख) राजनीतिक चेतना

(ग) धार्मिक चेतना (घ) आर्थिक चेतना

(ङ) सांस्कृतिक चेतना

चतुर्थ अध्याय: डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में

लोक : परिवर्तित स्वरूप 121 – 170

(क) सामाजिक परिवर्तन (ख) राजनीतिक परिवर्तन

(ग) धार्मिक परिवर्तन (घ) आर्थिक परिवर्तन

(ङ) सांस्कृतिक परिवर्तन

पंचम अध्याय: डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों की भाषा-शैली **171 – 188**

(क) भाषा

(ख) शैली

उपसंहार: **189 – 205**

संदर्भ ग्रंथ-सूची: **206 – 211**

प्रथम अध्याय

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक': व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(क) डॉ. निशंक का व्यक्तित्व:

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' का जन्म 15 जुलाई, 1959 को ग्राम पिनानी, पट्टी घुड़दौड़स्यूँ पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखण्ड) में हुआ था। डॉ. निशंक के जन्म के समय उनकी जन्मभूमि की जनसंख्या कुल 600 थी। इस ग्राम के चारों ओर प्रकृति प्रदत्त हरीतिमा है। यह समूची भूमि देवभूमि है। हिमालय की सुरम्य पर्वतमाला से आवेष्टित है। डॉ. निशंक का यह उत्तराखण्ड प्रदेश 9 नवम्बर, 2000 को देश का 27 वाँ राज्य बना था। उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश से पृथक होकर हिन्दुओं का सर्वाधिक श्रद्धापरक प्रदेश है।

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' का ग्राम पिनानी का जिला पौड़ी गढ़वाल है। इसका अपना एक इतिहास है। हिन्दू धर्म ग्रंथों में दो प्रसिद्ध तीर्थों का उल्लेख है– केदारखण्ड और मानसखण्ड। आज ये दोनों स्थल क्रमश: गढ़वाल और कुमाऊँ के नाम से अभिहीत हैं। केदारखण्ड में अनेक रियासतें थीं, जिनका आकार छोटा-छोटा था। इनके अपने-अपने गढ़ थे। इन अनेक गढ़ों के अलग-अलग राजा थे। पवार वंश के राजा ने इन राजाओं पर विजय प्राप्त की और बृहद गढ़वाल राज्य की नींव रखी। श्रीनगर को गढ़वाल राज्य की राजधानी बनाया गया। समय परिवर्तन के साथ गढ़वाल नाम प्रसिद्ध हो गया और केदारखण्ड अतीत की संज्ञा बन गया।

सन् 1803 में नेपाल की गोरखी सेना ने गढ़वाल पर हमला कर दिया। इस हमले में गढ़वाल राजा पराजित हो गया। गढ़वाल के राजा ने अंग्रेजों से सहायता की याचना की। सन् 1815 में नेपाल की सेना को अंग्रेजों ने पराजित कर दिया। अंग्रेजों ने गढ़वाल राजा से सहायता के बदले भारी राशि की माँग की। इतनी क्षमता राजा के पास नहीं थी। परिणाम यह

हुआ कि अंग्रेजों ने समूचे गढ़वाल राज्य को दो भागों में विभक्त कर दिया। एक भाग अर्थात अलकनन्दा-मन्दाकिनी का पूर्वी भाग अंग्रेजों ने ले लिया। टहरी का भू भाग गढ़वाल नरेश के पास रहा। तत्समय में टहरी छोटा सा ग्राम था। इसी टहरी को महाराज सुदर्शन शाह ने सन् 1815 में गढ़वाल की राजधानी बनाया और इसका विकास किया।

महाराज सुदर्शन शाह के पश्चात राज्य की गद्दी पर महाराज नरेन्द्र शाह आसीन हुए। इन्होंने ओड़ाझली नामक स्थान पर अपने नाम से नरेन्द्र नगर ग्राम स्थापित किया। कालान्तर में टहरी के स्थान पर इन्होंने इसी ग्राम को अपनी राजधानी बनाया। उस समय वर्तमान चमोली और रुद्रप्रयाग जिले के अगस्त्य मुनि तथा उखीमठ विकासखण्ड का भाग पौड़ी गढ़वाल के नाम से जाना जाता था। सन् 1947 में देश स्वतन्त्र हुआ। सन् 1960 के आसपास गढ़वाल जिले से चमोली जिले का गठन हुआ। सन् 1969 में गढ़वाल मण्डल पौड़ी मुख्यालय के साथ गठित हुआ। वर्तमान पौड़ी गढ़वाल जिला सन् 1998 में गठित हुआ था।

इस पौराणिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की सुषमा मण्डित धरा से डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' का जीवन्त सम्बन्ध है। डॉ. निशंक का जीवन अत्यन्त संकटों में व्यतीत हुआ। ऐसे व्यक्तियों के लिए ही राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'पंचवटी' में लिखा है–

जीतने कष्ट कंटकों में है
जिनका जीवन-सुमन खिला।
गौरव-गंध उन्हे उतना ही
यत्र-तत्र-सर्वत्र मिला।।[1]

डॉ. निशंक के पिता का नाम श्री परमानन्द और माता का नाम श्रीमती विश्वम्भरी देवी था। दोनों ने डॉ. निशंक को अपना सम्पूर्ण वात्सल्य प्रदान किया। उनका विवाह कुसुमकान्ता से हुआ। उनके तीन सुपुत्रियाँ हैं– आरुषि निशंक, श्रेयसी निशंक और विदुषी निशंक।

डॉ. निशंक के ग्राम पिनानी में शिक्षा की समुचित शिक्षा का अभाव था। 'शिक्षा की समुचित शिक्षा' शब्दों का दोहराव मात्र नहीं है। इसे 'समुचित शिक्षा का अभाव' भी लिखा जा सकता था। पर 'शिक्षा की समुचित शिक्षा' से तात्पर्य है– शिक्षा का स्तर, उच्च शिक्षा और अनुसंधान। पिनानी ग्राम उनसे वंचित था। पिनानी में प्राथमिक (कक्षा 5) तक ही शिक्षा की उपलब्धता थी। बालक निशंक ने माता-पिता के कामों में सहयोग करते हुए यह सीढ़ी पार कर ली।

पिनानी से सात किलोमीटर दूर था ग्राम दमदेवल। पिनानी से दमदेवल का मार्ग ऊँचाई पर और घोर वन से होकर जाता था। सदैव वनैले पशुओं का भय बना रहता। स्नेहमयी माँ अपने रमेश को आगे पढ़ने के लिए इन कारणों से दमदेवल नहीं भेजना चाहती थीं। परन्तु अपने बालक की पढ़ाई के प्रति उत्कट ललक को वे रोक नहीं सकीं। फलतः डॉ. निशंक का प्रवेश दमदेवल के सरकारी स्कूल में कक्षा छह में हो गया। किशोर निशंक प्रतिदिन बिना जूते, नंगे पाँव गाँव से दमदेवल जाते, वापस आते, अपना गृहकार्य पूरा करते, पशुओं को घास लाते और घर के चूल्हे के लिए लकड़ी जुटाते। बरसात के दिनों में माँ के हजार बार रोकने पर भी उनकी शिक्षा-यात्रा रुकी नहीं। उफनते नाले को पार कर ये विद्यालय पहुँचते। एक बार इसी दुस्साहस के कारण एक उफनते नाले में बह गये। लोगों ने बचाया। चोटिल हुए। परन्तु दूसरे दिन दुगने उत्साह से फिर वे विद्यालय में उपस्थित!!

केवल शारीरिक अथवा भौतिक संकटों ने डॉ. निशंक को पराजित करने का प्रयास नहीं किया। अर्थाभाव ने भी इनका मनोबल तोड़ने का प्रयास किया। परन्तु डॉ. निशंक की दृढ़ इच्छाशक्ति के सम्मुख यह बाधा भी परास्त हो गयी। आर्थिक विवशता के कारण इनके माता-पिता इन्हें आगे पढ़ाने के पक्ष में नहीं थे। किशोर निशंक ने यहाँ भी अपना पुरुषार्थ सिद्ध किया। कक्षा छह से इन्टरमीडिएट तक की शिक्षा के लिए उनकी संघर्ष गाथा उनके निज सचिव डॉ. बेचैन कण्डियाल के शब्दों में यथावत् है:

“अपनी स्कूल की फीस का खर्चा जुटाने के लिए बालक निशंक ने घर में मौजूद एक पुराने टीन के बक्से में दुकान भी चलाई। वे स्कूल से आते वक्त दमदेवल से टाफी, लैमनजूस, सुपारी, स्याही की टिकिया, साबुन, माचिस, मूँगफली, गुड़, चायपत्ती आदि रोजमर्रा के प्रयोग की वस्तुएँ उधार ले आते और उन्हे उस बक्से में दुकान के रूप में सहेज कर उसकी बिक्री करते। लाला को सप्ताह भर में उधार का पैसा चुकाते और मुनाफे से प्राप्त पैसों से वे अपने लिए फीस, कॉपी-किताबें और कपड़े जुटाते।

छठवीं कक्ष से ही डॉ. निशंक ने अपनी माँ के साथ अपने खेतों में हल चलाना शुरू कर दिया था। घर और खेती का तमाम कार्य निपटाने के पश्चात् वे रात को अपनी पढ़ाई करते। उन दिनों बिजली तो दूर-दूर तक नहीं थी। कैरोसीन की डिबिया (ढिबरी) जलाना भी उनकी गरीब माँ की पहुँच से बाहर था। डॉ. निशंक चीड़ के पेड़ों से लीसायुक्त लकड़ी (छिल्ला) जलाकर अपनी पढ़ाई करते। एक हाथ में जलता हुआ छिल्ला और दूसरे हाथ में किताब पकड़कर वे अपना पाठ याद करते। हाईस्कूल तक डॉ. निशंक को यह तक पता नहीं था कि बिजली का बल्ब कैसा होता है?

हाईस्कूल की परीक्षाओं का समय जब निकट आया तो बोर्ड की परीक्षाओं की चिन्ता डॉ. निशंक को सताने लगी। गाँव से इतनी दूर दमदेवल आने जाने में ही सारा समय खत्म हो जाता और फिर पैदल चलने की थकान तथा घर के काम अलग से। डॉ. निशंक ने माँ से आग्रह किया तो माँ ने दमदेवल में रहने की इजाजत दे दी, किन्तु पैसों के अभाव में कौन कमरा देता? दमदेवल में ही घोड़ों के रहने की एक झोपड़ी, जो कुछ दिन के लिए खाली थी, अनुनय-विनय करने पर उन्हें मिल गई। अपना एक बिछौना लेकर वे वहाँ आ गये। सफाई भी की, लेकिन नीचे तो गोबर की परतें थीं। उन परतों से गुबरैल कीड़े निकल निकल कर बिछौने तक आ जाते। किसी तरह एक महीना काट कर अपनी पढ़ाई करते हुए उन्होंने हाईस्कूल पास किया।

गाँव में उनके दो कमरों के उस छोटे से मकान के निचले हिस्से में जानवर बँधे रहते और ऊपर के कमरे में निवाड़ की दो सुलानुमा चारपाई पड़ी रहतीं। इसी में एक चारपाई पर माँ लेटती और दूसरे पर डॉ. निशंक। पहाड़ी पत्थरों की स्लेटों में ढकी हुई छत जब बरसात में टपकने लगती तो वे छत पर लकड़ियों के सहारे बरसाती बाँध लेते।

गाँव स्थित उनका मकान आज भी जस का तस है। हालाँकि उन्होंने उसी की बगल में एक नया मकान बना लिया है। डॉ. निशंक ने अब तक बराबर अपने गाँव में आना-जाना जारी रखा है। गाँव के लोग बताते हैं कि वे आज भी गाँव आते हैं तो अपने इसी पुराने मकान के उसी कमरे में रुकते हैं। ऐसा करने से उन्हें आत्मिक सुख की अनुभूति होती है। सादा कुर्ता-पायजामा और जैकिट– ये उनका पहनावा रहता है। सदैव मुसकुराता हुआ चेहरा सहज ही दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। डॉ. निशंक आज के विषम वातावरण में अपनी आदर्श और त्याग की छवि लिए निरन्तर आगे बढ़ रहे हैं।

डॉ. निशंक ने किसी प्रकार हाईस्कूल तो कर लिया लेकिन धन के अभाव में वे अपनी स्कूली शिक्षा आगे न बढ़ा सके। डॉ. निशंक ने पढ़ाई के लिए रोना-धोना शुरू किया। तब उन्हें गाँव से दूर हरिद्वार के एक आश्रम में भेज दिया गया, जहाँ उन्होंने आश्रम का जीवन शुरू किया। आश्रम के सारे काम काज कर वे संस्कृत पढ़ने लगे। इन्टरमीडिएट करने के बाद उनका झुकाव अध्यात्म की ओर हो गया और वे हिमालय की यात्रा के लिए उत्तरकाशी होते हुए गंगोत्री के लिए निकल पड़े।"[2]

डॉ. निशंक अध्यात्म में प्रवेश कर सांसारिकता से मुक्त हों, इसके पूर्व ही इनके जीवन में एक घटना घटित हो गई। इस घटना के पश्चातवर्ती जीवन के संबंध में डॉ. बेचैन कण्डियाल लिखते हैं–

"गंगोत्री से पूर्व हर्षिल में उन्हें अपने गाँव के एक मित्र श्री हरेन्द्र गुसाई मिल गये, जो उस समय सरस्वती शिशु मन्दिर, उत्तरकाशी में आचार्य थे और हर्षिल में सेना में तैनात अपने

किसी रिश्तेदार गोविन्द सिंह गुसाई के पास आये थे। हरेन्द्र उन्हें यह कहकर वापस उत्तरकाशी ले आये कि कुछ दिन बाद दोनों लोग साथ ही यात्रा पर चलेंगे। उन दिनों सरस्वती शिशु मन्दिर के एक आचार्य छुट्टी पर चल रहे थे। प्रधानाचार्य श्री हरिचरण चतुर्वेदी जी ने डॉ. निशंक से आग्रह किया कि वे कुछ दिन छात्रों को पढ़ा लीजिए। डॉ. निशंक मान गये और छात्रों को पढ़ाना शुरू किया। यही डॉ. निशंक के जीवन का एक सम्वेदनशील पड़ाव था। सरस्वती शिशु मन्दिर में अध्यापन कार्य करते हुए वे यहीं पर रम गये। उन्हें दो सौ बत्तीस रुपये मासिक पर शिक्षकीय दायित्व प्राप्त हुआ। इससे उनकी आर्थिक समस्या कुछ अंश तक हल हुई। परन्तु सन् 1984 में इन्होंने इस पद से स्वैच्छिक अवकाश ले लिया।"[3]

लेखन-प्रकाशन में उनकी रुचि प्रारम्भ से रही। इसकी पूर्ति हेतु इन्होंने पौड़ी से वर्ष 1985 में एक प्रकाशन संस्था– 'निशंक प्रकाशन' प्रारम्भ किया।[4] इस संस्था से इन्होंने एक दैनिक समाचार पत्र– 'सीमांत वार्ता' निकालना प्रारम्भ किया।[5]

कवि हृदय अटल बिहारी वाजपेयी जी का इन पर इतना गहरा प्रभाव था। डॉ. निशंक जी के राजनीति में आने का कारण अटल जी की प्रेरणा बनी। अविभाजित उत्तर प्रदेश की कर्ण प्रयाग विधान सभा क्षेत्र से भारतीय जनता पार्टी ने उन्हें अपना प्रत्याशी बनाया। सन् 1991 में सम्पन्न इस विधान सभा चुनाव को जीत कर डॉ. निशंक प्रथम बार विधायक बने। एक बार जन सेवा का जो अवसर इन्हें प्राप्त हुआ, तो निरन्तर जारी रहा। उत्तर प्रदेश विधान सभा में लगातार तीन बार इन्होंने अपने क्षेत्र की जनता का प्रतिनिधित्व किया। डॉ. निशंक उत्तर प्रदेश विधान सभा में दो बार केबिनेट मंत्री रहे। उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री कल्याण सिंह के मंत्रिमण्डल में सन् 1997 में इन्हें पर्वतीय विकास विभाग का दायित्व सौंपा गया। सन् 1999 में राम प्रकाश गुप्त के मंत्रिमण्डल में डॉ. निशंक को संस्कृति, आपूर्ति एवं राजस्व विभाग का मंत्री बनाया गया।

देश के विभिन्न क्षेत्रों से पृथक राज्य निर्माण हेतु आन्दोलन चल रहे थे। इनमें उत्तराखण्ड राज्य की भी एक माँग थी। वर्ष 2000 में भारत के मानचित्र पर नये प्रदेश का नाम उभरा– उत्तराखण्ड। नवोदित राज्य उत्तराखण्ड के प्रथम मुख्यमंत्री बने– नित्यानन्द स्वामी। इनके मंत्रिमण्डल में डॉ. निशंक को वित्त, राजस्व एवं नियोजन सहित बारह विभागों का केबिनेट मंत्री बनाया गया। पृथक उत्तराखण्ड राज्य के आन्दोलन में डॉ. निशंक की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए इन्हे राज्य के पाँचवे मुख्यमंत्री के रूप में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुए। इस पद पर ये 27 जून, 2009 से 11 सितम्बर, 2011 तक रहे।

अपने दल के आदेश पर इन्होंने वर्ष 2014 में डोईवाला विधान सभा क्षेत्र से त्यागपत्र दिया और हरिद्वार लोक सभा सीट से लोक सभा का चुनाव लड़ा। इस चुनाव में डॉ. निशंक पौने दो लाख मतों से विजयी हुए। केन्द्र सरकार में ये 31 मई, 2019 से 7 जुलाई, 2021 तक मानव संसाधन विकास मंत्री रहे।

डॉ. निशक का व्यक्तित्व अत्यन्त सहज और सौम्य है। अन्य राजनेताओं की भाँति उनसे मिलने वालों को लम्बी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। एक साधारण-से-साधारण व्यक्ति भी उनसे बिना रोक-टोक और बिना पर्ची के मिल सकता है। अत्यन्त मृदुभाषी और संवेदनशील डॉ. निशंक के हृदय में सदा ही जन सेवा की भावना रहती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण वर्ष 2010 में उत्तराखण्ड में आयी भीषण बाढ़ में देखने को मिला। डॉ. निशंक अपनी सारी सुख सुविधाएँ छोड़कर स्वयं मैदान में आ डटे । राहत पुनर्वास तथा हैलीकॉप्टर से राशन व दवाइयाँ आदि राहत शिविरों में पहुँचाने का समस्त कार्य अपने नेतृत्व में कुशलता पूर्वक सम्पन्न कराया। इस कार्य हेतु उन्हें कुम्भ 2010 का नोबुल पुरस्कार के लिए नामित किया गया था।

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' को उनके विशिष्ट साहित्यिक अवदान के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित किया गया:

1. हिन्दी यूनिवर्स फाउंडेशन, नीदरलैंड - अंतर्राष्ट्रीय साहित्य भूषण
2. वालायन अंतर्राष्ट्रीय शिखर सम्मान - लंदन

3. अंतर्राष्ट्रीय साहित्य गौरव सम्मान - कनाडा
4. अंतर्राष्ट्रीय 3 जी अवार्ड - कनाडा, जर्मनी, यू.एस.ए.
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 - केम्ब्रिज विश्वविद्यालय
6. अंतर्राष्ट्रीय स्वर्ण पदक – हॉलैन्ड
7. प्रवासी सम्मान - कुवैत
8. गोपियो अंतर्राष्ट्रीय असाधारण उपलब्धि सम्मान - फ़्रांस
9. अंतर्राष्ट्रीय असाधारण उपलब्धि सम्मान - मॉरीशस
10. इन्वायरमेंटल कंजर्वेशन अवार्ड – पोलैण्ड
11. एन. आर. आई. एप्रेशियेसन अवार्ड - बेल्जियम
12. मॉरीशस सम्मान - मॉरीशस
13. मानवीय शिखर सम्मान - युगांडा
14. हिमालय गौरव सम्मान - नेपाल
15. पर्यावरण सम्मान – थाइलैंड
16. हेप्पीनेस अवार्ड - भूटान
17. दायतोबाका विश्वविद्यालय में सम्मान – जापान
18. विश्व हिंदी सेवी सम्मान – भारत

उपर्युक्त प्रमुख सम्मानों के अतिरिक्त देश की अनेक साहित्यिक तथा सामाजिक संस्थाओं द्वारा इन्हें सम्मानित किया गया। डॉ. निशंक की साहित्य साधना पर जो सम्मान इन्हें प्राप्त हुए हैं और निरंतर प्राप्त हो रहे हैं, वह प्रत्येक हिन्दी प्रेमी का सम्मान है और उसके लिए गर्व की बात है। इनकी अनेक कृतियों का विमोचन देश के महामहिम राष्ट्रपतियों (ज्ञानी जैल सिंह, श्रीमती प्रतिभा पाटिल, श्री प्रणव मुखर्जी, श्री शंकर दयाल शर्मा, डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम, श्री आर. वेंकटरमन आदि) के कर कमलों द्वारा हुआ। अनेक कृतियों का देशी

और विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुआ। देश के अनेक विश्वविद्यालयों द्वारा आपको मानद उपाधियाँ प्रदान की गयीं। आपके साहित्य पर देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों से शोध कार्य (पी-एच. डी., डी. लिट) हुए हैं और अब भी हो रहे हैं। 'मेजर निराला' और 'बीरा' उपन्यासों सहित अन्य कहानियों पर फिल्में भी बन चुकी हैं।

(ख) डॉ. निशंक का कृतित्व :

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' की साहित्यिक यात्रा एक पत्रकार के रूप में प्रारम्भ हुई। इन्होंने पौड़ी से सन् 1985 में निशंक प्रकाशन का प्रारम्भ किया। इस प्रकाशन से इन्होंने 'सीमांत वार्ता' नामक दैनिक समाचार पत्र निकालना प्रारम्भ किया। बचपन से ही साहित्य के प्रति इनकी तीव्र अभिरुचि थी। इनके साहित्यिक उपवन का प्रथम पुष्प था– 'समर्पण' कविता संग्रह, जो सन् 1983 में प्रकाशित हुआ था, अर्थात 'सीमांत वार्ता' प्रारम्भ होने के दो वर्ष पूर्व। 1983 से इनकी जो साहित्य-यात्रा प्रारम्भ हुई, वह अद्यतन चल रही है। इस लेखन में साहित्य की प्रायः समस्त विधाएँ समाहित हैं। डॉ. निशंक का समस्त सृजन-संसार निम्नानुसार है :

(i) काव्य-संग्रह:

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के सत्रह काव्य-संग्रह और दो (खण्डकाव्य) प्रकाशित हैं:

(1) समर्पण (2) नवांकुर (3) मुझे विधाता बनना है

(4) तुम भी मेरे साथ चलो (5) देश हम जलने न देंगे (6) जीवन पथ में

(7) मातृभूमि के लिए (8) कोई मुश्किल नहीं (9) ए वतन तेरे लिए

(10) संघर्ष जारी है (11) सृजन के बीज (12) अंधेरा जा रहा है

(13) भूल पाता नहीं (14) मृगतृष्णा: दर्पण अंतर्मन का

(15) मैं गंगा बोल रही हूँ (खण्डकाव्य) (16) एम्स में जंग लड़ते हुए

(17) प्रकृति की गोद में माँ की पाठशाला (18) परीक्षा लेती ज़िन्दगी

(19) प्रतीक्षा (खण्डकाव्य)।

(ii) कहानी- संग्रह :

डॉ. निशंक के पंद्रह कहानी संग्रह प्रकाशित हैं:

(1) क्या नहीं हो सकता (2) भीड़ साक्षी है (3) बस एक ही इच्छा

(4) रोशनी की एक ही किरण (5) खड़े हुए प्रश्न (6) विपदा जीवित है

(7) एक और कहानी (8) मेरे संकल्प (9) मील के पत्थर

(10) टूटते दायरे (11) अंतहीन (12) केदारनाथ आपदा की सच्ची कहानियाँ

(13) निशंक की सर्वश्रेष्ठ इक्कीसकहानियाँ (14) कथाएँ पहाड़ों की (संयुक्त)

(15) रमेश पोखरियाल 'निशंक' की लोकप्रिय कहानियाँ।

(iii) उपन्यास-साहित्य :

डॉ. निशंक के ग्यारह उपन्यास प्रकाशित हैं:

(1) मेजर निराला (2008) (2) बीरा (2008) (3) निशान्त (2008)

(4) पहाड़ से ऊँचा (2008) (5) छूट गया पड़ाव (2020) (6) पल्लवी (2010)

(7) अपना पराया (2010) (8) प्रतिज्ञा (2011) (9) कृतघ्न (2015)

(10) भागोंवाली (2015) (11) ज़िन्दगी रुकती नहीं (2021)।

(iv) बाल-साहित्य :

डॉ. निशंक की बाल साहित्य की छह कृतियाँ प्रकाशित हैं:

(1) आओ सीखें कहानियों से (2) स्वामी विवेकानन्द की जीवनी

(3) कर्मयोगी स्वामी विवेकानन्द (4) शिकागो में स्वामी विवेकानन्द

(5) आगे बढ़ो: स्वामी विवेकानन्द (6) सकारात्मक सोच: स्वामी विवेकानन्द।

(v) व्यक्तित्व विकास/जीवनी :

डॉ. निशंक द्वारा रचित व्यक्तित्व विकास तथा जीवनी आधारित आठ कृतियाँ प्रकाशित हैं:

(1) सफलता के अचूक मंत्र (2) भाग्य पर नहीं; परिश्रम पर विश्वास करें

(3) संसार कायरों के लिए नहीं (स्वामी विवेकानन्द का जीवन प्रबंधन)

(4) सपने जो सोने न दें (डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम के जीवन पर)

(5) हिमालय में स्वामी विवेकानन्द (6) युगपुरुष भारतरत्न अटल जी

(7) एकात्म मानववाद के प्रणेता पं दीनदयाल उपाध्याय

(8) भारतीय लोकतंत्र के पुरोधा पं. दीनदयाल उपाध्याय।

(vi) पर्यटन/संस्कृति/धर्म :

डॉ. निशंक का पर्यटन, संस्कृति एवं धर्म संबंधित पाँच कृतियाँ प्रकाशित हैं:

(1) धरती का स्वर्ग उत्तराखण्ड भाग–1 (2) धरती का स्वर्ग उत्तराखण्ड भाग–2

(3) धरती का स्वर्ग उत्तराखण्ड भाग–3 (4) भारतीय संस्कृति, सभ्यता और परम्परा

(5) विश्व धरोहर गंगा (गंगा एवं उत्तराखण्ड)।

(vii) डायरी/संस्मरण/यात्रा-वृतांत :

इन विधाओं से संबंधित डॉ. निशंक की नौ रचनाएँ प्रकाशित हैं:

(1) मेरी कथा मेरी व्यथा (शहीद के पत्रों का संकलन) (2) मॉरीशस की स्वर्णिम यात्रा

(3) प्रलय के बीच (केदारनाथ यात्रा का सचित वर्णन) (4) आपदा के वह भयावह पल

(5) एक दिन नेपाल में (6) मेरी विदेशी यात्राएँ (7) मेरी थाईलेंड यात्रा

(8) हिन्दू संस्कृति का प्राण है इंडोनेशिया (9) लक्ष्यद्वीप: समुद्र में चमकता मोती।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का सम्बन्ध उपन्यास साहित्य से है। परन्तु यह भी जानना आवश्यक है कि डॉ. निशंक की काव्य-रचना का प्रारंभिक स्वरूप क्या और कैसा होगा? इस दृष्टि से इनके सन् 1983 में प्रकाशित प्रथम काव्य संग्रह 'समर्पण' का प्रथम गीत:

कंठ हैं तेरे अनेकों स्वर तुम्हारा एक है।
स्वर तुम्हारे पूज्यपादों में भी मेरा एक है।।

कंठ सारे एक होकर गान तेरा ही करें।
भू जगत की पूज्य माता कष्ट दुख सब ही हरें।।
माँ तुम्हारे शीश अगणित एक सिर मेरा भी है।
चरण कमलों में तेरे माँ एक यह चेहरा भी है।।
सैकड़ों मस्तक चढ़े माँ मैं भी उनमें एक हूँ।
चाहता हूँ वंदनीय माँ क्षण व कण प्रत्येक दूँ।।
एक लय में गीत तेरे सब पुकारें माँ तुम्हें।
सुरभि अमृत रस बहाते बाँट दो माता हमें।।
हाथ अनगिन कर रहे हैं वन्दना माँ की अभी।
हाथ हैं उनमें भी मेरे पुत्र तेरे जो सभी।।
कोटि चरणों से सुशोभित, पूत तेरे बढ़ रहे।
वत्सले! मन में बिठाकर, दीप सारे चढ़ रहे।।
पुष्प मैं हूँ माँ तुम्हारा, तुम इसे स्वीकार कर लों।
पूर्ण अर्पित बाल तेरा, माँ मुझे अब शीघ्र तर दो।।[6]

उपर्युक्त गीत राष्ट्रभूमि के प्रति समर्पण भाव दर्शाती है। राष्ट्रप्रेम की भावना इतनी तीव्र है कि सोलह पंक्तियों के गीत में नौ बार माँ / माता का स्मरण किया गया है। जिस धारा का प्रारम्भ कवि ने अपनी कविता से किया, वही धारा उपन्यासकार डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के प्रायः समस्त उपन्यासों में परिलक्षित होती है। और यह धारा है– एक मात्र राष्ट्राधन, राष्ट्र चिन्तन।

डॉ. निशंक के उपन्यासों का परिचय:

1. मेजर निराला:

'मेजर निराला' डॉ. निशंक का प्रथम प्रकाशित उपन्यास है। यह उपन्यास इतना लोकप्रिय हुआ कि डॉ. निशंक की बेटी आरुषि निशंक ने इस नाम की एक फिल्म का निर्माण गढ़वाली में किया। फिल्म में उत्तराखण्ड के सैनिक परिवारों की कठिनाइयों, पलायन के कारण खाली होते गाँवों तथा इस आंचल की प्राकृतिक सुषमा का चित्रण किया गया है। वर्ष 2018 में प्रदर्शित यह फिल्म भी उपन्यास की भाँति अत्यन्त सफल रही।

'मेजर निराला' उपन्यास का कथानक पहाड़ी गाँव के एक गरीब युवक के जीवन को लेकर गढ़ा गया है, जो गाँव वालों का सहयोग करता है, गाँव से प्रेम करता है। परन्तु नियति इस आदर्श युवक के साथ छल करती है। उपन्यास का ताना-बाना ऐसा बुना गया है कि स्वतः ही वह पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। यदि पाठक सजग है तो प्रथम परिच्छेद के प्रथम चार पैराग्राफ में ही वह उपन्यास का सार, सौंदर्य तथा समग्रता से परिचित हो जाएगा। ये अनुच्छेद द्रष्टव्य है:

"पन्द्रह वर्ष!

(1)

जी हाँ, पूरे पन्द्रह वर्ष जेल की सलाखों के पीछे काट दिये थे मेजर निराला ने। कम नहीं होते जीवन के पन्द्रह बसंत ! एक-एक दिन मानों एक-एक युग के बराबर।

(2)

अपराध क्या था उसका? सेना का एक जांबाज मेजर था वह। भरा-पूरा परिवार। पत्नी और एक बेटा। सब कुछ ठीक-ठाक ही तो चल रहा था। देवी स्वरूप पत्नी सावित्री, छोटा-सा घर और सुन्दर सा बेटा। पहाड़ का एक शांत सुन्दर गाँव। फौज में एक बड़ा ऑफीसर था वह, अपने ऊपर के आफिसरों का प्यारा मेजर।

(3)

बचपन के दिन बहुत गरीबी में बिताये थे मेजर निराला ने पिता की मृत्यु तब हो गयी थी जब वह केवल एक वर्ष का था। किसी तरह माँ ने ही उसे पढ़ाया-लिखाया था। फौज में

भर्ती हुआ। अथक मेहनत और परिश्रम से कमीशन पास किया और मेजर के ओहदे तक जा पहुँचा।

(4)

कितना प्यार था उसे अपने गाँव से और गाँव के लोगों से। हँसी-खुशी जीवन बीता रहा था। कोई कमी नहीं थी। मान-सम्मान, सुख-सुविधा। किन्तु ईश्वर को शायद यह सब कुछ मंजूर नहीं था, इसलिए तो उसकी खुशियों को ग्रहण लग गया। बर्बाद हो गया सब कुछ। पत्नी नहीं रही। बेटे का पता नहीं और खुद वह पन्द्रह वर्षों से जेल की कोठरी में पड़ा-पड़ा उस एक बुरे पल को कोस रहा है, जिसने उसके जीवन और घर-संसार को आग लगा दी।"[7]

136 पृष्ठों और सैंतीस परिच्छेदों में समाहित इस उपन्यास के प्रथम पारिच्छेद के उपर्युक्त प्रथम चार अनुच्छेदों में समूचे उपन्यास की तस्वीर इस प्रकार उभर कर आती है :

- मेजर निराला का बचपन कष्टप्रद व्यतीत हुआ। मेजर अपने गाँव और गाँव वालों से तथा परिवार से बहुत प्यार करता था।
- फौज में भी सब उसे चाहते थे। तात्पर्य यह कि वह अत्यन्त व्यवहार कुशल था।
- 'एक बुरे पल' ने उसे पन्द्रह वर्षों तक जेल में रखा।

  यह एक बुरा पल क्या था? इसके रहस्योद्घाटन सहित उपर्युक्त तीनों बिन्दुओं का विस्तार ही 'मेजर निराला' का कथानक है।

मेजर निराला के एकमात्र पुत्र की उद्दंडता सीमातीत हो गयी। वे गाँव वाले, जिनकी सहायता मेजर ने अनेक बार की, उसके पुत्र की शिकायत लेकर मेजर के पास पहुँचे। स्वाभिमानी मेजर ने अपने बेटे को मारने क्रोधावेश में बन्दूक चला दी। पत्नी सहसा सामने आ गयी। गोली उसे लगी, वह तत्क्षण मर गयी। इस अपराध में मेजर को सजा सुनाई गयी: "फिर वह स्वयं पटवारी चौकी गया और अपना अपराध स्वीकार किया। राजस्व पुलिस ने उसे जेल भेज दिया। सुनवाई हुई और मेजर पर मुकदमा चला। उसने अपने बचाव के लिए कोई वकील

भी नहीं किया। क्या करेगा वह ऐसा कलंकित जीवन जीकर? उसने तो जज साहब से अपने लिए फाँसी की सजा तक माँगी थी। लेकिन मेजर को फाँसी नहीं हुई, पन्द्रह बरस की कैद हुई। फौज में अलग से कोर्ट मार्शल हुआ और फंड तथा पेंशन आदि के बिना खाली हाथ घर भेज दिया गया– सोचते-सोचते गला रुँध गया उसका।"[8]

उपन्यास का प्रारम्भ ही– 'पन्द्रह वर्ष' इन दो शब्दों से हुआ है। और इन प्रारम्भिक दो शब्दों का रहस्य यह है।

मेजर निराला के द्वारा अपनी प्यारी पत्नी की हत्या का अपराध जानबूझ कर नहीं होता। क्षणिक आवेश (उपन्यास के प्रथम परिच्छेद के पैराग्राफ चार में जिसे 'एक बुरे पल' कहा गया है) में होता है। इसके पश्चात भी उपन्यास भारतीय काव्य चिंतन परंपरा के परिप्रेक्ष्य में सुखांत है। एक नाटकीय घटनाक्रम में फटेहाल स्थिति में मेजर निराला को कोई वहाँ टक्कर मार देता है। भीड़ चीरते हुए एक फौजी घायल मेजर तक पहुँचता है। औंधे पड़े मेजर को जैसे ही सीधा करता है तो चौंक जाता है। वर्दी वाला फौजी कोई और नहीं, मेजर निराला का बेटा बबलू है। स्वस्थ होने पर दोनों बाप बेटे जिस एस. पी. के आमंत्रण पर जाते हैं वह बबलू का वह सहपाठी निकलता है जिसे बबलू ने सदैव परेशान किया। इन तीनों की मिलन का सुखान्त चित्र उपन्यासकार की सशक्त लेखनी से प्रस्तुत होता है –

"गाड़ी एक बंगले के गेट पर रुकी। गेट पर नेम प्लेट देखकर चौंक गया मेजर। कुछ समझ में न आया उसकी। हाँ, उसका ही तो नाम लिखा था-'निराला'। `गेट खुलते ही सबसे पहले एस. पी. नजर आया और उन्हें देखकर न सिर्फ मेजर बल्कि कैप्टन बबलू भी उछल पड़ा। सामने जग्गू खड़ा था। पुलिस अधीक्षक 'जगमोहन सिंह रावत'। जग्गू ने पैर छूए मेजर के और मेजर ने भी छाती से लगा लिया उसे। चाचाजी, आपकी रिहाई के दिन मैं जेल पहुँचा। पता चला आप गाँव चले गए। फिर गाँव पहुँचा तो वहाँ किसी ने बताया कि आप बिना किसी से मिले कहीं निकल गए हैं। मैंने आपकी तलाश में पौड़ी और ऋषिकेश की पूरी पुलिस फोर्स

झोंक दी। अभी-अभी मालूम पड़ा कि आप घायल होकर हरमिलाप हॉस्पिटल हरिद्वार में भर्ती हैं।'

आँसू आ गये मेजर के। वह तो सोच रहा था कि दुनियाँ स्वार्थी होती है। जिसकी मदद करो, वह दूसरे दिन पहचानता तक नहीं है। किन्तु सारी धारणाएँ बदल गई हैं अभी-अभी। मेजर की बाँहों से छूटकर जग्गू बबलू से गले मिला।

'बधाई हो कैप्टन!'

'थैंक्यू एस. पी. साहब!' बबलू बोला

'लेकिन यार, एक दो घूँसे तो मार जरा, उस दिन का बकाया है।' जग्गू ने बबलू को छेड़ा।

और सचमुच एक घूँसा जड़ दिया बबलू ने उस पर– 'एस. पी. बन गया तो मैं क्या डर जाऊँगा तेरे से।'

तीनों खिलखिलाकर हँस दिये। माहौल शांत होने के बाद जग्गू ने चाबी का छल्ला मेजर निराला को पकड़ा कर कहा– "चाचा जी, ये आपके नये घर की चाबी । आज का खाना मेरे घर पर। बच्चे अपने देवतातुल्य दादा जी' को मिलने के लिए जाने कब से बेचैन हैं।"[9]

मेजर निराला का व्यक्तित्व एक ओर ग्रामीण संस्कृति को प्रतिध्वनित करता है तो दूसरी ओर एक वीर सिपाही, वीर सैनिक के चरित्र को उद्घाटित करता है। अपने एक शोध पत्र 'डॉ. रमेश पोखरियाल के उपन्यासों में शौर्य तत्व' में डॉ. लखन लाल खरे लिखते हैं– "वस्तुतः डॉ. रमेश पोखरियाल ने मेजर निराला के रूप में एक ऐसा पात्र गढ़ा है जो लाल बहादुर शास्त्री के 'जय जवान-जय किसान' का क्रियात्मक संस्करण है। मेजर निराला एक विशिष्ट पात्र है। एक ओर वह 'जय जवान-जय किसान' के नारे को जीवंतता प्रदान करता है तो दूसरी ओर मर्यादा की स्थापना के लिए अपने पुत्र पर बंदूक तानने में कोई संकोच नहीं

करता। मेजर निराला का चरित्र 'जय जवान जय किसान' से भी आगे जाकर 'जय ईमान' को गढ़ता है। अपने बेटे पर उसे मारने के उद्देश्य से बंदूक तान देता है। यह मेजर निराला के शौर्य का उदाहरण है। कुछ ऐसा ही अभिमत मैंने अपने शोध पत्र 'जय जवान जय किसान' की प्रतिध्वनि: उपन्यास 'मेजर निराला' में व्यक्त किया है: 'कोई शहर या ग्राम केवल वहाँ की भूमि, जल, वायु और वानस्पति संस्कारों से नहीं बनता। इसका उपयोग करने वालों के परस्पर संबंध और चरित्र वहाँ की अच्छी बुरी तस्वीर गढ़ते हैं। मेजर निराला ने अपने सौम्य-सहयोगी स्वभाव के कारण अपने निवासियों के हृदयों को जीता। उसका पुत्र उन विश्वास के धागों को अपने कुकर्मों के द्वारा तार-तार कार दे यह मेजर को सहय नहीं, एक सैनिक को सहय नहीं। इसलिए उपन्यास 'मेजर निराला' जय जवान जय किसान' के साथ 'जय ईमान' का भी प्रतीक है।"[10]

'मेजर निराला' का अंतर्बाह्य कलेवर पहाड़ के निर्मल, शान्त, सौम्य, निश्छल जनजीवन और प्रकृति की सहज सुषमा से गढ़ा गया है। इसमें मनुष्य की सहज मानवीय प्रवृत्तियों का आलेखन है। यह उपन्यास पहाड़ी जन-जीवन और देश प्रेम का अद्‌भुत समन्वय है।

वाणी प्रकाशन, दिल्ली से 2008 में इस उपन्यास का प्रकाशन हुआ है। वर्ष 2008 में डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के जिन चार उपन्यासों का एक साथ प्रकाशन हुआ था, 'मेजर निराला' उनमें से एक है।

2. बीरा:

यह उपन्यास 2008 में, वाणी प्रकाशन, दिल्ली से 170 पृष्ठों में प्रकाशित हुआ था। 'मेजर निराला' की भाँति 'बीरा' का सफल फिल्मांकन हो चुका है। पहाड़ी जन जीवन का चरित्र तो इस उपन्यास में है ही, साथ ही प्रमुख नारी पात्र– 'बीरा' के रूप में स्त्री के उदात्त स्वरूप को उद्घाटित किया गया है। 'बीरा' में इस तथ्य पर बल दिया गया है कि देश के पढ़े-लिखे युवाओं तथा युवतियों को नगरीय चकाचौंध से निकलकर सुविधाहीन ग्रामों की सेवा

कर देश के नवनिर्माण में अपना श्रेष्ठतम योगदान कर सकें। बीरा के संघर्ष का कलात्मक दस्तावेज का नाम है– बीरा उपन्यास।

बीरा एक अनाथ बालिका है, जो एक दुर्घटना में अपने माता-पिता को खो देती है, परन्तु वह भाई सहित बच जाती है। इन दोनों मासूम बच्चों का पालन-पोषण बीरा के चाचा-चाची करते हैं। चाचा सहृदय हैं। परन्तु चाची दोनों मासूमों पर अकथनीय अत्याचार करती है। इस अत्याचार और कुपोषण के कारण बीरा का अबोध भाई अपने प्राण त्याग देता है।

एक दिन सहसा ही बीरा का मामा उसके घर आता है। वहाँ के वातावरण को देखकर वह समूचा परिदृश्य समझ लेता है और बीरा को अपने घर ले जाता है। यहाँ दोनों मामा-मामी बीरा का पालन पोषण बेटी की भाँति करते हैं। बीरा की प्रारंभिक शिक्षा यहीं होती है।

बीरा के पड़ोसी और इसके समव्यस्क दीपक से उसका सामीप्य होता है। परन्तु सामाजिक रूढ़ियों के कारण उनका विवाह संभव नहीं हो पाता। बीरा अकुर है और दीपक बहाव। बीरा के मामा उसका विवाह जहाँ तय करते हैं, वह लालची परिवार है, जो बीरा के परिवार से अधिकाधिक दहेज का महत्वाकांक्षी है। बीरा के मामा बैंक से ऋण लेकर इसके लिए भी तैयार हो जाते हैं। परन्तु बीरा दृढ़ता पूर्वक इस संबंध को ठुकरा देती है– "बीरा बोलती चली गयी-'मुझे अब यह रिश्ता मंजूर नहीं। रुपये-पैसे से खरीदा गया माँस का पिंड नहीं चाहिए मुझे। येनासूर मेरी ज़िंदगी को अंदर से खोखला कर देगा। जिस इंसान के अन्दर इतनी मानवता नहीं रही है कि वह अपने परिवार की मान-मर्यादाओं का कुछ ख्याल रख सके, वह भला मेरी भावनाओं का कया सम्मान करेगा? वह अन्य लोगों की कया इज्जत करेगा? वे कया मना करेंगे इस रिश्ते के लिए? उनसे पहले मैं ही मना करती हूँ। आप लोग भी कान खोलकर सुन लीजिए, मुझे नहीं करना राजू से विवाह। आप कल ही रैबार भेजकर इस रिश्ते के लिए इंकार कर दीजिए। और यदि आप नहीं कर सकते तो मैं इंकार कर देती हूँ-दहेज लोभी इन भूखे भेड़ियों को पत्र लिखकर। – बीरा अपनी बात पूरी कर चुकी थी।"[11]

दीपक के सहयोग से वह हाई स्कूल उत्तीर्ण करती है, नर्स का प्रशिक्षण प्राप्त करती है तथा गाँव से थोड़ी दूर स्थित प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र में उसकी नियुक्ति हो जाती है। मामी के द्वारा विवाह की चर्चा करने पर अपना मंतव्य स्पष्ट करते हुए वह कहती है– "अरे मामी, मेरा तो विवाह हो चुका है गाँव के लोगों के दुख-दर्द से, और दूसरा विवाह करना तो गैर कानूनी होता है न? – बीरा हँसकर टाल जाती।"[12]

बीरा से प्रेरणा लेकर दीपक भी विवाह नहीं करता। वह भी गाँव में रहकर संगठन बना कर गाँव के लोगों को जागृत करता है: "कुछ खास नहीं बीरा। गाँव के लोगों को खेती करने के उत्तम तरीके समझा रहे हैं, खेती के लिए अच्छे किस्म के बीजों, खाद इत्यादि की व्यवस्था करते हैं, साथ ही यहाँ के उत्पादनों के लिए बाजार उपलब्ध कराने में उनकी मदद कर रहे हैं। अब सोच रहे हैं कि महिला साक्षरता पर भी कुछ काम किया जाये और इसी काम में महिला स्वयं सहायता समूह की सदस्याओं से संपर्क करने के उद्देश्य से ही तुम्हारे गाँव में आ पहुँचा हूँ मैं।' –दीपक ने अपने संगठन के कार्यों पर संक्षेप में बीरा को समझाया।"[13]

दीपक और बीरा की प्रमुख कथा के साथ-साथ उपन्यास में दो उपकथाएँ भी हैं। परन्तु इनकी उपस्थिति-अनुपस्थिति का मुख्य कथा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यदि ये प्रकारान्तर कथाएँ न भी होतीं, तब भी मूल कथा यथावत् और अप्रभावित रहती। इनमें एक कथा आशीष की है, जो दीपक का सहपाठी है। आशीष की जीवन गाथा भी अत्यन्त कारुणिक है। पिता प्रभावशाली है, पर शराबी है। पिता की प्रताड़ना से तंग आकर माँ फाँसी लगा लेती है। पिता अर्थात् प्रधान एक विधवा से दूसरा विवाह कर लेते हैं। आशीष का भविष्य क्या होता है, इस बारे में उपन्यासकार मौन है।

दूसरी सहकथा है– विमला और राकेश की। बीरा की सहेली विमला का प्रेम प्रसंग गाँव के सरकारी अस्पताल के कंपाउंडर राकेश से हो जाता है। वह विमला को बदनामी के गर्त में धकेलकर अपना स्थानांतरण रातों-रात करवाकर वहाँ से भाग जाता है। बीरा की नियुक्ति

उसी गाँव में होती है, जहाँ राकेश पूर्व से पदस्थ है। बीरा उसे पहचान लेती है। वह कोढ़ी हो जाता है। इस अवांतर कथा के द्वारा उपन्यासकार मात्र यह संदेश देना चाहता है कि बुरे कार्यों का परिणाम बुरा ही होता है। विमला को बेमेल विवाह का दंश झेलना पड़ता है।

उपन्यासकार अपने उपन्यास के द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल रहा है। डॉ. निशंक सदैव इस बात के पक्षधर रहे हैं कि युवाओं को शिक्षा प्राप्त कर उसका सदुपयोग गावों के विकास और ग्रामीणों को मुख्य धारा में जोड़ने के लिए करना चाहिए। बीरा और दीपक दोनों ही पात्र डॉ. निशंक के इस विचार के प्रतिनिधि हैं। दूसरी ओर बीरा के मंगेतर राजू के व्यक्तित्व को नगरीय संस्कृति के रूप में उपन्यास में स्थान दिया गया है, जहाँ वैभव की चकाचौंध तो है, शांति नहीं है। दीपक के सम्मुख भौतिकता का यह पुजारी अपने पत्ते खोल देता है: "कहाँ गाँव के चक्कर में पड़े हो यार। ये भी कोई ज़िंदगी है? शहरों की ज़िंदगी की तो बात ही कुछ और है।"[14]

गाँव और नगर के इस द्वन्द्व में उपन्यासकार ने ग्राम्य-संस्कृति को उच्च स्थान प्रदान किया है। अपने आदर्श की स्थापना के उद्देश्य में 'बीरा' उपन्यास पूर्णरूपेण सफल रहा है।

3.निशान्त:

यह उपन्यास भावना प्रकाशन, दिल्ली से पच्चीस परिच्छेदों और 103 में यह उपन्यास प्रकाशित है। इसके वास्तविक पृष्ठ 99 ही हैं।

'निशान्त' उपन्यास का नायक है, जो अति सम्पन्न और सम्मानजनक परिवार का एकमात्र पुत्र है। निशान्त के दादा रायबहादुर दीनानाथ के बिगड़ैल पुत्र जगन्नाथ का बेटा निशान्त अपने पिता के व्यवहार से दुखी है। दीनानाथ अपनी सारी संपति अपने पोते निशान्त के नाम कर देता है।

निशान्त बचपन से ही आदर्श प्रकृति का है। अपने दादा और माता-पिता के निधनोपरांत निशान्त ग्राम्य-सेवा करने के उद्देश्य से ग्राम में ही एक आश्रम स्थापित करता है। चारों ओर उसका प्रभाव है। उसके आश्रम में तमाम निराश्रित स्त्री-पुरुष आश्रय प्राप्त करते हैं।

मिताली उपन्यास की नायिका है और निशान्त से कहीं अधिक संघर्षशील है। निशान्त की पृष्ठभूमि अमीर और प्रभावशाली परिवार की है, जबकि मिताली की पृष्ठभूमि सामान्य मध्यवर्गीय शिक्षकीय परिवार की है।

मिताली की माता एवं शिक्षक पिता की मृत्यु के पश्चात एक छोटी बहन और दो छोटे भाइयों के पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा का भार आ पड़ा। पिता की मृत्यु के पश्चात मिताली को शिक्षक के पद पर अनुकंपा नियुक्ति प्राप्त हुई। पिता की पेंशन, उसकी वेतन, प्राप्त फंड और ट्यूशन से मिताली ने अपने भाई-बहनों को आश्रय दिया। उपन्यासकार मिताली के जीवन की रेखाओं को संक्षिप्ततः व्याख्यायित करते हुए लिखता है– "अच्छा खासा जीवन व्यतीत हो रहा था उसका। शहर में सीमित वेतन में उसने तीनों भाई-बहनों को पढ़ाया-लिखाया। छोटी बहन सोनाली की शादी की और भाई राहुल को इंजीनियर बनाया। वह चाहती थी कि शेखर भी पढ़-लिखकर कुछ अच्छी नौकरी लग जाय, किन्तु उसका सोच हुआ उसी के पास ही रह गया।"[15]

मिताली शेखर को न सुधार सकी। निशान्त के सम्पर्क में आने पर दोनों के मध्य सात्विक प्यार की कोंपले फूटती हैं। निशान्त शेखर को अपने आश्रम में काम पर लगा देता है। दो-तीन वर्ष के पश्चात वह अपना अलग गिरोह तैयार कर लेता है और निशान्त को चारित्रिक रूप से बदनाम करने की कुचेष्टा करता है। इतना ही नहीं, निशान्त पर अपने साथियों के साथ मिलकर प्राण घातक हमला करता है। जिस निशान्त का उसे कृतज्ञ देना चाहिए, वह कृतघ्नता का कार्य करता है। इसके पश्चात भी सब कुछ जानते हुए निशान्त केवल इसलिए शेखर के विरुद्ध मुहँ नहीं खोलता कि शेखर का अहित हो जाएगा।

परन्तु बात छुपी नहीं रह सकी। रहस्य से पर्दा उठ गया और शेखर गिरफ्तार हो गया। उपन्यास सुखान्त है क्योंकि निशान्त और मिताली का अंततः मिलन हो जाता है– "और न

जाने कितनी देर तक मिताली निशान्त के सीने से लगकर सुबकती रही और निशान्त उसके बालों पर उँगलियाँ फिराता हुआ उसे ढाँढ़स बँधाता रहा।"[16]

4. पहाड़ से ऊँचा:

73 पृष्ठीय यह उपन्यास वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से वर्ष 2008 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास का नायक मोहन डॉक्टरी पढ़कर नगरों की चकाचौंध से दूर गाँव में ही रहकर एक चिकित्सक के नाते अपनी सेवाएँ देना चाहता है। मोहन की सहपाठी गीता मोहन के विचारों का समर्थन करती है। दोनों परिणय बंधन में बंधते हैं और गाँव में रहकर दीन-हीनों की सेवा करते हैं।

'पहाड़ से ऊँचा' उपन्यास प्रेरक उपन्यास है। प्रेरणा यह है कि देश के युवक-युवतियों को अपनी शिक्षा पूर्ण कर ग्रामों की सेवा करना चाहिए। यही उनकी शिक्षा की सार्थकता है। मोहन डॉक्टर बनने के पश्चात यही सब करने की योजना बनाता है: "पूरे इलाके में मोहन की उदार छवि के सभी कायल हो चुके थे। मोहन एक हाथ से कमाता, तो दूसरी ओर मुक्तहस्त से दान भी करता। जनकल्याण के क्षेत्र में धन लगाने की उसकी योजना थी। वह चाहता था कि अपने स्वर्गीय बाबूजी के नाम पर एक अच्छे से अस्पताल का निर्माण कराए, जिसमें वे समस्त प्राथमिक सुविधाएँ हों, जिनके अभाव में गाँव-इलाके के लोगों को छोटे-छोटे कार्यों जैसे एक्स-रे, पैथोलॉजी टेस्ट, प्लास्टर, अल्ट्रासाउंड आदि के लिए दूर शहरों में आना-जाना पड़ता है। प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के अन्तर्गत गाँव में जल्दी ही सड़क आने की सम्भावना दिख रही थी। इसी उधेड़बुन में खोया मोहन सोच रहा था कि सड़क बनने से लोगों का कितना धन और समय बच जाएगा।"[17]

डॉ. गीता अर्थात डॉ. मोहन की पत्नी भी अपने पति के लक्ष्य की पूर्ति हेतु उससे कंधे-से-कंधा मिलाकर उसे सहयोग करती– "गीता और मोहन मरीजों की दिन-रात सेवा करते साथ ही सप्ताह में एक दिन क्षेत्र के अलग-अलग गाँवों में जाकर रोगियों को घर पर ही देखते तथा गाँव वालों को खान-पान, साफ-सफाई, सुरक्षा, टीके आदि के बारे में जानकारी देते।

गीता तो महिलाओं के साथ ऐसे बातें करती, जैसे वर्षों से उनकी परिचित घनिष्ठ सहेली रही हो।"[18]

उपन्यास के मूल कथानक को विस्तार देने के लिए कुछ अवांतर कथाओं को भी मूल कथा से संपृक्त किया गया है। सेना में 32 साल नौकरी के बाद ऑनरेरी कैप्टन शंकर दत्त गाँव में बस गये थे, जबकि उनके अन्य साथी नगरों में बस गये थे। इन्हीं शंकरदत्त का एक बेटा है प्रकाश और बेटी है शांति। पितृविहीन डॉ. मोहन इन्हीं शंकरदत्त का सगा भतीजा है। शंकरदत्त ने ही मोहन को पढ़ाया, लिखाया और डॉक्टर बनवाया। गाँव की सेवा करने की प्रेरणा मोहन को अपने चाचा से ही प्राप्त हुई थी।

रमेश प्रकाश का मित्र है जो दिल्ली में छोटी-मोटी नौकरी करता है। रमेश के सहयोग से वह भी अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध नौकरी करने दिल्ली चला जाता है। पहाड़ी गाँव के स्वास्थ्यप्रद वातावरण के विरुद्ध दिल्ली के विषैले वातावरण को प्रकाश आत्मसात नहीं कर पाता–

"प्रकाश दो साल के अंदर तीन नौकरी बदल चुका था। कहीं काम अधिक, वेतन कम, तो कहीं प्रदूषण की समस्या, कहीं दूरी अधिक, पैसा आने-जाने में ही समाप्त हो जाता। जहाँ वर्तमान ही सुखमय नहीं था, तो भविष्य की सुरक्षा दूर की कौड़ी ही थी...।

उसे दिल्ली की इस भीड़भाड़ वाली ज़िंदगी में याद आते पहाड़ के वे झरने, खुली साफ हवा, जहाँ देवदार, बांज, बुरास और चीड़ के पेड़ों को देखकर ही मन प्रफुल्लित हो जाता। वहाँ उनकी कीमत समझ में नहीं आती। बांज की जड़ों से निकलता अमृत-सा ठंडा पानी, कितनी भूख लगती थी वहाँ। नींद भी ठीक ही आती थी। और एक यहाँ है कि रात-दिन भागो, न भूख लगती है और न चैन की नींद आती है।"[19]

ऐसी स्थिति में उसके फेफड़ों में संक्रमण हो जाता है। इतना ही नहीं, मशीन में फँसने से रमेश का हाथ कट जाता है। महानगर के स्वार्थी व्यवहार को अनुभव कर प्रकाश सोचने के लिए विवश हो जाता है– "दुनिया बड़ी मायावी और स्वार्थी है। आम चूसकर गुठली फेंक देती

है। रमेश को भी कंपनी वालों ने चलता कर दिया। कितना बेदर्द है जमाना। मानवीय मूल्यों की कोई कीमत इस दुनिया में कहीं भी नहीं है। किससे करें फरियाद? दीवारों से सिर टकराकर कुछ हासिल नहीं होगा। गुहार लगाना समय बर्बाद करने के समान ही है। आज प्रकाश भी खुद को कितना बेबस महसूस कर रहा था।"[20]

इसी प्रकाश की बहन शान्ति का विवाह हरिकृष्ण से होता है जो ऑटो चालक है। विवाह के कुछ दिनों तक सब ठीक-ठाक रहता है, परन्तु धीरे-धीरे हरिकृष्ण शराब पीने लगता है जिसकी परिणति एक एक्सीडेंट से होती है। हरिकृष्ण तो बच जाता है परन्तु पूरी तरह टूट फूट जाता है। परिणामतः वह बेरोजगार हो जाता है।

मोहन जब गाँव में अस्पताल बनवाता है तो इन सबको उसमें नियुक्त करता है, सबको रोजगार प्रदान करता है– "हम शीघ्र ही अस्पताल के लिए एक एम्बुलेंसनुमा गाड़ी लेंगे, जिसे हरिकृष्ण ही चलायेंगे। रमेश तकनीकी ज्ञान रखता था, किन्तु बेचारा एक हाथ खो बैठा। वह पर्ची बनाने का कार्य करेगा। ठोकर खाया इंसान है, ईमानदार और लगनशील है, अपना पराया जानता है। प्रकाश पढ़ा लिखा है; इंटर तक जीव विज्ञान पढ़ा है, उसके लिए दवाओं की दुकान खोल देंगे। फिर चाचा जी भी ए. एम. सी (आर्मी मेडिकल कोर्स) से सेवानिवृत्त हुए हैं। बूढ़े हैं, लेकिन कुछ देर भी बैठेंगे तो प्रकाश धीरे-धीरे सीख जाएगा और एक दिन पक्का कम्पाउन्डर बन जाएगा।"[21]

उपन्यास अपनी सहज गति से आगे बढ़ता है। कोई अंतर्बाह्य संघर्ष इसमें नहीं है। बाह्य संघर्ष की आयोजना की एक स्थल पर डॉ. निशंक झलक अवश्य देते हैं, परन्तु पानी के बुलबुले की तरह वह वहीं सीमित हो जाती है–

"इधर कुछ झोलाछाप नीम-हकीम मोहन के क्षेत्र में आने से खार खाए बैठे थे। कुछ दुष्प्रचार करते थे, तो कुछ ईर्ष्या। जितने मुख, उतनी बातें। न निंदा करने वालों की कमी थी, न द्वेष रखने वालों की। जनता का अधिकांश तबका मोहन और गीता के साथ जो था। ऐसे में उनके बारे में कुछ भी अशोभनीय टिप्पणी करना आसमान की ओर थूकने के समान था।

डॉक्टर युगल की कार्यशैली, मधुर व्यवहार ने झोलाछापों, अनर्गल निंदकों के मुहँ बंद कर दिये थे। फिर भी वे अंदर ही अन्दर कुढ़ते रहते थे।"[22]

वर्ष 2008 में एक साथ प्रकाशित उपर्युक्त चारों उपन्यासों का एक ही मूल स्वर है – पहाड़ी ग्रामों के विकास की तड़प। यही कारण है की चारों उपन्यासों के प्रमुख पात्र नगरीय सभ्यता में न उलझकर गावों की ओर पलायन करते हैं। पहाड़ी स्त्रियों की संघर्ष गाथा का चित्रण करना भी इन उपन्यासों का ध्येय है। उपर्युक्त विवेचित चारों उपन्यासों में सेना और सैनिकों की न्यूनाधिक चर्चा अवश्य हुई है। ग्रामों की तथा खेत-खलिहानों की बात तो है ही। इसीलिए इन चारों उपन्यासों को श्री लाल बहादुर शास्त्री के नार– 'जय जवान जय किसान' का प्रतिरूप कहा जा सकता है।

5. छूट गया पड़ाव:

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' द्वारा लिखित यह पाँचवा उपन्यास है जो अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों के रचना काल/ प्रकाशन काल (2008) के दो वर्षों के अंतराल 2010 में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। 'छूट गया पड़ाव' में छोटे-छोटे छब्बीस परिच्छेद और 131 पृष्ठ हैं।

यह उपन्यास कुछ बिन्दुओं में अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों से अलग है। प्रथम, प्रारंभिक चारों उपन्यासों में किसी ने संबंधित उपन्यास की भूमिका नहीं लिखी है। दूसरे, पूर्ववर्ती उपन्यासों में डॉ. निशंक का अभिकथन नहीं हैं। 'छूट गया पड़ाव' में ये दोनों तत्व हैं। प्रो. हरिमोहन ने 'एक अनूठा उद्देश्य पूर्ण लघु उपन्यास' शीर्षक से ग्यारह पृष्ठीय 'अपनी बात' की है। वे लिखते हैं–

".. इसके माध्यम से जहाँ पर्वतीय गाँवों की झलक से लेकर मानवीय मूल्यों, सामाजिक विसंगतियों व मानवोचित कमजोरियों को सामने लाने का प्रयास किया गया है, वहीं ग्राम्य-जीवन के मूलाधार 'मुखिया' व 'गुरु' के 'गुरुतर दायित्वों को दर्शाने की कोशिश भी

की गई है। यही नहीं, यह उपन्यास बिनगढ़ के जरिए जहाँ शिक्षा के महत्व को आँकने का प्रयास है, वहीं समूचे पहाड़ की शिक्षा व्यवस्था का खाका खींचने की कोशिश भी है।"[23]

किसी कृति के संबंध में जब कृतिकार ही अपने मन्तव्य स्पष्ट कर दे, वहाँ कुछ कहने को शेष रह नहीं जाता। फिर समीक्षात्मक वक्तव्य तो कृति के समग्र का दर्पण होता है। प्रो. हरिमोहन समीक्षात्मक भूमिका में लिखते हैं–

"जीवन के अनुभूत स्तर– जिसमें वह किस प्रकार दिखाया जाता है तथा उसके भाव-स्तर, जिसमें वह जीवन कैसा होना चाहिए-इन दोनों का समन्वित जीवंत चित्रण इस उपन्यास में सफलतापूर्वक हुआ है। देशकाल, वातावरण, घटनाएँ, कथापात्र तथा उनके यथार्थ अनुभवों को समन्वित करके उपन्यासकार ने अपनी जीवन-दृष्टि का समावेश करते हुए यह सोद्देश्य रचना की है। यही इसकी सच्ची सर्जनशीलत है।"[24]

उपन्यासकार ने तो कहीं भी इस उपन्यास को लघु उपन्यास नहीं कहा है। परन्तु भूमिका लेखक ने इसे लघु उपन्यास की संज्ञा दी है। इसके पूर्व के जो चारों उपन्यास थे, वे भी (मेजर निराला को छोड़कर) लघु उपन्यास ही हैं।

प्रारम्भिक चार उपन्यासों के कथाओं में सेना अथवा सैनिक का संबंध किसी-न-किसी रूप में रहा है। यह उपन्यास सेना और सैनिक के सानिध्य से मुक्त है। पूर्ववर्ती चारों उपन्यासों में वर्णित गावों में समस्याओं का अंबार है। 'छूट गया पड़ाव' में प्रथम बार किसी ग्राम की समृद्धि को दर्शाया है:

"बाँज-बुरांश के घने दिलकश जंगलों के बीच बसा ही मनोरम गाँव है– बिनगढ़। करीब सौ परिवारों वाला सम्पन्न और धन-धान्य से परिपूर्ण। पहाड़ का शायद ऐसा पहला गाँव जो पूरी तरह आत्मनिर्भर है। देवभूमि में साधनारत साधकों-सा दुरूह जीवन जी रहे गाँवों में अपवाद।

न यहाँ खाने-पीने की चिंता, न लकड़ी-चारे की। खेती बाड़ी ही इतनी कि नौकरी-चाकरी की जरूरत ही नहीं। जमीन जैसे सोना उगलती हो। पथरीले पहाड़ में भी ऐसी उर्वर

भूमि, यकीन ही नहीं होता। पूरे साल हरियाली। पैदावार इतनी कि लोग खा-पीकर अपनी अन्य जरूरतें अनाज बेंचकर ही पूरी कर लेते। बाकी आने-जाने वालों में जो बँटते रहता, सो अलग। गेहूँ, चावल दाल से हमेशा भंडार भरे रहते। जैसा अनाज, वैसी ही फल सब्जी। असूज-कार्तिक में तो कद्दू, ककड़ी, लौकी, तोरई, बैंगन व अन्य साग-भाजियों की भरमार। भुट्टे अलग। बच्चे तो खा-खाकर अघा जाते।

यही हाल फल-फूलों का। मालटा, संतरे, अखरोट, दाड़िम, अनार से पेड़ ऐसे लकदक कि बटोरना भी मुश्किल। सीजन में काफल, हिंसर, किनगोड़े और न जाने क्या-क्या...। लगता, जैसे कुदरत ने मेहरबान होकर बाकी सारे गाँवों की कसर यहीं पूरी कर दी हो। चारों ओर हरा-भरा जंगल, इसलिए लकड़ी-चारे की कोई कमी नहीं। हर घर में चार भैंसे। एक दूध देना बंद कर दे, दूसरी खूंटे पर लाने में देर नहीं। ऊपर से गाय-बैल बकरियाँ अलग। दूध, घी, छांछ इतना कि घर आये मेहमान भी तर हो जाते...।"[25]

'छूट गया पड़ाव' का कथानक इसी समृद्ध वातावरण से प्रारम्भ होता है। कथानक क्या, दस पंक्तियों से भी कम की सहज गति की कथा

सर्वसम्पन्न होने पर भी बिनगढ़ गाँव का दुर्भाग्य यह है कि गाँव के बच्चों को शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। पाठशाला है, पर कोई शिक्षक उस गाँव में रुकना नहीं चाहता। गाँव के वयोवृद्ध व जागरूक नागरिक आनन्द सिंह के सतत प्रयासों से उपन्यास की नायिका सरोज की नियुक्ति गाँव में हो जाती है। वह अपने शिक्षकीय दायित्वों का निष्ठापूर्वक निर्वहन करती है साथ ही, शिक्षेतर गतिविधियों को संचालित कर गाँववालों का हृदय जीत लेती है। वह अपने कर्तव्य के प्रति इतनी निष्ठावान है कि अवकाश के दिनों में भी गाँव नहीं जाती। वह भूल जाती है कि उसका भी पति है, बच्चे हैं और सास-ससुर हैं। आनन्द सिंह तो उसे अपनी पुत्री ही मानते हैं।

इन्हीं आनन्द सिंह की पुत्री है– 'रानी' जिसका चेहरा अत्यन्त कुरूप और भयावह है। रानी की माँ तक रानी के अमंगल की कामना करती रहती है। परन्तु आनन्द सिंह रानी को

सांत्वना देते रहते हैं। परन्तु सरोज की एक ही चिंता रहती है रानी को सुरूप कैसे बनवाया जाये। उसका पति भी कभी-कभी खीझ उठता। तब सरोज का उत्तर रहता–

"इंसान हो तो इंसानी सोच भी रखो। कुछ इंसानियत का काम भी कर दो। अपना और अपने परिवार का पेट तो जानवर भी भरता है। इससे ऊपर उठकर सेवा-भाव ही इन्सानियत है। मैं इन्सानियत का यही धर्म निभा रही हूँ और निभाती रहूँगी।"[26]

रानी के उपचार के लिए सरोज नव जीवन संस्था से सम्पर्क करती है, पैसों का प्रबंध करती है और आनन्द सिंह के साथ चंडीगढ़ जाकर रानी की प्लास्टिक सर्जरी करवाती है परन्तु वह सफल नहीं हो पाती और रानी की मृत्यु हो जाती है। यह था वह पड़ाव जो सरोज से छूट जाता है।

'छूट गया पड़ाव' उपन्यास नायिका प्रधान है और दुखान्त है। यहाँ रानी की मृत्यु का प्रश्न नहीं है। प्रश्न यह है कि उपन्यास की नायिका ने कितनी निष्ठा और समर्पण से अपने लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु प्रयास किया।

रानी की मृत्यु के पश्चात सरोज को उसका एक टेप सुनवाया जाता है। उसे सुनकर निराश सरोज को बल प्राप्त होता है और वह अपने अधूरे कार्यों को पूरा करने के लिए उठ खड़ी होती है –

"डॉक्टर साहब मेरे पापा-मम्मी और मास्टरनी जी से कहना मुझे माफ कर दें। मैं उन्हें छोड़कर जा रही हूँ। लेकिन जल्द ही लौटूँगी खूब सुन्दर बनकर। फिर कभी नहीं रोएँगे वह। उनके दुखों का पहाड़ पाटकर खुशियों का समंदर लौटा लाऊँगी। उनके फर्ज का कर्ज है मुझ पर। पर यह रास्ता उन्हें ही खोलना है, मुझ जैसे अभागों का भाग्य खोल कर, उनके जीवन की बगिया महकाकर, ताकि कुलांचे भरने की उम्र में उनके अरमानों को लकवा न मार जाये। उनका यह फर्ज दुखियारों की दुआ बनकर जल्द ही मुझे लौटा लाएगा।

सुनकर सरोज की डबडबाई निस्तेज आँखों में चमक लौट आई। उसने गहरी साँस भरते हुए कहा– "हाँ रानी बिटिया, मैं लाऊँगी तुझे जल्द ही लौटाकर।

उसी पल बिस्तर छोड़कर उठ खड़ी हुई सरोज। पड़ाव छोड़कर मंजिल की ओर, अपने अधूरे मिशन को पूर्ण करने के लिए....।"[27]

इसी आशावादी दृष्टिकोण के साथ उपन्यास समाप्त होता है एक सार्थक संदेश और संवेदनशीलता के पोषण के साथ।

6. पल्लवी:

प्रस्तुत उपन्यास भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली से वर्ष 2010 में प्रकाशित हुआ। 173 पृष्ठीय यह उपन्यास भी नायिका प्रधान और दुखांत है। नायिका पल्लवी के नाम पर उपन्यास का शीर्षकीकरण 'पल्लवी' किया गया है। नारी की दृढ़ता और कर्मठता उपन्यास में दृष्टव्य है।

उपन्यास की मूल कथा पल्लवी और ध्रुव के संघर्ष पर आधारित है। पल्लवी अमीर परिवार की लड़की है। उसके पिता रमाकांत अमीर थे और सरकारी अधिकारी। उन्हें अपने स्तर पर अत्यंत घमंड था। आदर्श जीवन मूल्य, नैतिकता, समानता जैसे शब्द उनकी दृष्टि में बकवास और व्यर्थ के थे। यही कारण था कि उन्हें बी. एस. सी. में पढ़ रही अपनी बेटी का गाँव के गरीब युवा बी. ए. में अध्ययनरत ध्रुव के साथ मेल जोल पसंद नहीं था। परन्तु पल्लवी ध्रुव की सादगी, कवित्व गुण, योग्यता तथा कठोर अध्ययनशीलता के कारण पागलपन की सीमा तक आकृष्ट थी। वह ध्रुव की कविताओं की दीवानगी की सीमा तक प्रशंसक थी।

ध्रुव के पिता गाँव के लघु कृषक थे और माता सामान्य गृहिणी जो रात दिन घर में और खेतों में खटती रहती। छोटा भाई श्रवण पैरों से दिव्यांग था। ध्रुव मेधावी था। प्रदेश भर में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने पर उसे दसवीं और बारहवीं में छात्रवृत्ति प्राप्त हुई, जिससे उसकी पढ़ाई के व्यय की पूर्ति होती रही।

ध्रुव सेना में जाने का इच्छुक था। किशन उसका आदर्श था, जो पास के गाँव का निवासी था और सेना में था। किशन से आगे बढ़ने का मंत्र लेकर ध्रुव का चयन भी सेना में हो जाता है और वह प्रशिक्षण के लिए चला जाता है।

वातावरण प्रधान उपन्यास में प्रारंभ से लेकर तेरहवें परिच्छेद तक पूर्व स्मरण शैली (फ्लैश बैक पद्धति) अपनाई गयी है। उपन्यास का प्रारंभ अत्यंत कौतूहल पूर्ण शैली में होता है। 'चंदा', 'बिन्दा' जैसे नाम पढ़कर पाठक यही सोचता है कि ये मानवीय पात्र हैं। रहस्योद्घाटन होने पर विदित होता है कि ये मानवीय पात्र नहीं, पशुओं के नाम हैं:

"भोर में झकझोर कर किसी अतिथि के आने की आहट दे जाता 'कागा' आज न जाने क्यों मुड़ेर पर अलसाये बैठा है। नीचे पगलाई-सी 'चंदा' अपना खूँटा उखाड़ डालने पर आमादा है। दूर कहीं बिछड़े बछड़े की मर्मांतक पुकार कानों में पड़ती, तो वह और बिलबिला उठती। पीठ से जा चिपकते, पेट के भीतर कहीं गहराई से निकलती– 'अम्माह'... 'अम्माह'.... की उसकी ममता भरी चीत्कार जैसे कलेजा चीर जाती।

पास ही बूढ़ी हो चली 'बिंदा' पथराई-सी खड़ी है। सुबह से उसने आज तिनका तक मुहँ में नहीं डाला। बस, आँसू बहाये जा रही है।"[28]

चौदहवें परिच्छेद में पल्लवी कुछ समय के लिए अतीत से बाहर आती है और पुनः फ्लैश बैक पद्धति में कथा प्रविष्ट हो जाती है।

डॉ. निशंक का कवि हृदय इस उपन्यास में खुलकर व्यक्त हुआ है। ध्रुव के रूप में डॉ. निशंक ने अपनी 25 छोटी बड़ी कविताएँ इस उपन्यास में अभिव्यक्त की हैं–एक लघु काव्य संकलन के बराबर।

इन परिच्छेदों में मूल कथा को गति प्रदान करने के लिए पल्लवी-ध्रुव का महाविद्यालयीन जीवन (college life) कक्षाएँ, पुस्तकालय, केंटीन, छात्र-साथी, चुहलबाजियां, खेलकूद, मस्ती आदि का विशद् चित्रण है। यहीं पल्लवी और ध्रुव में प्यार के बीज अंकुरित होते हैं जो पल्लवी के पिता के लाख विरोध के पश्चात् भी परिणय सूत्र में परिणित हो जाते हैं।

पल्लवी और ध्रुव की मूल कथा के साथ-साथ किशन और किशन की पत्नी बिंदु की प्रासंगिक कथा चलती है। किशन की पत्नी अपने सास-ससुर का साथ पसन्द नहीं करती और न ही वह गाँव में रहना चाहती है। बेटे की पढ़ाई का बहाना लेकर वह सास-ससुर से अलग होकर शहर में रहने हेतु किशन को उकसाती रहती है। सास-ससुर को जली कटी सुनाते हुए अपमानित करते रहना बिंदु के लिए आम बात थी। कलह बचाने की दृष्टि से वे चुप ही रहते।

युद्ध में किशन शहीद हो जाता है। भारतीय पत्नी की भाँति वह भी रोती-बिसूरती है। परन्तु सारे कर्मकांड समाप्त होते ही वह भाइयों के बहकावे में आकार मायके चली जाती है। गाँव वाले शहीद किशन का स्मारक बनवाते हैं। मूर्ति के अनावरण के समय समूचा क्षेत्र सम्मिलित होता है, परन्तु बिंदु को उसके अमानवीय व्यवहार के कारण पूछा तक नहीं जाता। उसके भाई शासन से प्राप्त सारी राशि अपने अधिकार में कर लेते हैं और एक परिचित घनिष्ठ वकील के सहयोग से पेट्रोल पम्प खोलते हैं।

सारी संपत्ति अपने अधिकार में कर लेने के पश्चात अब बिंदु की भाभियाँ उसे अपमानित करना प्रारम्भ कर देती हैं। भाई उसका पुनर्विवाह अपने उसी वकील से करा देते हैं जो तलाकशुदा है। बिंदु को अपने वकील पति की वास्तविकता का पता चल जाता है कि वह तलाकशुदा है। वह अपराधी प्रवृत्ति का है। पर अब पछतावे के अतिरिक्त और कुछ नहीं था बिंदु के पास। सारी घटना से बिंदु के सास-ससुर अवगत थे। उन्होंने उसे अपने गाँव बुला लिया। शर्म का बोझ उठाए, ग्लानि भरे हृदय से ठोकर लगने के बाद बिंदु अपने पाँच वर्षीय पुत्र के साथ अपनी ससुराल वापस आ गयी।

देश की रक्षा करते हुए ध्रुव भी विवाह के तीन माह पश्चात शहीद हो जाता है। बिंदु के चरित्र के विरुद्ध पल्लवी, शहीद के परिवार को प्राप्त होने वाली राशि और सम्मान निधि स्वीकार नहीं करती। सेना के बड़े अधिकारी, सेनाध्यक्ष, यहाँ तक कि महामहिम भी उसे समझाते हैं परन्तु पल्लवी वह राशि स्वीकार नहीं करती:

"पर सहायता राशि की बात वहीं की वहीं रह गयी। सेनाध्यक्ष भी उसे मना नहीं पाए। धीरे-धीरे यह खबर अखबार वालों तक भी पहुँची तो सच्चाई जानने के लिए वे भी चक्कर काटने लगे। कोई शाहिद-परिवार सहायता राशि लेने से ही इनकार कर दे अपने आप में बड़ी खबर तो थी ही यह। अंतत: तीनों सेनाओं के सर्वोच्च महामहिम राष्ट्रपति ने पल्लवी से मिलने की इच्छा जाहिर की। पर पल्लवी टस-से मस न हुई। उसका बड़ा ही भावनात्मक जवाब था: "आखिर ऊपर जाकर भी मुहँ दिखाना है ध्रुव को। क्या कहेगा वह मुझसे! यही, कि मेरे लक्ष्य की मर्यादा रखने की बजाये तुमने उसका सौदा कर दिया!"[29]

पल्लवी प्रयास करती है और सेना में अधिकारी बन जाती है। अपने और गाँव वालों के सहयोग से गाँव में एक संस्था स्थापित करती है और ग्राम के विकास का पथ प्रशस्त करती है:

"अगले कुछ दिन संस्थान की व्यवस्था में व्यस्त रही पल्लवी। सोबन सिंह जी को उसने संस्थान के संरक्षक का दायित्व सौंपा तो गाँव की कुछ लड़कियों को पढ़ाने की जिम्मेदारी दे दी। उन लड़कियों को भी शहर से आयी संस्था के लोगों से प्रशिक्षण लेना था। संस्था की आमदनी और खर्च का हिसाब रखने का जिम्मा श्रवण को दिया गया और साथ ही संस्था में पढ़ने वाले बच्चों को संगीत सिखाने की जिम्मेदारी भी उसी पर थी। अपने वेतन का एक हिस्सा हर महीने संस्थान को देने की ज्यों ही पल्लवी ने घोषणा की तो उसकी देखा-देखी आर्थिक सहायता देने वालों की होड़ लग गयी।"[30]

डॉ. निशंक ने अपने इस उपन्यास में दो विरोधी पात्रों के माध्यम से दो विरोधी चरित्रों को विश्लेषित किया है। गरीबी और अमीरी, विनम्रता और दर्प-विरोधी चरित्र हैं। पल्लवी नारी है, बिंदु भी नारी है। एक विनम्र और सेवाभावी है तो दूसरी घमंडी। एक का अमीर पिता मध्यमवर्गीय और निम्न स्तर के लोगों को हेय दृष्टि से देखता है, तो दूसरी ओर निम्न वर्ग का गरीब कृषक वर्गीय व्यक्ति उदारता, करुणा, विनम्रता और सहकार जैसी उदात्त भावनाओं का पोषण करता है। ऐसे दो ध्रुवीय चरित्रों का अंकन करते हुए मानवीय मूल्यों की

स्थापना करना इस उपन्यास का उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति में उपन्यासकार सफल रहा है।

7. भागोंवाली:

'भागोंवाली'– उपन्यास के केन्द्रीय कथानक को देखते हुए कहा जा सकता है कि यह शीर्षक संक्षिप्त, आकर्षक और मौलिक है तथा पुस्तक की अन्तर्वस्तु को स्पष्ट करने में सहायक है। परन्तु प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित 143 पृष्ठीय इस उपन्यास का एक शीर्षक 'बटवारा' भी किया जा सकता था !! 'भागोंवाली'-अर्थात पूतोंवाली। ऐसी स्त्री जो संतान रूपी संपत्ति से समृद्ध हो। प्रस्तुत उपन्यास का कथानक इस तथ्य को लेकर बुना गया है कि किसी माँ के चार-चार बेटे-बहुएँ हों फिर भी माँ को बोझ समझा जाये, इससे अधिक पतन और क्या हो सकता है? हम प्रति वर्ष मातृ दिवस (Mother's day) मनाते हैं, पितृ दिवस (Father's day) मनाते हैं। परन्तु सच्चाई यह हैं कि हमारा समाज अत्यन्त संवेदनहीन हो चुका है। 'भागोंवाली' का कथानक इस तथ्य का प्रमाण है। उपन्यास के शीर्षक के नीचे लिखा गया वाक्य– "एक परिवार के अन्तर्द्वंद्व और टूटते बिखरते रिश्तों की मार्मिक कहानी" अत्यन्त सटीक है और यह एक ही वाक्य समूचे उपन्यास की कथा को प्रतिबिंबित करने के लिए पर्याप्त है। वाक्य में निहित 'अन्तर्द्वंद्व' तथा 'मार्मिक' शब्द अत्यन्त महत्व के हैं।

उपन्यास का प्रारम्भ ही अशुभ सूचक शब्दों से होता है– "घर में अचानक कोहराम मच गया, जिसे देखो वही शास्त्री जी के घर की तरफ दौड़ा चला जा रहा था। माजरा किसी की भी समझ में नहीं आया। अभी तक चंगे शास्त्री जी को यह अचानक क्या हो गया?

लोग एक दूसरे से कह रहे थे– क्या हो गया शास्त्री जी को? अभी दोपहर में तो उन्हें देखा था, कैसे मृत्यु हो गयी उनकी?"[31]

उपन्यास का समापन भी अशुभ से अर्थात मृत्यु से होता है–

"आशा-निराशाओं के बीच झूलते हुए भागोंवाली अम्मा इस निर्दयी संसार से विदा हो गई– 'मुझे कहीं नहीं जाना....'

ये आखिरी शब्द निकले थे अम्मा के मुख से और गर्दन एक ओर लटक गयी। जोर से चीख उठा था छोटा– 'माँ....'

तीनों भाई दौड़कर दरवाजे के पास पहुँच चुके थे।

अम्माँ चली गई, लेकिन आस-पड़ौस और मुहल्ले में रहनेवालों को सबक दे गई थी कि आगे से चार-चार बेटों की माँ को कोई भागोंवाली के नाम से न पुकारे।"[32]

आदि में पति का (शास्त्री जी के नाम से विख्यात शिक्षक रामानंद) अंत और और अंत में नायिका का अंत। इन्हीं दो मृत्युओं के मध्य है उपन्यास का संघर्षपूर्ण कथानक।

'शिक्षक' पदनाम को गरिमा प्रदान करने वाले शास्त्रीजी की दो बेटियाँ जिनका विवाह वे कर चुके हैं। चार बेटों में से दो का विवाह हो चुका था। शास्त्री जी ने अपने रिटायर होने से प्राप्त फंड से एक मकान भी बनवा लिया था। अचानक शास्त्री जी की मृत्यु के कारण पूरा परिवार बिखर गया, अविवाहित और अध्ययनरत दो भाइयों का पहले बँटवारा हुआ–

"कुलदीप की पढ़ाई पूरी हो गई है, अब उसे नौकरी की तलाश करनी है, सो वह भाई के साथ दिल्ली रह लेगा। वहीं अपने लिए नौकरी ढूँढ़ लेगा। रहा जयदीप, तो वह मेरे हिस्से में आएगा।

सुनकर अवाक् रह गई अम्माँ। यह कैसा बँटवारा हो रहा है? जीते-जागते इंसानों का बँटवारा? उसे लगा मानों उसके शरीर के दो टुकड़े कर दिये गये हों।"[33]

इस बँटवारे तक तो फिर भी ठीक था। पर अम्माँ के बँटवारे ने तो मानवता को तार-तार कर दिया:

"दोनों भाइयों को पास बिठाकर दिनेश बोला– 'साधना को घर-परिवार संभालना होता है। मुझे माँ को हर हफ्ते अस्पताल ले जाना पड़ता है। समय पर दवाइयाँ देनी पड़ती हैं।

ऐसे में यदि सब मिलकर यह जिम्मेदारी निभाएँ तो....।' काफी देर तक विचार-विमर्श के बाद रास्ता निकाल लिया गया। बात दिनेश की सही थी। इसलिए दोनों भाइयों ने कोई प्रतिकार नहीं किया। तय हुआ कि अम्माँ बारी-बारी से चार-चार महीने हर भाई के घर में रहेगी। चूँकि सबसे छोटा माँ को साथ नहीं रख सकता, इसलिए वह हर महीना अम्माँ के खर्च हेतु दो हजार रुपये उस भाई के यहाँ भेजेगा जहाँ अम्माँ रहेगी।"[34]

ऐसी अपमानजनक स्थिति में किसका चित्त स्थिर रह सकता है !! अम्माँ भी विचलित हो उठी। पर अभी तो उसे दो बँटवारे और झेलने थे। एक सबसे छोटे बेटे की शादी के व्यय का बँटवारा और सबसे बड़ा बँटवारा-उसके मकान का जो अम्माँ के स्वर्गीय पति की अमानत थी उसके पास।

अम्माँ के पास उपलब्ध पुराने गहनों, कुछ छोटे की स्वयं की बचत के अतिरिक्त जो व्यय होना था, वह भी तीनों भाइयों ने बराबर-बराबर बाँटा। मकान का बँटवारा अम्माँ के जीवन का अंतिम बँटवारा था:

"ऐसा करते हैं कि मकान की आज की कीमत निकाल लेते हैं, उसके चार हिस्से कर देते हैं। फिर जिस भाई को भी मकान चाहिए होगा, वह बाकी के तीनों भाइयों को उनके हिस्से का पैसा चुकाएगा।

- और माँ का हिस्सा? माँ कहाँ जाएगी?' छोटा अभी तक चुप बैठा था,उसने अपना तर्क दिया।

  झटका लगा तीनों भाइयों को। क्या बात कह दी इसने? तीनों ने सोचा, माँ रहती तो इसी के साथ है, फिर माँ के बाद वह हिस्सा इसी का हो जाएगा।

- माँ का हिस्सा, माँ क्या करेगी हिस्से का? हम हैं न उसके लिए।' बड़े ने बड़ी चतुरता से कहा।"[35]

अम्माँ के चार बेटों में से प्रारम्भिक दो बेटों का चरित्र उपन्यासकार ने अत्यंत निर्दय, तीसरे का आंशिक तथा सबसे छोटे बेटे का सहृदय के रूप में गढ़ा है। सबसे छोटा बेटा सेना में

है। उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में यह दर्शाने का प्रयास किया है कि विवाहोपरांत बेटों की जो बहुएँ आती हैं उनके द्वारा भड़काये जाने पर ही परिवार में कलह, वैमनस्य तथा शत्रुता पैर पसारने लगती है–

"अम्माँ को अब महसूस होने लगा कि घर के मुखिया के जाने के बाद घर के बड़े सदस्यों और उनकी बहुओं ने भी रंग बदलने शुरू कर दिये हैं। अम्माँ अब चिंतित हो उठीं। ऐसे में कैसे पढ़ाई होगी इन दोनों की। अभी शास्त्री जी को गुजरे दिन ही कितने हुए हैं और अब जिम्मेदारियों का सवाल उठाकर बहू ने दिल छलनी कर दिया। सब कुछ सुन-समझ कर भी अनसुनी कर दी अम्माँ ने। अनसुनी करने के अलावा और कोई रास्ता भी तो नहीं था उसके पास। सबसे भली चुप। कहती भी तो क्या कहती? यदि कुछ कहती, तो बहू से भी कुछ और जवाब मिलता, इससे विवाद और बढ़ जाता, फायदा कुछ भी नहीं था।"[36]

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने इस उपन्यास के द्वारा पारिवारिक सन्तुलन के सूत्र प्रस्तुत किये हैं। नारी का एक रूप अम्माँ और छोटी बहू का है जो प्रेम, सहयोग और सम्मान का है। दूसरी ओर पुरुष के भी दो रूप हैं– एक शास्त्री जी और उनके छोटे बेटे जयदीप का है जो संतोष, पर दुख कातरता, प्रेम, सहयोग तथा मानवीय मूल्यों में विश्वास ही नहीं करता अपितु इन मूल्यों को जीता है, अंगीकार करता है:

"वे अपने नियम-धरम के बहुत पक्के थे। सुबह पूजा-अर्चना और भगवान को भोग लगाने के बाद ही कुछ खाते-पीते। बच्चों की हर गतिविधि पर वे बारीकी से नजर रखते और हर प्रकार से खुद के आचरण से उन्हें सीख देकर संस्कारित करने का यत्न करते रहते थे।"[37]

परन्तु यह आवश्यक नहीं कि पिता के सारे गुणों को उसकी संतानें यथावत् ग्रहण ही कर लें। दैनिक जीवन में ऐसे एक नहीं; अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी और लाल बहादुर शास्त्री का उदाहरण दिया जा सकता है।

8. कृतघ्न:

प्रकाशन क्रम में डॉ. निशंक का यह आठवाँ उपन्यास है जो 'भागोंवाली' के साथ ही वर्ष 2015 में प्रकाशित हुआ था। यह उपन्यास पाठकीय दृष्टि से अत्यंत श्रेष्ठ है। कौतूहल, रहस्य एवं गतिशीलता इस उपन्यास में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उपस्थित है जो किसी भी श्रेष्ठ उपन्यास के गुण होते हैं। 152 पृष्ठीय इस उपन्यास का प्रकाशन प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से हुआ है।

उपन्यास में तीन कथानक साथ-साथ चलते हैं। एक अंबुज का, दूसरा पूनम का और तीसरा सुकन्या का। इन तीनों में अंबुज और सुकन्या के चरित्र का उदात्त चित्रण उपन्यासकार ने किया है। 'पूनम' उपन्यास की वह पात्र है, जो अपनों पर किये गये उपकार के बदले उनको ही गिराने का कार्य करती है। यह कृतज्ञता के स्थान पर कृतघ्नता का कार्य करती है। इसी स्त्री पात्र की गतिविधियों के आधार पर उपन्यास का शीर्षक कृतघ्न किया गया है।

'कृतघ्न' घटना प्रधान उपन्यास है। परन्तु यह एक मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास भी है। स्त्री अपने प्रारम्भिक रूप-कन्या और किशोरी के समय अत्यन्त लज्जाशील, छुईमुई और आत्मकेंद्रित होती है। इस समय यदि कोई बात इसके हृदय में घर कर जाये, तो उसका आजीवन असर उस पर रहता है। कुछ तो धीरे-धीरे वास्तविकता से साक्षात्कार कर लेते हैं, परन्तु पूनम जैसी किशोरियाँ उसे हृदयंगम नहीं कर पातीं। 'पूनम' कृतघ्न क्यों हुई, इसका अत्यन्त सार्थक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उपन्यासकार ने किया है।

एक एक्सीडेंट में माता पिता की मृत्यु के पश्चात पाँच वर्षीय पूनम का पालन-पोषण किया दादी, चाचा (नरेन) और चाची (सावित्री) ने। सामान्य परिवार और आय का छोटा-सा साधन-किराने की छोटी-सी दुकान। और फिर–

"अतिशय लाड़-प्यार और माता-पिता विहीन पूनम से चाचा व दादी की सहानुभूति ने उसे एक हद तक जिद्दी बना दिया। जिस दुकान की कमाई से पहले पाँच आदमियों का

परिवार पलता, उसी में अब तीन लोग पल रहे थे और उसमें भी अधिकांश खर्चा पूनम पर ही होता।

बालमन कच्ची स्लेट के समान होता है, जिस पर पूर्व का लिखा आसानी से मिटाया जा सकता है, ऐसा ही हुआ पूनम के साथ। माता-पिता की मृत्यु का वह खौफनाक मंजर नन्हीं पूनम धीरे-धीरे भूलती गई और कुछ याद रहा तो चाचा और दादी का प्यार। सुबह सवेरे ही स्वच्छ इस्तरी किये हुए कपड़े, चमाचम चमकते पॉलिश किए हुए जूते और टाई लगाकर पूनम स्कूल जाती तो दादी सैकड़ों बलाएँ ले लेती– 'मेरी राजकुमारी, नजर न लगे इसे किसी की।"[38]

यह अतिशय लाड़-प्यार, राजकुमारी-राजकुमार के कल्पित चित्र तथा उसके प्रत्येक हठ की पूर्ति ने पूनम को निडर और जिद्दी बना दिया।

दादी की मृत्यु के बाद कुछ दिनों तक तो उसे चाचा-चाची का स्नेह मिला, उनके दो बच्चे होते ही पूनम के हिस्से का स्नेह समाप्त हो गया और वह प्रताड़ित होने लगी। परन्तु पहली बार जब चाची ने उस पर हाथ छोड़ा तो उसका आक्रोश फट पड़ा– "मार लो, टुकड़े कर दो मेरे, लेकिन जो तुम कहोगी, वह काम तो मैं करूंगी नहीं। बदला लूँगी तुमसे इस बात का, देख लेना एक दिन।"[39] और चौदह-पन्द्रह वर्षीय किशोरी पूनम ने बदला ले लिया।

नरेन ने बाहर का एक कमरा एक छात्र को पेइंग गेस्ट के रूप में दे रखा था। उसे प्रतिदिन दोनों समय भोजन पहुँचाने का दायित्व पूनम का था। कक्षा आठ उत्तीर्ण पूनम उससे आगे पढ़ने और डॉक्टर बनने की बातें करती। पूनम उसे चाहने लगी। छात्र इस चाह से अनभिज्ञ था। पर उसके सहयोग से पूनम ने प्राइवेट रूप से हाई स्कूल कर लिया। नर्सींग कोर्स करना चाहती थी, पैसा कहाँ से आये? पेइंग गेस्ट राघवेन्द्र की सलाह पर पूनम ने अपने चाचा से मकान और दुकान में अपना हिस्सा माँग लिया। माथा ठनका चाचा कि कौन पट्टी पढ़ा रहा है उसे? राघवेन्द्र पर शक की सुई गई। पूनम का राघवेन्द्र के कमरे में जाना प्रतिबन्धित कर दिया गया।

एक दिन अवसर पाकर वह रात के दो बजे राघवेन्द्र के कमरे में जाकर सहसा उससे लिपटकर भाग चलने के लिए कहने लगी। राघवेन्द्र के लिए यह अप्रत्याशित था। वह पकड़ी गई, पर उसने विषपान कर लिया। पुलिस प्रकरण बना। चाचा-चाची बदनाम हुए। पूनम ने उनसे बदला ले लिया। पूनम को अस्पताल में भर्ती कराया गया। यहीं उसकी भेंट अंबुज से हुई जो उसे अपने आश्रम में ले आया।

अंबुज सम्मानित और लखपति परिवार का इकलौता उच्च शिक्षित युवक है जो गाँव में रहकर समाज सेवा करता है। उसके आश्रम में अनेक बेसहारा युवतियाँ और स्त्रियाँ हैं। पूनम भी यहीं आ जाती है। अंबुज उसे नर्सिंग कोर्स कराता है। एक निजी संस्थान में उसे नर्स की नौकरी मिल जाती है। नौकरी करते हुए वह अपनी आगे की पढ़ाई जारी रखती हैं। एक और अनाथ कन्या-सुकन्या है, जो पूनम की अच्छी मित्र हैं।

एक एक्सीडेंट में अंबुज की पत्नी वर्षा की मृत्यु हो जाती है। अम्बुज महीनों अस्पताल में रहने के बाद भी अचेतावस्था में वह घर आता है। नर्स के रूप में अस्पताल प्रबन्धन पूनम को अम्बुज की देख रेख के लिए नियुक्त करता है। सुकन्या अम्बुज की दोनों नन्हीं बालिकाओं की देख रेख के लिए रखी जाती है। इतना भव्य भवन और अम्बुज को देखकर उसके सुप्त राजकुमार और राजकुमारी के स्वप्न जागृत हो जाते हैं। अंबुज की पत्नी बनने के प्रयास में वह उसे ही बदनाम कर देती है और जेल भिजवा देती है। परन्तु सुकन्या की सूझबूझ और चतुराई से अंबुज बच जाता है। पूनम पर छल और षड़यन्त्र रचने का प्रकरण दर्ज हो जाता है। सुकन्या को अपने अनुकूल पाकर अम्बुज उससे विवाह करने की स्वीकृति दे देता है:

"पूनम और सुकन्या का सामाजिक स्तर लगभग एक सा था और अंबुज का परिवार उनके समक्ष आकाश में चमकते सूर्य जैसा। हतभागिनी पूनम ने ईर्ष्या और हठवश उसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया, वह हाथ जला बैठी। दूसरी ओर सौम्य और संतोषी प्रकृति की सुकन्या के आँचल में यही सूर्य का तप्त गोला चांद सी शीतलता बिखेरने को आतुर खड़ा था।"[40]

प्रस्तुत उपन्यास में पूनम और सुकन्या के विपरीत चरित्रों को एक साथ उपस्थित कर पाठकों के अंतर्मन को झकझोरने तथा चिंतन करने का कार्य उपन्यासकार ने किया है। इस औपन्यासिक कृति ने यह भी सिद्ध किया है कि डॉ. निशंक मानव-मन के कुशल विश्लेषक हैं।

9. प्रतिज्ञा :

'प्रतिज्ञा' उपन्यास का प्रकाशन वर्ष 2019 में प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली से हुआ। कृति में 152 पृष्ठ और सत्रह परिच्छेद हैं। समाज में व्याप्त गंदगी को दूर करना सरल कार्य नहीं होता। अपने प्राण तो सबको प्यारे होते हैं, कोई मरना नहीं चाहता। पर किसी-न-किसी को साहस तो जुटाना ही पड़ता है। उपन्यास के नायक वीर सिंह उर्फ वीरू की यही सोच है–

"माँ, किसी को तो चिंता करनी पड़ेगी। अगर सब लोग अपने बारे में ही सोचते रहे; अपने स्वार्थों में डूबे रहे, इसी तरह डरते भागते रहे तो सब बरबाद हो जाएगा।"[41]

वीरू आदर्श युवक है, शिक्षित है और अपने गाँव को आदर्श गाँव बनाना चाहता है। पढ़कर वीरू ने परचूने की दुकान खोली और गाँव में उपलब्ध संसाधनों के द्वारा स्वयं कुछ किया तो बेरोजगार युवक स्वतः उसकी ओर आकर्षित हुए। परन्तु उपन्यास नायक वीरू गाँव की सेवा करते हुए मारा जाता है। यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण और सौतेला रवैया है कि देश की रक्षा में सैनिक की मृत्यु हो तो शहीद और ग्राम रक्षा में कोई नागरिक मरे तो मृत्यु!! 'प्रतिज्ञा' उपन्यास के माध्यम से इस प्रश्न को उठाया जा सकता था, परन्तु उपन्यासकार ने ऐसा नहीं किया।

यह संयोग ही कहा जाएगा कि प्रस्तुत उपन्यास के पूर्व लेखक का उपन्यास 'भागोंवाली' का प्रारम्भ भी मृत्यु के दृश्य से हुआ था, इस उपन्यास का प्रारम्भ भी मृत्यु के दृश्य से होता है :

"मदनपुर की रौनक को आज न जाने किसकी नजर लग गयी। खूबसूरत पहाड़ियों के बीच कटोरेनुमा घाटी में बसे इस मनमोहक गाँव में अन्य दिनों में देर रात तक खूब चहल

पहल रहती, लेकिन आज सूरज भी नहीं डूबा, पर पूरा गाँव अमावस की धूप अंधेरी रात की तरह मरघटी सन्नाटे में डूब गया। चारों ओर एक अजीब सी बेचैनी भरी दम-घोंटू खामोशी।

किसी बहुत बड़ी अनहोनी का आभास देती इस खामोशी को बीच बीच में कलेजा चीर जाती एक चीख तोड़ती और फिर वही सन्नाटा पसर जाता। यह मर्मांतक चीख वीरू की माँ भागुली देवी की।

वह अभागन चीख-चीखकर अपने भाग को कोस रही थी। अच्छी तरह होश भी नहीं सम्भाला था कि माँ बाप चल बसे। शादी हुई तो गोद में दूध मुँहा बच्चा छोड़कर पति भी चल दिया। बच्चे का मुँह देख मन कड़ा किया, उसी को अपने जीने का सहारा समझ किसी तरह कमर कसी...। सोचा, चलो, अब बुढ़ापा ही सुधर जाये पर भाग्य को वह भी मंजूर नहीं रहा। दिन का चैन, रात की नींद खोकर जिसके लिए पूरी जवानी होम कर दी, आज वह भी रोता बिलखता छोड़ गया था।"[42]

'भागोंवाली' की भाँति 'प्रतिज्ञा' का अन्त भी दुखान्त होता है। परन्तु यह दुखान्त सात्विक पात्रों की मृत्यु से नहीं, अपितु असामाजिक तत्व के अन्त से होता है। ऐसे लोग जो समाज विरोधी हैं धरती पर बोझ हैं, उनका अन्त सुखकर ही होता है–

"अपनी सफलता के मद में चूर कुलदीप सम्भल भी न पाया। सम्भलने की कोशिश की तो सुनीता की सहेलियों ने उसे घेर लिया। सब कुछ इतना अप्रत्याशित था कि किसी की समझ में कुछ न आया। ....सामने अविश्वसनीय दृश्य था। थोड़ी ही देर में कुलदीप का रक्त-रंजित शव पंचायत हॉल में पड़ा था।"[43]

उपन्यास का कथानक अत्यन्त संक्षिप्त है। उपन्यास में दो तथ्य महत्वपूर्ण हैं। एक, खलनायक (कुलदीप) द्वारा नायक (वीरू) की हत्या और प्रतिशोध स्वरूप नायिका (सुनीता) द्वारा खलनायक की हत्या करना।

दूसरा तथ्य है उपन्यास का शीर्षक। नायिका और नायक द्वारा समूचे उपन्यास में कहीं कोई प्रतिज्ञा नहीं की गयी न ही पूरे उपन्यास में शीर्षक को छोड़कर कहीं भी 'प्रतिज्ञा' शब्द

किसी भी प्रसंग में व्यवहृत हुआ है। फिर भी उपन्यास का शीर्षक अत्यन्त सार्थक है और उपन्यास की आत्मा को अभिव्यक्त करने में समर्थ है। कृति में न तो नायक कहीं प्रत्यक्षतः ग्राम में व्याप्त कुरीतियों; विशेषतः शराब कारोबार के पैर पसारने को नष्ट करने की प्रतिज्ञा करता है और न ही नायिका अपने पति के हत्यारे को सजा देने की प्रतिज्ञा करती है। इन दोनों के हाव-भाव और विचार अवश्य ही उनकी प्रतिज्ञा को इंगित करते हैं–

"पर वीरू भी कहाँ हार मानने वाला था। उसने अकेले ही विरोध करने की ठान ली....। उधर शराब तस्करों के पास वीरू के पल-पल की खबर पहुँचने लगी। हर फन के माहिर इन तिकड़मबाजों ने उसे दुनियादारी और घर-परिवार की जिम्मेदारी का वास्ता देकर तमाम प्रलोभन दिए। पहले प्यार से नफा-नुकसान समझाया और फिर डरा-धमकाकर। परन्तु न जाने किस मिट्टी का बना था वीरू। वह किसी भी तरह न माना। धुन के पक्के वीरू ने उन्हीं दिनों शराब की अवैध खेप आबकारी विभाग के हाथों पकड़वा दी।"[44]

उपन्यास की नायिका भी तैयार थी– आतंक की समाप्ति हेतु। परन्तु यह तैयारी गुप्त थी:

"रात्री का अँधेरा छटने लगा था। दूर कहीं क्षितिज में सूर्य की लालिमा का आगाज हो रहा था। सुनीता उठ खड़ी हुई। नित्य की तरह सारे काम निबटाए। बच्चों को दादी के साथ मेले में भेजा x..x..x । सब जानते हुए भागुली देवी शान्त थीं, लेकिन बहू के चेहरे पर उतर आयी अप्रत्याशित गंभीरता उसे बुरी तरह बेचैन किए थीं। बच्चों को भेजने के बाद सुनीता भी तैयार हो गई।"[45]

और इसके पश्चात– "लेकिन अचानक ही 'जय देवी माँ' के उद्घोष के साथ सुनीता ने कमर में यत्न से छुपाई गयी दराँती निकाल कुलदीप पर ताबड़-तोड़ प्रहार शुरू कर दिये।"[46]

ये थीं नायक-नायिका की अपनी-अपनी प्रतिज्ञा।

वातावरण प्रधान इस उपन्यास की कहानी कुल इतनी है कि वीरू ग्रामोत्थान के लिए प्रतिबद्ध है। वह अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु ग्राम के युवाओं को अपने अभियान में जोड़ता है। पैसे के लालच में कुछ युवा शराब कारोबार में संलग्न कुलदीप का साथ देते हैं। इनके सहयोग से कुलदीप वीरू के गाँव और उसके आसपास अपने व्यवसाय को फैलाते हैं। वीरू इसका विरोध करता है और अवैध शराब पकड़वाता है। परिणामतः उसे अपने प्राण गँवाने पड़ते हैं।

वीरू की विधवा अपने स्वर्गीय पति को न्याय दिलाने हेतु विधि की शरण में जाती है। परन्तु पुलिस निष्क्रिय रहती है, कोई कार्यवाही नहीं करती। सुनीता सरकारी कार्यवाही से निराश तो होती है, पर हताश नहीं। अपने स्वर्गीय पति के अधूरे कार्यों को पूरा करने की दृष्टि से सुनीता गाँव की महिलाओं का संगठन तैयार करती है। इनके सहयोग से वह अपने पति के हत्यारे का वध कर देती है। उसके मरते ही गाँव से और क्षेत्र से आतंक का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

'निवेदन' के अंतर्गत उपन्यासकार डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' उपन्यास के संबंध में लिखते हैं:

"मेरी अधिकतर कोशिश जड़ों से कटते-भटकते, संवेदनहीन होते लोगों को झकझोरने की रहती है; सामाजिक विसंगतियों से लड़ने की रहती है। उन माँ-बहनों और भाइयों को नायकत्व प्रदान करने की रहती है, जो बीहड़ हालातों से भी लोहा लेकर स्वयं मिट जाते हैं, मगर समाज और नई पीढ़ी को नई दिशा, नया जीवन दे जाते हैं। मेरा यह उपन्यास 'प्रतिज्ञा' भी ऐसे ही नायकों को समर्पित है।"[47]

10. अपना-पराया:

159 पृष्ठीय और छब्बीस परिच्छेदों में विभक्त यह उपन्यास भी प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली से वर्ष 2021 में प्रकाशित हुआ। अपने पूर्वर्ती उपन्यास की भाँति इस उपन्यास के संबंध में भी उपन्यासकार ने अपना अभिमत 'अपनी बात' के अंतर्गत इस प्रकार दिया है :

"..... मुझे जनोन्मुखी एवं जन-सरोकारी रचनाओं के लिए यही संवेदना प्रेरित करती रही है। इसे ही मैं सच्चे साहित्य की सार्थकता मानता हूँ और इसी को समर्पित हूँ।

मेरा यह उपन्यास 'अपना पराया' इसी संवेदना की बुनियाद पर खड़ा जीवन का वह कटु यथार्थ है, जो मुझे अंदर तक बुरी तरह कचोटता रहा है। इसके जरिए मैंने अपने-परायों की सीमा में बाँधने की हमारी छुद्र मानसिकता को न सिर्फ कठघरे में खड़ा करने की कोशिश की है, बल्कि इस सोच और दायरे पर सशक्त प्रहार करने का प्रयास भी किया है। साथ ही, इस बात पर जोर देने की कोशिश की है कि रिश्ते किसी सीमा या दायरे के मोहताज नहीं होते। ये तो मन की अतल गहराइयों से स्वतः उपजते हैं और नेह-नीर बनकर हृदय रूपी बादल से निःस्वार्थ बरस पड़ते हैं। ये हमारे बनाए खाँचों में ही अगर कैद होते, तो क्यों तिरस्कृत होकर भी पराये अपने हो जाते और अज़ीज होकर भी अपने पराये बन जाते?

यह संवेदना अन्ततःमन का रिश्ता होती है, जिसके बूते राहुल जैसे पराये, निराश्रित बच्चे के लिए एक अनजान इन्जीनियर साहब के भीतर बाप का धरम जाग उठता है; तो, अपने पराये का धुर 'त्रिया हठ' त्याग एक सनकी सास के अन्दर माँ की ममता हिलोरें लेने लगती हैं। ज़िन्दगी भर उलाहनों की शिकार रही बहू लक्ष्मी ही आखिरकार सच्ची बेटी साबित होती है और राहुल तो कई प्रतिमान स्थापित करता है। इसके अलावा और भी कई पात्र हैं जो सम्वेदनाओं और जीवन मूल्यों की वकालत करते हैं। इनमें से एक लक्ष्मी की माँ के जरिए 'संस्कारी ही गरीब की पूँजी' होने का संदेश दिया गया है।"[48]

स्वयं उपन्यासकार ने अपने लेखन की प्रक्रिया तथा उपन्यास के उद्देश्य को संक्षिप्त विवेचना के रूप में प्रस्तुत किया है। इससे आगे जाकर उपन्यास के भूमिका लेखक प्रो. देवसिंह पोखरियाल ने 'दो शब्द' के अंतर्गत विवेचित कर दिया है। वे लिखते हैं- "उपन्यास का शीर्षक 'अपना-पराया' मानवीय संबंधों और संवेदनाओं को उजागर करने में समर्थ है...।"[49]

उपन्यास में लक्ष्मी के रूप में एक विधवा स्त्री की करुण कहानी है। विधवा स्त्री कथा, एक स्त्री के जीवन की संघर्ष-गाथा है। लक्ष्मी अपनी अन्य तीन बहनों में सबसे बड़ी है, परिवार अत्यन्त गरीब है। सुरेश अपनी माँ कमला की इच्छा के विरुद्ध लक्ष्मी से विवाह करता है। कमला अत्यन्त कर्कशा और दुष्ट प्रवृत्ति की सास है जो लक्ष्मी को सदैव प्रताड़ित करती रहती है, यहाँ तक कि उस पर हाथ उठाने से नहीं चूकती।

जीप एक्सीडेंट में सुरेश की मृत्यु के पश्चात् तो कमला और अधिक उग्र हो जाती है और बेटे की मृत्यु का कारण 'मनहूस बहू' को मानती है। अपनी भाभी से स्नेह करने वाली ननद रेणु भी सुरेश की मृत्यु के पश्चात बदल जाती है और अपनी माँ का ही पक्ष लेने लगती है। उस घर में यदि लक्ष्मी से किसी को सहानुभूति है तो उसके श्वसुर और देवर राहुल को।

सुरेश की मृत्यु के समय लक्ष्मी गर्भवती थी। यहाँ भी किसका पाप पल रहा है, 'कुलच्छिनी' जैसे शब्द बाण सास ने चलाए, परन्तु लक्ष्मी विचलित नहीं हुई। पुत्र को जन्म देने पर भी वह प्रसन्न नहीं हुई।

माँ के आशातीत अत्याचारों को देखते हुए चौदह-पन्द्रह वर्षीय किशोर राहुल एक संकल्प लेकर घर से भाग जाता है कि कुछ करूँगा और सक्षम होने पर भाभी माँ और भतीजे को अपने साथ रखूँगा तथा माँ के अत्याचारों से उन्हें मुक्त करूँगा।

ढाबे पर काम करते समय राहुल इंजीनियर पाण्डे के सम्पर्क में आता है। पाण्डे जी उसे अपने सरकारी बंगले में लाते हैं और उसे पढ़ा-लिखा कर इंजीनियर बनाते हैं। इसी बीच राहुल अपने भतीजे मानस को अपने साथ लाता है, पढ़ाता-लिखाता है और उसे भी इंजीनियर बनाता है। यह सब 'पराये' पाण्डे जी के निस्वार्थ भाव से किये गये अपनों से सहयोग-सहायता के कारण ही संभव हो पाता है।

उपन्यास में नाटकीय मोड तब आता है जब पाण्डे जी अपने इंजीनियर मित्र गैरोला की बेटी का विवाह राहुल से कराना चाहते हैं। गैरोला जी की बेटी रश्मि कॉलेज में प्रवक्ता है। दोनों परस्पर मिलते हैं और विवाह हेतु दोनों तैयार हो जाते हैं। परन्तु यहाँ भी भाग्य राहुल के संघर्ष की परीक्षा लेता है।

लक्ष्मी की छोटी बहन का पालन-पोषण उसकी निःसंतान मौसी करती है। राहुल पढ़ाई-लिखाई व प्रशिक्षण आदि में उसकी अर्थात अनीता का सहयोग करता है। अनीता और उसकी मौसी राहुल के इस औदार्य को अनीता के प्रति उसका आकर्षण समझती रही। परन्तु राहुल के मन में ऐसा कुछ भी नहीं था।

अनीता की शादी अन्यत्र हो जाती है। परन्तु दो पुत्रियों के जन्म के पश्चात कैंसर से अनीता के पति की मृत्यु हो जाती है। माँ के गम्भीर स्वास्थ्य का समाचार पाकर राहुल गाँव जाता है। यहीं बड़ी बहन के ससुराल अनीता भी आती है। यहाँ अप्रत्याशित रूप से वह घटित हो जाता है, जिसकी कल्पना न अनीता ने की थी न राहुल ने और न पाण्डे जी ने –

"थोड़ी देर में ही उन्होंने लक्ष्मी का बन्धन छुड़ाकर राहुल का हाथ पकड़ लिया और अनीता को अपने पास आने का इशारा किया। आखिर कमला चाहती क्या है? क्यों अनीता को अपने पास बुला रही है? सभी के मन में यही प्रश्न था। स्वयं अनीता भी माँ की मनःस्थिति समझ नहीं पा रही थी। इतनी देर में माँ ने अनीता का हाथ अपने हाथ में थाम उसे राहुल के हाथ में थमा दिया और दोनों के हाथ के ऊपर मजबूती से अपना हाथ रख दिया। X X X

इधर पाण्डे जी भी गहन सोच में डूबे थे– 'क्या राहुल का सारा जीवन दूसरों के लिए ही समर्पित रहेगा। बड़ी कठिनाई से सारी जिम्मेदारियाँ निभाकर अब वह अपने लिए कुछ सोच रहा था, तो अचानक अब माँ का यह आग्रह। क्या अनीता की जिम्मेदारी एक बार फिर

राहुल पर डालना चाहती है वह?' X X X अचानक माँ को जोर की हिचकी आई और बेटे की और निहारती उसकी आँखें खुली-की-खुली रह गईं। राहुल ने धीरे से हाथ घर कर उन्हें हमेशा के लिए ढाँप दिया। कुछ देर के लिए वहाँ सन्नाटा पसर गया।"[50]

माँ के नेत्र बन्द करते ही उपन्यास समाप्त हो जाता है। परन्तु कुछ प्रश्न छोड़ जाता है। प्रथम है, नायक का निर्धारण। उपन्यास की भूमिका के लेखक प्रो. देवसिंह पोखरियाल भी राहुल को उपन्यास का नायक स्वीकार करते हैं– "कथानायक के निर्धारण में थोड़ी कठिनाई आती है, किन्तु अन्ततःराहुल का पक्ष भारी पड़ता है।"[51]

निःसन्देह प्रो. देव सिंह का मत स्वीकार्य है। राहुल की उपस्थित शेष समस्त पात्रों को प्रभावित करता है। शास्त्रीय मान्यतानुसार चतुष्फल में से तीन पुरुषार्थ– अर्थ के रूप में रोजगार की प्राप्ति, धर्म के रूप में मानव धर्म का निर्वहन तथा काम के रूप में अनीता की प्राप्ति राहुल को होती है। इस दृष्टि से नायकत्व पर अधिकार राहुल का ही है। परन्तु एक और औपन्यासिक पात्र है– पाण्डे जी, जिनका अवदान कम नहीं है। उपन्यास का शीर्षक दो शब्दों से निर्मित है– 'अपना' और 'पराया'। यदि अपना का प्रतिनिधि राहुल है तो पराया का प्रतिनिधि पाण्डे हैं। अपनों के लिए प्रायः सब लोग न्यूनाधिक रूप से समर्पण करते हैं। पाण्डे एक सर्वथा अपरिचित के लिए निःस्वार्थ भाव से सहयोग करना मानवता का शृंगार करना है। पाण्डे जी ने यही किया है। ऐसा क्यों किया– इसका उत्तर वे स्वयं देते हैं– मानवता की सेवा करने से आनन्द आता है। यदि यह औपन्यासिक पात्र न होता तो न कथानक आगे बढ़ता और न ही नायक को नायकत्व प्राप्त होता।

उपन्यास का एक और पात्र है– राहुल का बड़ा भाई राजेश। यह पात्र अत्यन्त स्वार्थी है। यह अपने कार्यालय में कार्यरत सहकर्मिणी से लव मैरिज करता है। अपनी बहन रेणु के

विवाह में कोई सहयोग नहीं करता है। अतिथियों की भाँति आता और विदा होने के तत्काल बाद स्वयं विदा हो जाता है। यह पात्र यदि उपन्यास में न होता और इसकी सह कथा भी न होती तब भी उपन्यास के मूल कथानक पर कोई प्रभाव न पड़ता। परन्तु अपने-पराये के दृश्य-दर्शन हेतु इस पात्र का तथा इससे जुड़ी अवांतर कथा को उपन्यास में स्थान देकर उपन्यासकार ने अपने लेखकीय कौशल का परिचय दिया है। प्रो. देवसिंह का यह मत अत्यंत सटीक है कि– "उपन्यास में यह भाव भी व्यक्त हुआ है कि स्वजन कितना ही क्रूर, निर्दय, भाव-शून्य और ममत्व रहित हो, कहीं-न-कहीं अंतस्तल में तारल्य भाव से संवलित होता है। कमला और लक्ष्मी दो पीढ़ियों के द्वन्द्व को भी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देती है। वर्तमान के रूप में खटते-खटते राहुल को 'मानस' के प्रतीक के रूप में भविष्य उज्ज्वलता दिखलाई देना उपन्यास की प्रतीकात्मक सार्थकता है।"[52]

11. ज़िन्दगी रुकती नहीं:

यह 66 पृष्ठीय और पचास परिच्छेदों का उपन्यास वर्ष 2021 में वाणी प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। अब तक के अर्थात मई 2023 तक के डॉ. निशंक के द्वारा लिखित व प्रकाशित ग्यारह उपन्यासों में यह अंतिम उपन्यास है। वर्ष 2013 में केदारनाथ घाटी में हुए प्रकृति के तांडव को देश और विदेश ने देखा। हर मृत्यु के पश्चात् उपजे श्मशान-वैराग्य की भाँति इस त्रासदी ने भी प्राणी की क्षणभंगुरता और ईश्वरीय सत्ता के अस्तित्व के प्रति मनुष्य का सिर झुका दिया। पर न मनुष्य की गतिविधियाँ कम हुईं न उसकी जिजीविषा कम हुई। "आपदा की यह जीवंत कहानी साबित करेगी कि भले ही आपदाओं ने, त्रासदियों ने, महामारियों ने मनुष्य के हौसलों को क्षत-विक्षत करने की भरसक कोशिश की हो, लेकिन मनुष्य के मजबूत इरादों और अदम्य जिजीविषा ने कष्टों के अभेद को भेदकर जीवन के रास्ते बनाये हैं और संसार को ये संदेश दिया कि 'ज़िन्दगी कभी रुकती नहीं है।"[53]

'अपनी बात' में उपर्युक्त उपन्यासकार का वक्तव्य, उपन्यास के उद्देश्य को स्पष्ट करता है। उपन्यास में 'मनुष्य के मजबूत इरादों और अदम्य जिजीविषा' को तो महिमा मंडित किया गया है। परन्तु मनुष्य की लालची वृत्ति को अनदेखा किया गया है, जिसके कारण प्रकृति अपना रौद्र रूप दिखलाती है। उपन्यास में मात्र एक स्थल पर ही संकेत के रूप में इसका उल्लेख हुआ है– "आपदा आने के कारणों पर बहस जारी थी। अधिकांश वैज्ञानिक इसका कारण प्रकृति से अत्यधिक छेड़-छाड़ और अनियोजित विकास को बता रहे थे।"[54]

'प्रकृति से अत्यधिक छेड़-छाड़' ही वह मूल कारण है, जिससे ऐसी आपदाएँ जन्म लेती हैं। अधिक धन कमाने के लिए मनुष्य ने प्राकृतिक वनों को काट-काट कार नष्ट कार दिया, पहाड़ों को काट-काट कार उसमें सीमेंट-कंक्रीट भर दिये। विशेषज्ञों के जांच दल के प्रतिवेदन में इस आपदा के जो कारण बताये गये थे, उनमें तेज वर्षा, बाढ़, भूस्खलन, जरूरत से ज्यादा पहाड़ों पर निर्माण, खनन, अधिक पर्यटकों का आवागमन तथा पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले पदार्थों का बाहुल्य आदि है। उपन्यास में इसकी उपयोगिता एवं प्रभाव को विश्लेषित किया गया है।

उपन्यास में वातावरण का प्राधान्य है। डॉ. निशंक के अधिकांश उपन्यास दुखान्त हैं। परन्तु 'ज़िन्दगी रुकती नहीं' सुखांत उपन्यास है। यद्यपि कथानक अत्यंत संक्षिप्त है। विक्रम अत्यन्त निर्धन परिवार का युवक है, जो अत्यन्त मेधावी है। प्रधान जी की छोटी बहू आशा के आर्थिक सहयोग व प्रोत्साहन तथा छात्रवृत्ति के बल पर पढ़ते हुए आई. ए. एस. बन जाता है। इसी बीच केदारनाथ क्षेत्र में भीषण जल प्लावन होता है और उसकी प्रेयसी लक्ष्मी सहित उसका परिवार बिखर जाता है। अनेक नाटकीय घटना क्रमों और उतार-चढ़ाव के पश्चात अंततः बिछुड़े हुए समस्त परिवार जन एक बार फिर मिल जाते हैं। कथानक समाप्त हो जाता है।

एक-दो स्थल उपन्यास में ऐसे हैं जो मूल कथानक से छिटके हुए-से प्रतीत होते हैं। पैतालीसवें परिच्छेद में कमल, विक्रम और लक्ष्मी को ढूँढने की चेष्टा करता है: "लेकिन वह विक्रम को ढूँढेगा कैसे? विक्रम मिल भी गया तो लक्ष्मी कैसे मिलेगी?"[55]

जबकि इसके पूर्व के परिच्छेद उनचालिस से तथा इसके भी पूर्व से विक्रम निरन्तर कमल के संपर्क में है: "मैं खोज रहा हूँ सबको, तू चिंता मत कर, इस विक्रम को देख, इसके माँ-पिता भी नहीं मिल रहे? इसने हार मानी क्या? तू भी हिम्मत रख। कमल ने समझाया।"[56]

इसी प्रकार का एक और उदाहरण इस उपन्यास में उपलब्ध है: "यह वही राघव था, जिसने उसे जान से मारने की कोशिश की थी। विक्रम को साल भर पहले की वह घटना याद हो आई। मई जून की दोपहरी थी। स्कूल की छुट्टियाँ होने की वजह से वह रोज अपने पशुओं को जंगल में चराने ले जाता, साथ में रोटी और किताब भी एक थैले में रख लेता। एक ऊँचे से पत्थर पर बैठकर वह पढ़ाई में लीन था। उसे धीरे-धीरे उमस महसूस होने लगी। उसने चारों ओर निगाह दौड़ाई तो होश उड़ गये। सूखी पिरूल पर आग की लपट धधकती हुई चारों ओर से उसकी ओर बढ़ रही थी।"[57]

उपर्युक्त घटना विक्रम के स्कूल जीवन की है, जहाँ लक्ष्मी को राघव की छेड़छाड़ से विक्रम बचाता है और प्रतिशोध स्वरूप राघव आग लगाकर विक्रम को मारना चाहता है। तब से वर्षों व्यतीत हो गये। विक्रम तब से बी. ए. भी करता है, कोचिंग भी करता है और आई. ए. एस की परीक्षा भी उत्तीर्ण करता है। इन सबमें न्यूनतम चार-पाँच वर्ष लगना तो सहज है। फिर अग्नि कांड की घटना साल भर पहले की कैसे हो सकती है?

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' का जन्म पहाड़ी प्रदेश– उत्तराखण्ड का छोटे से ग्राम पिनानी (पौड़ी गढ़वाल) में हुआ। अब तक की उनकी समूची कर्मस्थली पर्वतीय क्षेत्र रही है

और अब भी है। डॉ. निशंक साहित्यकार के साथ-साथ राजनेता भी है। साहित्यिक क्षेत्र में ये अटल बिहारी बाजपेयी से प्रभावित रहे हैं।

डॉ. निशंक ने काव्य, खण्डकाव्य, यात्रा वृतांत, जीवनी, संस्मरण, कहानी और उपन्यास आदि विविध विधाओं का सृजन किया है। इनके अब तक ग्यारह उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। इन समस्त उपन्यासों का मूल स्वर 'लोक' है। डॉ. निशंक के समस्त उपन्यासों का कथन पर्वतीय ग्रामों के जन-जीवन पर आधारित है। पहाड़ का जन-जीवन गरीबी, अभाव, बेरोजगारी और अशिक्षा से निर्मित है। अपने औपन्यासिक पात्रों के द्वारा डॉ. निशंक ने इस कष्ट को दूर करने का सफल प्रयास किया है।

पहाड़ी ग्रामों में प्राकृतिक सुषमा का सीमातीत विस्तार है। सघन वन, विभिन्न प्रकार के फल-फूल, औषधीय वनस्पतियाँ, विभिन्न पशु-पक्षी, निर्मल नीर से समृद्ध सरिताएँ व झरने-सब कुछ है पर्वतीय ग्रामों में। यहाँ के निवासियों को न लालच है न संग्रही वृत्ति है और न ही दूसरे की संपत्ति हड़पने की चाह। जितना है, उतने में ही संतोष करने वाले लोग हैं, यहाँ के। कबीर का दोहा है:

"साईं इतना दीजिए, जामे कुटुम समाये।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु भी भूखा न जाये।।"[58]

पहाड़ी लोगों की समूची मनोवृत्ति कबीर के इस दोहे में समाहित है। डॉ. निशंक के उपन्यासों का एक और वैशिष्ट्य है। चार उपन्यासों को छोड़कर शेष समस्त उपन्यासों में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सेना की चर्चा है। 'मेजर निराला' का तो नायक ही मेजर निराला है। 'बीरा' उपन्यास में आशीष के पिता हवलदार शंभू प्रसाद की सहायक कथा है। 'निशान्त' में कर्नल विक्रम सिंह की संक्षिप्त झलक है। 'पहाड़ से ऊँचा' में ऑटो चालक हरी कृष्ण का पिता सूबेदार सोमेशचंद्र की दो पृष्ठों की सह कहानी है। इस उपन्यास का प्रारंभ ही सेना और सैनिक से होता है– "सेना में 32 साल की नौकरी के बाद ऑनरेरी कैप्टन शंकर दत्त

बड़े उत्साह से गाँव आकार बस गये थे। उनसे पहले रिटायर हुए सूबेदार गोपाल दत्त, मोहन सिंह विष्ट के साथ ही न जाने कितने और साथी देहरादून, रुड़की और कोटद्वार में बस चुके थे।"[59]

'पल्लवी' में नायक ध्रुव और किसन दोनों सैनिकों की वीरोचित गाथा है। 'भागोंवाली में अम्मा के चार लड़कों में एक छोटा-फौजी है। 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में फौज और फौजी की स्थिति इस प्रकार है :

"पहाड़ की अर्थ व्यवस्था को मनीआर्डर अर्थ व्यवस्था कहा जाता है। यहाँ हर परिवार से एक आदमी फौज में है, जिससे मिलीट्री कैंटीन में सस्ती मिलने वाली रम गाँव के बुजुर्गों व अन्य लोगों को आसानी से उपलब्ध हो जाती है।"[60]

"आनन्द! वही आनन्द, आतंकवादियों से लोहा लेते हुए जिसने अपना एक पैर गवा दिया था।"[61]

जिन चार उपन्यासों में फौज और फौजी की चर्चा नहीं है, वे हैं– 'छूट गया पड़ाव, कृतघ्न, अपना पराया और ज़िंदगी रुकती नहीं'।

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के समस्त उपन्यासों में समाज के रंग बिरंगे चित्र हैं, जो हमारे दैनिक जीवन के और आसपास के प्रतीत होते हैं। डॉ. गोपाल शर्मा के शब्दों में– "रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यास प्रेमचन्द परम्परा से सीधे जोड़े जा सकते हैं, क्योंकि न तो वे यथार्थ का अतिरंजित रूप प्रस्तुत करते हैं और न ही वे आलोचक के लिए लिखते हैं। मैं इन्हें निःसंकोच अपनी पत्नी, पुत्री और पुत्र को पढ़ने के लिए दे सकता हूँ। उनके उपन्यास में पात्रों की प्रमुख चिंता– परिवार, समाज, देश, विश्व- इस क्रम से परिलक्षित होती है। इनके पात्र अपने परिवार, परिवेश, पर्यावरण की चिंता करते हुए, समाज और देश के प्रति भी जागरूक रहते हैं।"[62]

संदर्भ:

1. पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 11
2. शोध सरिता (त्रैमासिक), संपा.डॉ. विनय कुमार शर्मा, पृ. 27
3. वही, पृ. 28
4. वही, पृ. 28
5. वही, पृ. 28
6. समर्पण, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक, पृ. 18
7. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 5
8. वही, पृ. 126
9. वही, पृ. 135
10. द्विभाषी राष्ट्रसेवक (द्विमासिक), संपा. प्रो. मोहन, पृ. 42
11. बीरा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 160
12. वही, पृ. 167
13. वही, पृ. 168
14. वही, पृ. 114
15. निशान्त, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 7
16. वही, पृ. 103
17. पहाड़ से ऊँचा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 65
18. वही, पृ. 68
19. वही, पृ. 44
20. वही, पृ. 45
21. वही, पृ. 67
22. वही, पृ. 67

23. छूट गया पड़ाव, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 18
24. वही, पृ. 14
25. वही, पृ. 21
26. वही, पृ. 65
27. वही, पृ. 131
28. पल्लवी, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 7
29. वही, पृ. 138
30. वही, पृ. 172
31. भागोंवाली, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 5
32. वही, पृ. 142
33. वही, पृ. 39
34. वही, पृ. 111
35. वही, पृ. 135
36. वही, पृ. 34
37. वही, पृ. 15
38. कृतघ्न, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 25
39. वही, पृ. 34
40. वही, पृ. 152
41. प्रतिज्ञा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 48
42. वही, पृ. 7
43. वही, पृ. 151
44. वही, पृ. 23
45. प्रतिज्ञा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 148

46. प्रतिज्ञा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 151

47. वही, निवेदन

48. अपना पराया, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', अपनी बात

49. वही, दो शब्द, पृ. 5

50. वही, पृ.157

51. वही, दो शब्द, पृ. 7

52. वही, पृ. 8

53. ज़िन्दगी रुकती नहीं, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', अपनी बात

54. वही, पृ. 126

55. वही, पृ. 150

56. वही, पृ. 134

57. वही, पृ. 107

58. कबीर ग्रंथावली, सं. पारसनाथ तिवारी, पृ. 39

59. पहाड़ से ऊँचा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 5

60. प्रतिज्ञा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 21

61. वही, पृ. 74

62. निशंक: एक अंतरंग पाठ, गोपाल शर्मा, पृ. 115

द्वितीय अध्याय

लोक और लोक चेतना: स्वरूप विवेचन

(क) लोक: अर्थ, परिभाषा और स्वरूप:

'लोक' शब्द ध्वनित होते ही सामान्यतः ग्राम्य-जीवन का चित्र मस्तिष्क में अंकित हो जाता है। इसके विपरीत त्रिलोक, लोकसभा, लोकमत, लोकतंत्र जैसे शब्द 'लोक' शब्द का विस्तार करते हैं। इस प्रकार लोक गीत, लोक कथा, लोक गाथा, लोक नाट्य, लोक-सुभाषित आदि के अर्थ में 'लोक' को संकुचित करता है। भारत में 'लोक' शब्द उतना ही प्राचीन है, जितना वैदिक साहित्य। 'ऋग्वेद' में लोक के लिए 'जन' शब्द प्रयुक्त हुआ है।[1] एक स्थल पर उसका प्रयोग जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में हुआ है:

"नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णों द्यौ: समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशा श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन॥"[2]

अर्थात् विराट पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से द्युलोक, पैरों से भूमि तथा कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं। इसी प्रकार लोक को निर्मित किया गया। 'लोक' का व्यापक अर्थ वेदों से ग्रहण किया गया है। स्थान वाची संज्ञाओं भूलोक, द्युलोक, स्वर्गलोक, ब्रह्मलोक से 'लोक' का विस्तारित रूप ही अभिप्रेत है। इन लोकों का निर्माण जन से ही संभव है। बिना जन के 'लोक' की कल्पना संभव नहीं है। यह जन चाहे ग्राम का हो अथवा नागर संस्कृति का निवासी ही लोक है।

'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'लोक दर्शने' धातु में 'धञ' प्रत्यय जोड़ने से हुई है।[3] 'लोक दर्शने' धातु का तात्पर्य है– देखना। अतः 'लोक' शब्द का मूल अर्थ हुआ– देखने वाला। परन्तु व्यवहार में 'लोक' शब्द का प्रयोग संपूर्ण जनमानस के लिए होता है। 'लोक' में 'अव' उपसर्ग के संयोग से 'अवलोकन' शब्द का निर्माण होता है, जिसका तात्पर्य भी देखना, निरीक्षण करना आदि से है।

अनेक विद्वानों ने 'लोक' को अपने अपने ढंग से परिभाषित किया है। इन परिभाषाओं में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की परिभाषा सर्वाधिक सटीक मानी जाती है। 'लोक' को परिभाषित करते हुए वे लिखते हैं कि– "लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगरों और गाँव में फैली हुई, वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर के परिष्कृत, रुचि सम्पन्न, सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।"[4]

लोकविद वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है कि– "लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। जिसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। यह राष्ट्र का अमर स्वरूप है। कल्याणतम रूप है। घेरे से उन्मुक्त मूल प्रकृति जीवन के साथ संबद्ध है।"[5]

लोकविद् डॉ. श्याम परमार के मतानुसार – "लोक का प्रयोग गीत, वार्ता, गाथा, संगीत, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जन-समाज, जिसमें पूर्व संचित परम्पराएँ, भावनाएँ, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं, तथा जिसमें भाषा और साहित्यगत सामग्री ही नहीं, अपितु अनेक विषयों के अनगढ़, किंतु ठोस रत्न छिपे हैं, के अर्थ में होता है।"[6] लोक शब्द को और विस्तार देते हुए वे लिखते हैं– "वेद और लोक की भिन्नता वेद की प्रतिष्ठा के साथ लोक के स्वतंत्र, सीमित अर्थ से ऊपर उठ चुका है। उसकी भावना वैदिक-अवैदिक-दोनों क्षेत्रों को स्वाभाविक रूप से स्पर्श करने लगी है।"[7]

डॉ. रवीन्द्र भ्रमर के अनुसार– "इस शब्द के प्रचलित अर्थ दो हैं- एक तो विश्व अथवा जनसाधारण साहित्य अथवा संस्कृति के एक विशिष्ट भेद की ओर इंगित करने वाले एक आधुनिक विशेषण के रूप में इस शब्द का अर्थ ग्राम्य या जनपदीय समझा जाता है, किन्तु इस दृष्टि से केवल गाँवों में ही नहीं वरन नगरों, जंगलों, पहाड़ों और टापुओं में बसा हुआ वह

मानव समाज जो अपने परम्परा, रीति-रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने के कारण अशिक्षित या अल्प सभ्य कहा जाता है, 'लोक' का प्रतिनिधित्व करता है।"[8]

डॉ. कुन्दनलाल उप्रेती के मतानुसार– "लोक ज्ञानाह, बौद्धिक चेतना, सुसंस्कृत तथा परिष्कृत रूपी वाले मनुष्यों के समुदाय से इतर आभिजात संस्कार एवं शिक्षा से हीन अथवा अल्प शिक्षित मनुष्यों का एक ऐसा समुदाय है, जो मानव की आदिम प्रवृत्तियों तथा परम्पराओं की धारा में बहता हुआ अकृत्रिम जीवन जीने में विश्वास रखता है।"[9]

डॉ. बापुराव देसाई के मत के अनुसार– "लोक वह मानव समाज है जो अपनी परम्पराओं में प्रचलित रीति-रिवाजों, खान-पान, रहन-सहन, लेन-देन और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने से अशिक्षित कहलाता है।"[10]

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय 'लोक' को परिभाषित करते हुए लिखते हैं– "आधुनिक सभ्यता से दूर अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली, तथाकथित अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को 'लोक' कहते हैं जिनका आचार विचार एवं जीवन परम्परायुक्त नियमों से नियंत्रित होता है। इससे स्पष्टतया ज्ञात होता है कि जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में विद्यमान हैं, उन्हें 'लोक' की संज्ञा प्राप्त है।"[11]

डॉ. सत्येंद्र लिखते हैं कि – "लोक, मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं, वे लोक तत्व कहलाते हैं।"[12]

जैमिनीय उपनिषद में कहा गया है यह 'लोक' बहु भाँति विस्तारित है। यह 'लोक' सर्वत्र व्याप्त है। प्रयत्नादिक से भी इसे संपूर्ण रूप से नहीं जाना जा सकता:

बहु व्याहितो वा अंप बहुतो लोक:।

क एतद् अस्य पुनरीहतो अयात्।।[13]

भरत कृत नाट्यशास्त्र में भी 'लोक'शब्द अनेक बार प्रयुक्त हुआ है, जहाँ लोकधर्मी और नाट्यधर्मी संज्ञा दी गयी हैं:

धर्मी या द्विविधा प्रोक्ता मया पूर्वे द्विजोत्तमा:।
लौकिकिनाट्यधर्मी च तयोर्वक्ष्यामि लक्षणम्।।[14]

आचार्य भरत रूपक को 'लोक' स्वभाव से जोड़ते हुए कहते हैं कि यदि कोई रूपक लोक स्वभाव के अनुसार भाव प्रदर्शित करने वाला सादगी तथा बिना बाहरी दिखावट वाला हो, जो अपनी कथावस्तु में सामान्य प्रजा जन के आचार तथा क्रियाएँ प्रदर्शित करने वाला तथा आंगिक प्रदर्शन व सहज भाव प्रदर्शन करता हो, जिसमें विभिन्न स्त्री तथा पुरुष पात्र हों, तो उसे 'लोकधर्मी' नाट्य समझना चाहिए :

स्वभावभावोपगतं शुद्धन्त्वविकृतं तथा।
लोकवार्ता क्रियोपेतमङ्गल लीलाविवर्जितम।।
स्वभावाभिनयोपेतं नानास्त्रीपुरुषश्रयम्।
यदीदृशं भवेन्नाटयं लोकधर्मी तु सा समृता॥[15]

आचार्य भरत भी 'लोक' को प्रकृत अवस्था में स्वीकार करते हैं– जिसमें सादगी है और कृत्रिमता का अभाव है।

अंग्रेजी शब्द 'Folk'(फोक) का हिंदी रूपांतरण 'लोक' किया गया है। 'Folk' का अर्थ जनसामान्य है। परन्तु इस शब्द के अर्थ भी अनेक हैं। Macmillan English Dictionary के अनुसार 'Folk' शब्द निम्नलिखित अर्थों को ध्वनित करता है:[16]

1. People in general 1a. People of particular type or from a particular place. 1b. Folks (plural spoken used talking to a group of people)

2. Folk/Fool/adj (Only before noun). Folk art, traditions, stories etc were developed by people in a particular region and have become traditional there: an old Welsh folktale
3. Relating to or based on the beliefs and practices of ordinary people.
4. Folk dance noun 1(c/u)a traditional dance from a particular region or community 2(c) The music for doing a folk dance.
5. Folk hero noun (c): someone who is admired for their achievement by the ordinary people of a particular region.
6. Folklore-Traditional stories, sayings and beliefs from a particular region or community.
7. Folk music 1-traditional music from a particular country, region or community, especially music developed by people who were not professional musicians. 2- A type of modern popular music developed from traditional folk music played on guitars and consistings of shorts songs about personal or social subjects.
8. Folk singer- Someone who sings folk songs especially as their job.
9. Folk song- 1.traditional song from a particular region or community one that was developed by people who were not professional musicians. 2.modern popular song developed from traditional songs that a simple tune and is played on a guitar.

उपर्युक्त 'Folk' के स्वरूप विश्लेषण से ध्वनित होता है कि Folk शब्द का प्रयोग विदेशों में विशिष्ट क्षेत्र में विशिष्ट कार्यों के लिए किया जाता है। परम्परागत गीत, संगीत, कहानी और विशिष्ट जन समुदाय- सब Folk हैं।

लोक(Folk) के विषय में एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका की टिप्पणी में कहा गया है कि– "आदि में समाज में उसके सभी सदस्य लोक (फोक) होते हैं और इस शब्द के विस्तृत अर्थ

को लें तो सभ्य राष्ट्र की पूरी जनसंख्या को लोक की संज्ञा दी जा सकती है; किन्तु सामान्य प्रयोग में पाश्चात्य प्रणाली की सभ्यता में लोक वार्ता (फोक लोर), लोक संगीत (फोक म्यूजिक) आदि शब्दों में लोक का अर्थ संकुचित होकर केवल उन्हीं का ज्ञान कराता है जो नागरिक संस्कृति और टेक्नीकल शिक्षा के प्रवाहों से मुख्यतः परे हैं, जो निरक्षर हैं अथवा जिन्हें मामूली-सा अक्षर ज्ञान है, जो ग्रामीण और गँवार हैं।"[17]

पाश्चात्य विद्वानों ने लोक को परिभाषित किया है:

आर. आर. मेरेट के अनुसार– "इसके अंतर्गत उस समस्त जनसंस्कृति का समावेश माना जा सकता है जो पौरोहित्य धर्म तथा जनसंस्कृति इतिहास में परिणित नहीं पा सकी जो सदा स्वयंसंवर्धित रही है।"[18]

जॉर्ज हरगोज कहते हैं– "लोक वह जनसमुदाय है, जिसमें नागरिक कम होते हैं, और जीवंगत मान्यताएँ, वार्ताएँ, गीत नृत्य आदि में समानता होती है। इस समाज का गीत, संगीत व साहित्य राष्ट्रीय चेतना में मंडित नगरीय साहित्य से भिन्न होता है।"[19]

डॉ. बार्कर के अनुसार– "फोक से सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है, परन्तु इसका यदि विस्तृत अर्थ ग्रहण किया जाए तो किसी सुसंस्कृत राष्ट्र की संग्रह जनता, इस नाम से अभिहित की जा सकती है।"[20]

डॉ. शार्ल्ट सोफिया बने के अनुसार– "यह एक जातिबोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है, जिसके अंतर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावते आती हैं।... लोकवार्ता वस्तुतः आदिम मानस की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है। वह चाहे दर्शन, धर्म,

विज्ञान तथा औषध के क्षेत्र में हुई हो, चाहे सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में अपना अथवा विशेषतः इतिहास तथा काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में।"[21]

भारतीय 'लोक' और पाश्चात्य फोक (Folk) के परस्पर स्वरूप और अंतर्संबंध को ऊपर वर्णित किया जा चुका है। यहाँ यह बिंदु विचारणीय है कि जिस प्रकार Folk शब्द अपने विस्तृत अर्थ के साथ-साथ संकुचित अर्थ का द्योतक है। उसी प्रकार यह शब्द ग्राम, गँवार जैसे संकुचित अर्थ का व्यंजक भी है। भुवलोक, द्युलोक, पितृलोक, स्वर्गलोक, इन्द्रलोक, देवलोक नामधारी शब्दों का ही अर्थ परिवर्तित हो जाएगा!! परन्तु ऐसा है नहीं। यहाँ 'लोक' से पृथक अर्थ अभिप्रेत है, 'लोक' का पृथक अर्थ ग्राह्य है। यही अर्थ दृष्टि लोक संस्कृति और नागर संस्कृति के वर्गीकरण में परिलक्षित होती है।

'लोक' की विकास यात्रा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। प्रारम्भिक दिनों में मनुष्य अपनी आदिम अवस्था में था। धीरे-धीरे इनके वर्ग, समूह और परिवार बनने लगे। वर्ग-भेद की भावना यहाँ से प्रारम्भ हुई। इनमें संग्रह और सुरक्षा तथा प्रभुत्व स्थापन की भावना पनपने लगी। एक वर्ग को प्रभुत्व प्राप्त हुआ। इस वर्ग ने और इस वर्ग के सहायकों ने अपनी पृथक संस्कृति– नागर संस्कृति विकसित की। परम्परागत संस्कृति के साथ जो रहे, वह लोक संस्कृति के नाम से अभिहित हुई। परन्तु यह 'लोक' नागर को भी अभिव्यक्त करने लगा।

उपर्युक्त विवेचन यह दर्शाता है कि मनुष्य आदिम अवस्था से जैसे जैसे विकसित होता गया, वह अपने मूल स्वरूप से दूर होता गया। इस प्रकार 'लोक' दो लोकों में विभक्त हो गया। विकसित रूप ने मूल रूप की उपेक्षा करनी प्रारम्भ कर दी। विख्यात कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने लोक के मूल रूप की उपेक्षा से व्यथित होकर अपनी कविता- 'जाहिल मेरे बाने' में लिखा था :

"मैं असभ्य हूँ क्योंकि खुले नंगे पाँव चलता हूँ

मैं असभ्य हूँ क्योंकि धूल की गोदी में पलता हूँ
मैं असभ्य हूँ क्योंकि चीर कर धरती धान उगाता हूँ
मैं असभ्य हूँ क्योंकि ढोल पर बहुत जोर से गाता हूँ

आप सभ्य हैं क्योंकि हवा में उड़ जाते हैं ऊपर
आप सभ्य हैं क्योंकि आग बरसा देते हैं भू पर
आप सभ्य हैं क्योंकि धान से भरी आपकी कोठी
आप सभ्य हैं क्योंकि जोर से पढ़ पाते हैं पोथी
आप सभ्य हैं क्योंकि आपके कपड़े स्वयं बने हैं
आप सभ्य हैं क्योंकि जबड़े खून सने हैं।

आप बड़े चिंतित हैं मेरे पिछड़ेपन के मारे
आप सोचते हैं कि सीखता यह भी ढँग हमारे
मैं उतारना नहीं चाहता जाहिल अपने बाने
धोती-कुरता बहुत जोर से लिपटाये हूँ याने!"[22]

भवानी प्रसाद मिश्र की उपर्युक्त कविता लोक के दोनों रूपों के अन्तर को स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रदान करती है, जो अपनी जड़ों से चिपके हैं, जो उन्हें नहीं छोड़ना चाहते, नागर संस्कृति के पुजारियों की दृष्टि में वे असभ्य हैं, Folk हैं। क्योंकि ये बिना पदत्राण (जूता) पहने चलते हैं, धूल-माटी इन्हें प्रिय है, ये अपना मूल व्यवसाय– कृषि कार्य करते हैं और अपनी प्रकृत अवस्था में गाकर-बजाकर अपने हृदय के उल्लास को व्यक्त करते हैं।

दूसरी ओर इस लोक का विपरीत रंग है जो नगरीय लोक को दर्शाते हैं। परन्तु कवि का हृदय इस कृत्रिम लोक को स्वीकार नहीं करता। मूल लोक को कृत्रिम लोक जाहिल कहता है

(जिसे गँवार, देहाती, निरक्षर जैसे अपमानजनक शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं) परन्तु मैं अपने को धोती-कुरता (मूल लोक) से अलग नहीं कर पाता, अलग नहीं कर सकता।

कवि सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपनी सुविख्यात लघु कविता– 'साँप' में कुछ ऐसे ही भाव भरे हैं :

"साँप!
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ- (उत्तर दोगे?)
तब कैसे सीखा डसना –
विष कहाँ पाया?"[23]

'लोक' के स्वरूप को वैदिक साहित्य से लेकर आचार्य भरत तथा भरत के पश्चात् अब तक के विद्वानों ने स्थिर करने का प्रयास किया है। परन्तु तस्वीर अब भी धुँधली है। रामनरेश त्रिपाठी जैसे कवि 'लोक' के प्रकृत रूप को 'ग्राम्य' सम्बोधन के पक्ष में रहे हैं। अपने तत्संबंधी साहित्य को भी उन्होंने 'हमारा ग्राम्य साहित्य' नाम दिया है। परन्तु उनका यह आंदोलन चला नहीं, उनके साथ ही समाप्त हो गया। वर्तमान पीढ़ी गम्भीर विवेचना साहित्य से दूर होती जा रही है। दलित विमर्श, वृद्ध विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, बाल विमर्श, विकलांग विमर्श, किन्नर विमर्श जैसी अवधारणा अब तक लोक विमर्श बन नहीं पायी हैं। बन भी नहीं पाएगी, क्योंकि ये सब 'लोक' के ही तो अंग हैं। हाँ, नवीनता के लालच के चलते भविष्य में हल विमर्श, खेत विमर्श, बैल-विमर्श, गाय-विमर्श जैसे विमर्शों का प्रचलन साहित्य में होने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

'लोक' के उपर्युक्त समीक्षात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन के पश्चात लोक का स्वरूप कुछ इस प्रकार निर्धारित होता है:

- वेदादि प्राचीन ग्रंथों की मान्यतानुसार, जहाँ तक दृष्टि जाती है, वह सब लोक है। इसके अंतर्गत पशु-पक्षी, प्रकृति आदि- सम्पूर्ण सृष्टि समाहित हो जाती है।
- 'लोकदर्शन' में जो समाहित नहीं हैं– स्वर्ग लोक, देव लोक, यमलोक, इन्द्रलोक, गोलोक, ब्रह्मलोक- इन सबका संसार। ये श्रव्यलोक हैं, दर्शन लोक नहीं। क्योंकि इन्हें सुना तो गया, परन्तु देखा नहीं गया।
- 'लोकसभा' लोक के शिष्टजनों की सभा को ध्वनित करती है।
- समस्त दृश्य जगत– शिष्ट या नागर जन तथा अशिष्ट या ग्राम्य जन 'लोक' शब्द में समाविष्ट तो हैं; परन्तु 'लोक' उच्चारण से जो तत्काल केंद्र में अर्थ उभरता है, वह ग्राम्य जन का ही उभरता है।
- नागर सभ्यता के पल्लवित-पुष्पित होते रहने के कारण 'लोक' का मूल स्वरूप विकृत होता चला गया। वर्तमान में यह नागर रूप अपने पल्लवन-पुष्पन के चरम पर है। 'लोक' की विषम स्थिति है। लोक न तो अपना मूल रूप छोड़ पा रहा है और न अपने विकसित रूप को पूरी तरह अंगीकार कर पा रहा है।
- रचनाकारों ने इन दोनों रूपों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। परन्तु 'लोक' अब भी पूर्णांग में अपरिभाषित ही है।

'लोक' एक विशिष्ट अर्थ अर्थात् ग्राम्य के अर्थ में रूढ़ हो गया। इसके चेतनात्मक रूप को अभिव्यंजित होने के लिए कुछ तात्विक प्रतिमान चाहिए। गीत, कथा, गाथा, नाट्य, सुभाषित आदि के द्वारा इस चेतना की अभिव्यक्ति होती है। इन शब्दों के पूर्व 'लोक' विशेषण

जोड़ने से विशिष्ट अर्थ ध्वनित होने लगते हैं– लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य, लोक सुभाषित आदि नागर तत्वों से विलग अर्थ प्रदान करते हैं और अपनी स्वतंत्र सत्ता का बोध कराते हैं।

इनके अतिरिक्त एक और शब्द है– 'संस्कृति'। संस्कृति का अर्थ ही है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की कृति को संस्कार युक्त कर दे। लोक संस्कृति की परिधि लोक साहित्य से भिन्न होती है। जिनका नैतिक विकास चरम तक पहुँचा, वे शिष्ट संस्कृत के पोषक कहलाए। जो उस स्तर तक पहुँच न सके, वे लोक संस्कृति में परिगणित हो गए। यद्यपि आज यह स्थिति नहीं रही। आज से पचास वर्ष पूर्व 'लोकजन' न भारत को जानता था, न भारत माता को। यह शिष्टवर्गीय संस्कृति थी। ग्राम्य अथवा लोक संस्कृति की परिधि में उसका ग्राम ही भारत देश था और उसकी भूमि ही उसकी माता हुआ करती थी, जो उसे बोई गयी फसल का अस्सी गुना वापस करती थी। 'अथर्ववेद' का सूक्त उद्घोषित करता है:

माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या: पर्जन्य पिता स उ नः पिपर्तु।[24]

- यह भूमि हमारी माता है। हम सब इसके पुत्र हैं। 'पर्जन्य' अर्थात मेघ हमारे पिता हैं। ये दोनों मिलकर अर्थात् हमारा पालन-पोषण (पिपर्तु) करते हैं।

प्रसंगवश यहाँ यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि 'अथर्ववेद' का उपर्युक्त सूक्त को प्रयोक्ता उतना ही अर्थात् एकांश ही प्रयुक्त करते हैं। पूरा सूक्त निम्नानुसार है :

यत्ते मध्यमं पृथिवी यच्च नभ्यं, यस्त उर्जस- तनव:

संबाभुवु:। तासु नो धेह्य अभि नः पावस्व माता भूमि:

पुत्रो अहं पृथिव्या: । पर्जन्य: पिता स उ नः पिपर्तु।।

- हे पृथ्वी! यह जो तुम्हारा मध्य भाग है और जो उभरा हुआ उर्ध्वभाग है, ये जो तुम्हारे शरीर के विभिन्न अंग ऊर्जा से भरे हैं, हे पृथ्वी माता, तुम मुझे अपने उसी शरीर में संजो लो और दुलारो कि मैं तुम्हारा पुत्र हूँ और तुम हमारी माता हो। मेघों की छत्र छाया पिता की भाँति हमें प्राप्त हो।

  सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:।[25]

'निरामया' की भाव भूमि पर लोक संस्कृति का भव्य भवन निर्मित है। इन्हीं भावों को जब लोक साहित्य में ढाल दिया गया तब लोक का शिष्ट से पृथकीकरण परिलक्षित होने लगा। यद्यपि यही भाव शिष्ट साहित्य में भी उपस्थित है। परन्तु दोनों में शैलीगत अन्तर है।

लोक साहित्य के प्रखर विद्वान प्रोफेसर कृष्णदेव उपाध्याय लोक संस्कृति और लोक साहित्य तथा शिष्ट संस्कृति और शिष्ट साहित्य को विश्लेषित करते हुए लिखते हैं– "लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रिया-कलापों के पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहता है। इस दृष्टि से अथर्ववेद, ऋग्वेद का पूरक है। ये दोनों संहिताएँ दो विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचायिकाएँ हैं। अथर्ववेद लोक संस्कृति का परिचायक है तो ऋग्वेद शिष्ट संस्कृति का। अथर्ववेद के विचारों का धरातल सामान्य जनजीवन है तो ऋग्वेद का विशिष्ट जनजीवन। ऋग्वेद में यज्ञ-योगादिक का विधान पाया जाता है तो अथर्ववेद में अंधविश्वास, टोना-टोटका, जादू, मंत्रादि का। इस प्रकार ऋग्वेद शिष्ट तथा संस्कृति जन के विचारों की झाँकी प्रस्तुत करता है तो अथर्ववेद में लोक संस्कृति का चित्रण उपलब्ध होता है। अतः ये दोनों वेद दो भिन्न संस्कृतियों के प्रतीक हैं

उपनिषद काल में भी ये दोनों संस्कृतियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं। जिन उपनिषदों में आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत, ब्रह्मांड आदि का वर्णन है, वे अभिजात्य संस्कृति

के ग्रंथ हैं। परन्तु जिनमें लोक-जीवन का विवरण है, लोक-विश्वास तथा लोक परंपराओं का उल्लेख है, उनका संबंध निश्चय ही लोक संस्कृति से है।"[26]

लोकविद डॉ. श्यामसुंदर दुबे, लोक संस्कृति को व्याख्यायित करते हुए लिखते हैं– "लोक संस्कृति ने प्रायः अपने आध्यात्मिक और दार्शनिक चिंतन को अमूर्त के माध्यम से व्यक्त किया है। सूक्ष्म आध्यात्मिक तत्वों और सूक्ष्म ऐहिक संवेदनों को अमूर्त संदर्भ में प्रकट करने का तरीका लोक संस्कृति के पास लगभग एक जैसा ही है। अमूर्त को मूर्त की तरह अभिव्यक्त करने के लिए प्रायः लोक ने अपने आसपास की चीजों से ही अपना काम चलाया है। इसके लिए उसने प्रकृति पदार्थ, घरेलू सामग्री, दैनंदिन क्रियाएँ और कहीं-कहीं मात्र शब्द को ही अपनी अभिव्यक्ति का उपादान बनाया है। निश्चित ही लोक संस्कृति के पास मूर्त और अमूर्त- दोनों विधानों के लिए एक कलात्मक दृष्टि है। इन दोनों प्रक्रियाओं में उसकी रचनात्मकता की ऐहिक और पारलौकिक सिद्धियों का समन्वय है।"[27]

लोक चेतना का अर्थ है– जनसामान्य के प्रति सजगता का भाव बोध अथवा जनसाधारण के प्रति चिन्तनमूलक मनोवृत्ति। साहित्यकार के संदर्भ में 'लोक चेतना' से अभिप्राय है– उसकी वह सर्जनात्मक दृष्टि जो जनसाधारण के जीवन में निहित सुखद-दुःखद परिस्थितियों का सजीव एवं यथार्थ वर्णन निडरता के साथ प्रस्तुत करते हुए जन सामान्य के प्रति जीवन दर्शन प्रस्तुत करने हेतु उत्तरदायी होती है। अतः लोक चेतना से तात्पर्य है– मूल परम्परागत तथ्यों का सराहना करना तथा उस ओर ध्यान देना।

इस लोक चेतना का प्रकटीकरण लोक भाषा में ही होता है और विभिन्न अवयवों (लोकगीत, लोक कथा, लोक गाथा, लोक नाट्य, लोक सुभाषित आदि) के द्वारा भी होता है।

1. लोक गीत:

कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार- "लोक गीत वह गेय गीत है जिससे जन मन का अनुरंजन सदा होता रहता है। इस गीतों को स्त्री और पुरुष समान रूप से गाते हैं। इन गीतों में कुछ ऐसे गीत उपलब्ध होते हैं जो केवल स्त्रियों द्वारा ही गाये जाते हैं जैसे- संस्कार विषयक गीत, इसके ठीक विपरीत कुछ ऐसे ही गीत हैं जो केवल पुरुषों की ही संपत्ति हैं। जैसे होली के गीत। लोक गाथाएँ तो केवल पुरुष वर्ग के द्वारा ही गाई जाती हैं, मानो इन्हें गाने का पुरुषों को एक मात्र अधिकार प्राप्त हो गया हो।"[28]

वैरियर एल्वीन के अनुसार- "लोक गीत केवल इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि उनका संगीत स्वरूप और वर्ण्य विषय जनता के जीवन का अंगभूत बन गया है। प्रत्युत्त उनकी महत्वा इससे अधिक है। इन मनोरम गीतों में इन व्यवस्थित एवं प्रतिष्ठित लेख पत्रों में हमें मानव विज्ञान संबंधी तथ्यों की प्रमाणीभूत सामग्री उपलब्ध होती है। मानव विज्ञान वेत्ताओं को अपने सिद्धांतों की सत्यता प्रमाणित करने के लिए लोकगीतों को छोड़कर कोई दूसरा सच्चा एवं विश्वासपात्र साक्षी उपलब्ध नहीं हो सकता।"[29]

प्रत्येक लोक समाज में लोकगीतों का प्रचलन है। लोकगीतों के सृजनकर्मी प्रायः अज्ञात होते हैं। ये गीत मौखिक परम्परा में चलते रहते हैं। शिष्ट गीतों की भाँति इनमें लय, तुक, मात्राओं आदि का कोई बंधन नहीं होता। स्त्री-पुरुषों के अलग अलग गीत होते हैं। परन्तु कभी-कभी स्त्री-पुरुष दोनों ही मिलकर गीत गाते हैं। प्रकृति और समाज के क्रिया कलापों के अनुसार इन गीतों का वर्गीकरण किया गया है। लोकगीतों की अनगढ़ वाणी में समूची लोक संस्कृति का इतिहास छुपा होता है। लोकगीतों में मनुष्य की बेबसी, खुशी, विषाद, शोक, हर्ष, परस्पर संबंधों का माधुर्य अथवा कटुता सब कुछ निहित होता है। इसीलिए लोक की अवधारणा के विविध अवयवों में लोकगीत का प्रमुख एवं सर्वेपरि स्थान है।

2. लोक कथा:

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार –"लोककथा शब्द मोटे तौर पर लोक-प्रचलित उन कथानकों के लिए व्यवहारित होता रहा है, जो मौखिक या लिखित परंपरा से क्रमशः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होते रहे हैं।''[30]

कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार "मानव प्रवृत्ति रहस्यात्मक है। जब मनुष्य यह चाहता है कि उसके कथन को सर्वसाधारण न समझ सके तो वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो जन-साधारण की समझ से परे होती है। यही पहेली का रूप धरण करती है। मनुष्य की गोपनीय प्रवृत्ति ही पहेलियों की उत्पत्ति का कारण है।"[31]

वाचिक परम्परा से चली आ रहीं कथाएँ, लोक कथाएँ कहलाती हैं। वाचिक परम्परा होने के कारण इन कथाओं को यथावत् तो स्मरण रखा नहीं जा सकता। इन कथानकों और पात्रों में कुछ छूटता जाता है, कुछ नया जुड़ता चला जाता है। नीति, उपदेश, परिवार, जादू-टोना, छल-फरेब आदि इन लोक कथाओं के विषय होते हैं। मनुष्य के साथ देव, राक्षस, जीव जन्तु, परी आदि इन लोक कथाओं के पात्र होते हैं।

3. लोक गाथा:

ग्रिम के अनुसार– "लोकगाथा लोक जीवन की अभिव्यक्ति है। किसी भी देश के समस्त निवासी ही लोकगाथाओं की सामूहिक रचना करते हैं। आदिम अवस्था से ही प्रत्येक व्यक्ति सामूहिक रूप से नृत्य, संगीत, गीतों एवं लोकगाथाओं की रचना में लगे हुए हैं।"[32]

डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार– धर्म-गाथाओं और लोक-कथाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इनका मूल्य बहुत प्राचीन है और यह संभवतः उस समय की धुंधली रूपरेखा का युग था,

जबकि विविध राष्ट्रों और देशों में विभाजित आर्यजन विभाजन से पूर्व शांति पूर्वक किसी एक स्थान पर रहते थे।"[33]

लोकगाथा सामान्यतः कथा काव्य होता है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी गाया जाता है। परन्तु कभी-कभी गद्यात्मक भी होता है। लोकगाथाओं में नायक का चरित्र अतिश्योक्तिपूर्ण होता है। इसमें ऐतिहासिक अथवा कल्पनाधारित पात्र होते हैं। प्राकृतिक उपादान जैसे- सूर्य, चन्द्रमा, बादल, वायु, वन, प्राकृतिक गुफाएँ, शेर, बाघ, बन्दर, भालू, तोता, सर्प इत्यादि इस नायक के सहायक भी होते हैं और कभी कभी इसके शत्रु भी बन जाते हैं। परी, राक्षस, दानव, देवदूत, जादू और जादूगर जैसे काल्पनिक तत्वों के बिना लोकगाथा आगे नहीं बढ़ पाती न ही वह अपना विस्तार कर पाती है।

कुछ लोक गाथाएँ वीररसात्मक होती हैं, जैसे शिवाजी की गाथा, राणा प्रताप की गाथा, महारानी लक्ष्मी बाई की गाथा आदि। सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता लोक प्रचलित गाथा है, जो उन्होंने 'बुंदेले हरबोलों' के मुख से सुनी थी और उसे लोक गाथा का रूप दे दिया–

"इनकी गाथा छोड़, चले हम झाँसी के मैदानों में।
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मरदानों में॥"[34]

देश के प्रायः प्रत्येक लोक समुदाय में लोक गाथाएँ पायी जाती हैं। इनका स्वरूप गद्यात्मक अर्थात कथात्मक भी होता है और पद्यात्मक भी।

4. लोक नाट्य:

डॉ नगेंद्र के अनुसार "लोक नाट्य सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से लोक विश्वासों और लोकतत्वों को समेटे हुए चलता है और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।"[35]

डॉ. श्रीराम शर्मा के मतानुसार "लोक धर्मी रूढ़ियों की अनुकरणात्मक अभिव्यक्तियों का वह नाट्य-रूप जो अपने क्षेत्र के लोकमानस को आह्लादित , उल्लासित एवं अनुप्राणित करता है, लोक नाट्य कहलाता है।"[36]

अविभाज्य असम में श्रीमंत शंकरदेव का उदय (सन् 1449 से 1568) एक युगांतरकारी घटना थी। इन्होंने स्थान-स्थान, गाँव-गाँव में नामघरों की स्थापना की। इन्होंने और इनके शिष्य माधवदेव ने अँकिया नाटकों की रचना की। ये नाटक नामघरों में निर्मित मंचों पर खेले जाते थे। शंकरदेव ने पारंपरिक लोक नाट्यों को परिमार्जित कर उन्हें अँकिया का रूप दिया। लगभग तीन-चार शताब्दियों तक अँकिया नाटकों की धूम रही, किन्तु जैसे जैसे इनका गमन ग्रामों से शहरों की ओर हुआ, इनका लोकत्व समाप्त होने लगा। नये नये प्रयोगों के कारण इनकी गणना नाटकों में की जाने लगी।

समूचे पूर्वोत्तर में जिन पारम्परिक लोक नाट्यों का प्रचलन रहा है, उनमें खूलिया, बेनागान, कारकाति, ओजापाली, ढुलिया, दोतारागान, मेरजा गावन, भाप्रिकला, हारसिड़े, दिहिनाय, हानाघोरा, पालागान, मासानयात्रा, कुशान रावण गान आदि प्रमुख हैं। इन लोकनाट्यों में से अधिकांश असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय और सिक्किम के हैं। मिज़ोरम, नागालैण्ड, त्रिपुरा तथा मणिपुर के लोकनाट्य कम ही हैं।

सन् 1891 से पूर्व इन प्रदेशों में सहज और प्रकृत कबीलों का साम्राज्य था। इन विभिन्न कबीलों में लोक नाट्यों का प्रचलन कम ही रहा है। कभी-कभी मृत पशुओं के चर्म से बने मुखौटे, सींग तथा वृक्षों के पत्ते-लताएँ आदि लपेट कर शिकार के चारों ओर अथवा देवी-देवताओं की पूजा में ये उछलकूद करते थे। इस उछलकूद में गीत, संगीत और नृत्य का समावेश रहता था। परस्पर संवादों का अभाव होता था। संवाद की अनुपस्थिति में नाट्य की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए इस प्रक्रिया को लोकनाट्य तो नहीं कहा जा सकता। उनके द्वारा किये गये ये लोकनृत्य ही हैं। असम आदि प्रदेशों में अवश्य ही परम्परागत लोक

नाट्य रहे होंगे जिनके परिवर्तित रूप पर अँकिया नाट्य जैसे अपेक्षाकृत शिष्ट नाट्य का महल खड़ा हुआ।

5. लोक सुभाषित:

लोक सुभाषित के अंतर्गत लोकोक्तियाँ, मुहावरे, पहेलियाँ आदि आते हैं। लोकमानस अपने दैनिक जीवन में लोकोक्तियों, मुहावरों और पहेलियों का प्रयोग करते है।

डॉ.एम.एस दक्षिणामूर्ति के मतानुसार- "कहावत सामान्यतः संक्षिप्त, सारगर्भित और प्रभावशाली उक्ति है, जिसमें जीवन की अनुभूतियाँ स्पष्टतः झलकती हैं और जो परिस्थिति की अनुकूलता को दृष्टि में रखकर प्रयोग में लायी जाती हैं।"[37]

डॉ श्याम परमार के अनुसार- "जीवन के विस्तृत प्रांगण में भिन्न-भिन्न अनुभव सर्वसाधारण जन के मानस को प्रभावित करके उसकी अभिव्यक्ति से संबन्धित अंग को उत्कर्ष प्रदान करते हैं। ये ही अनुभव लोकोक्तियाँ-कहावतें हैं।"[38]

डॉ ताराकान्त मिश्र लिखते हैं-" मुहावरा एक ऐसा अपूर्व वाक्यांश है, जिसकी सहायता से वाक्य अथवा भाषा को चुस्त और प्रभाव पूर्ण बनाया जाता है। यह श्रोता के हृदय पर सीधे चोट करता है। वर्षों के अनुभवों को आत्मसात करने वाले इस मुहावरे के प्रयोग से भाषा में एक अजब चटपटापन आ जाता है।"[39]

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने मुहावरों की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा हैं- "मनुष्य की दूसरी प्रवृत्ति गोपनीयता की होती है। वह किसी कारणवश अपने भावों को ऐसी भाषा में प्रकट करना चाहता है जो सर्वसाधारण के लिए सरलता पूर्वक बोधगम्य न हो। इसलिए एक ऐसी प्रतीकात्मक भाषा को आविष्कृत किया था जो गोपनीय होने के कारण जन साधारण की बुद्धि से परे थी।"[40]

डॉ.फ्रेजर के अनुसार- "पहेलियों की रचना उस समय हुई होगी जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ती होगी।"[41]

लोकोक्ति एक वाक्य खंड होता है जो लोक के किसी अनुभव पर आधारित होती है। यह एक सामासिक पद होता है। लोकोक्ति के पीछे एक समूची कथा छिपी होती है। प्रत्येक क्षेत्र में लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं। इन लोकोक्तियों में से एक लोकोक्ति हैं– 'बाँस में फूल आना'। यदि हिंदी लोकोक्तियों अथवा मुहावरों से इसकी समता 'ईद का चाँद होना' से की जा सकती है। मिज़ोरम में बाँसों के वनों का आधिक्य है। जनश्रुति के अनुसार बाँस का फूल वर्षों में अर्थात लगभग पचास वर्षों में एक बार खिलता है। यद्यपि जनमानस बाँसों के फूल खिलने को अपशकुन समझते हैं, तथापि चूहे इसे खाते हैं तो उनकी प्रजनन दर अत्यधिक बढ़ जाती है। वर्षों से अटका हुआ कोई कार्य यदि हो जाता है तभी यह लोकोक्ति कह देते हैं कि– 'बाँस में फूल आ गये'।

परन्तु 'बाँस में फूल आना' लोकोक्ति विलम्ब अर्थ को ही ध्वनित नहीं करता। यह अनिष्ट की आशंका को भी व्यक्त करता है। लगभग पचास वर्षों के पश्चात जब बाँस में फूल आता है तो उसे खाकर चूहों की प्रजनन शक्ति बढ़ जाती है। ये चूहे किसान की फसल को भारी हानि पहुँचाते हैं। बात यहीं नहीं रुकती। चूहों के आधिक्य के कारण साँप झुंड के झुंड खेतों में आ जाते हैं। चूहा, सर्प का प्रिय भोजन है। इस प्रकार फसल की हानि तो होती ही है, जन हानि भी होती है, क्योंकि ये सर्प खेतों में काम करने वालों को डसते हैं।

इन विभिन्न आयामों के परिमाण स्वरूप ही देश के विभिन्न भागों से विभिन्न प्रकार की जागरुकता रैलियाँ निकाली जाती हैं। जो कि तात्कालिक घटना के समय की माँग एवं परिस्थिति के परिणाम स्वरूप होती हैं। समाज में घटित इन घटनाओं से जब साहित्यकार का हृदय द्रवित हो जाता है, तब वह अपने साहित्य के माध्यम से लोक चेतना जागृत करने का

प्रयास करता है। साहित्यकारों की सर्जनात्मक कृतियाँ ही समाज को सचेत करती हैं, प्रेरणा प्रदान करती हैं।

(ख) लोक चेतना: अवधारणा एवं आयाम :

(1) लोक चेतना: अर्थ एवं परिभाषा:

'चेतना' शब्द संस्कृत की चित् धातु से ल्युट प्रत्यय करने पर टाप (आ) के संयोग से बना है। संस्कृत हिंदी शब्द कोश में इसके विविध अर्थ हैं– 1. ज्ञान, संज्ञा, प्रतिबोध 2. समडा, प्रज्ञा 3. जीवन, प्राण 4. बुद्धिमता, विचार-विमर्श।[42]

हिन्दी शब्द सागर में इसके अर्थ हैं - बुद्धि, मनोवृत्ति, ज्ञानात्मक मनोवृत्ति, स्मृति-सुति चेतनता, चैतन्य, संज्ञा तथा होश।[43]

हिन्दी साहित्य कोश में चेतना शब्द की व्याख्या स्पष्ट है – "जब स्नायविक क्रिया एक आवश्यक मात्रा तक गहरी हो जाती है, हमें अनुनय होने लगता है और यही चेतना है। चेतना की प्रमुख विशेषता है- निरंतर परिवर्तनशीलता अथवा प्रवाह।"[44]

मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खंड) में चेतना शब्द की परिभाषा है- "चेतना चल है. उसमें संवेदना है, इच्छा है और सजग क्रिया है। इस प्रकार लोक चेतना एक सामासिक शब्द है, जो लोक और चेतना के योग से बना है, चेतना पद में प्रयुक्त चेतना शब्द पूर्ण जागरुकता या चैतन्यता अर्थ का द्योतक है।"[45]

लोक चेतना का अर्थ है- जनसामान्य के प्रति पूर्ण जागरुकता का भाव बोध।किसी साहित्यकार के सन्दर्भ में लोक चेतना से आशय है – उस सर्जनात्मक दृष्टि से है, जो

जनसाधारण के जीवन में व्याप्त सुखद -दुःखद स्थितियों का यथार्थ चित्रण निडरता से करते हुए जन सामान्य के प्रति जीवन दर्शन प्रकट करने हेतु पूर्णत:उत्तरदायी होता है।

लोक चेतना से आशय है- समाज में परिव्याप्त सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक समस्याओं के प्रति जनमानस की सजगता से है। साहित्यकार अपनी-अपनी साहित्यिक विधाओं के माध्यम से लोक में परिव्याप्त अनेक समस्याओं का चित्रण करता है। लोक में जो घटित होता है वही साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है,इसलिए लोक का प्रतिबिम्ब साहित्य है।

साहित्य में मानविकी अर्थों में इसका प्रयोग आदिकाल से होता आ रहा है, जिसका निदान साहित्य में अनेक अर्थों में होता आ रहा है, जिसका निदर्शन है-लोक साहित्य।लोक शब्द सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। लोक चेतना बहुत ही व्यापक है। इसके अन्तर्गत विभिन्न चेतनाएँ समाहित हैं -सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक।

जब साहित्यकार का हृदय समाज में घटित घटनाओं से पिघल जाता है, तब वह अपने साहित्य के माध्यम से लोक चेतना जागृत करने का प्रयत्न करता है। साहित्यकारों की सर्जनात्मक रचनाएँ ही समाज को जागरुक करती हैं, प्रेरित करती हैं। जहाँ तक डॉ. निशंक के उपन्यास साहित्य में लोक चेतना का प्रश्न है तो हम देखते हैं कि उनके उपन्यास साहित्य में लोक चेतना के स्वर मुखरित हैं।

लोक चेतना जीवन की स्वाभाविक चेतना है। इसी स्वाभाविक चेतना में लोक बसता है तथा लोक में स्वत: ही यह चेतना बसती है। साहित्य का ध्येय है- लोक चेतना को उर्ध्वगामी बनाकर उसे मानवता के समीप ले जाना ही है।

(2) लोक चेतना के तत्व:

साहित्य समाज का दर्पण है, तो लोक साहित्य समाज की आत्मा का प्रतिविम्ब है। किसी भी देश की- सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन के यथार्थ को जानना है तो लोक साहित्य ही प्रामाणिक आधार है। लोक चेतना के प्रमुख तत्त्व हैं – समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति:

(i) समाज :

लोक चेतना के प्रमुख तत्त्वों में समाज आता है, इसके अन्तर्गत पारिवारिक जीवन, शिक्षा, लोक विश्वास आदि आते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। यह समाज में रहकर अपना जीवन यापन करते हुए पूर्ण विकास करताहै।

(ii) राजनीति:

लोक चेतना के तत्वों के अन्तर्गत राजनीति की प्रासंगिकता सर्वव्यापक है। समाज, राष्ट्र की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था राजनीति पर आधारित होती है। जैसी राजनीति होगी, वैसा ही समाज होगा। राजनीतिः शब्द विशेष अर्थ लिये हुए है और इसमें नीति शब्द अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। नीति विहीन राजा वाला समाज दिशा विहीन होगा। वर्तमान युग में 'राजनीति' शब्द छल-कपट, प्रपंच आदि के बुरे अर्थ में रूढ हो गया है। लोक चेतना के संदर्भ में ही राजनीतिक पक्ष को देखना उचित होगा। तत्कालीन लोक जीवन में राजनीति के व्यावहारिक पक्ष के उद्घाटन से ही उनका यथार्थ ज्ञान सम्भव होगा। लोक जीवन में तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना बलवती होती रही है, राजनीति में सत्ता की प्राप्ति के लिए छल-कपट आदि दूषित प्रवृत्तियाँ उत्तरोत्तर बलवती होती रही हैं।

(iii) धर्म:

धर्म मनुष्य की प्रकृति में निहित होता है। आदिम काल से धर्म मानव का मार्गदर्शन करता रहा है। सम्भवतः यह भविष्य में भी मानव समाज का अविभाज्य अंग बना रहेगा। इसका वर्तमान स्वरूप न रहकर परिवर्तित रूप होने की सम्भावना अवश्य है।

(iv) संस्कृति:

विभिन्न संस्कारों के द्वारा सामूहिक जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति करना संस्कृति कहलाता है। लोगों के जीने का ढंग ही संस्कृति है। संस्कृति मानव समाज की अमूल्य धरोहर है। विश्व में भारतीय संस्कृति अमर है। भारतीय संस्कृति की विशेषता है- अनेकता में एकता।

(3) लोक चेतना के आयाम:

लोक चेतना के आयाम हैं:

(i) सामाजिक चेतना:

समाज से संबंधित चेतना सामाजिक चेतना कहलाती है। सामाजिक चेतना मानवीय संज्ञान को लौकिक स्तर पर हमारे विवेक को समाज के विभिन्न पहलुओं से जोड़ती है और अलौकिक स्तर पर चित्ति के रूप में ज्ञात हो कर वैश्विक आत्म चैतन्य के रूप में अभिव्यक्त होती है। मानव समाज की प्रगति तथा उसकी सभ्यता का प्रवाह सामाजिक समस्याओं के समाधान के प्रति जो प्रयत्न और पुरुषार्थ है, वह सामाजिक चेतना की परिणति है।

(ii) राजनीतिक चेतना:

राजनीति से संबंधित चेतना राजनीतिक चेतना कहलाती है। समाज, संस्कृति तथा साहित्य से राजनीति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। राजनीति ने लोक को सर्वाधिक प्रभावित किया है।

(iii) आर्थिक चेतना:

अर्थ से सम्बन्धित चेतना आर्थिक चेतना कहलाती है। जब रचनाकार लोक परिवेश के आर्थिक पक्ष पर लेखनी चलाता है तो उसके द्वारा चित्रित यह स्वरूप आर्थिक चेतना के अंतर्गत आता है। समाज एवं राष्ट्र का विकास अर्थ पर ही आधृत है। विश्व में हर कार्य की सिद्धि हेतु अर्थ की परम आवश्यकता होती है।

(v) धार्मिक चेतना:

धर्म से संबंधित चेतना धार्मिक चेतना कहलाती है। जिन सिद्धान्तों के अनुसार हम अपना दैनिक जीवन व्यतीत करते हैं, वह धर्म कहलाता है। यह जीवन का सत्य और हमारी प्रकृति को निर्धारित करने वाली शक्ति है।

(vi) सांस्कृतिक चेतना:

संस्कृति से सम्बन्धित चेतना सांस्कृतिक चेतना कहलाती है। सांस्कृतिक चेतना समाज की मूलभूत सामूहिक सम्पत्ति है। इसके द्वारा सामाजिक मान्यताओं का व्यावहारिक पक्ष निर्धारित होता है।

लोक चेतना मानव जीवन की स्वाभाविक चेतना है। उसके अंतर्गत जड़ चेतन के प्रति ज्ञान, विचार-विमर्श, संवेदनशीलता आदि का अन्तर्भाव हो जाता है। लोक चेतना के तत्व हैं - समाज, राजनीति, धर्म, अर्थ, संस्कृति। इनमें लोक चेतना का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। लोक जब रचनाकार की चेतना बन जाता है, तभी लोक का यथार्थ रूप स्पष्ट होता है। लोक चेतना सम्पन्न रचनाकार के साहित्य में लोक अनेक रूपों में अभिव्यक्त होता है, तो वही समाज सदृश चेतना भी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक घरातल पर विभिन्न रूपों में स्पष्ट होती है।

डॉ. निशंक के उपन्यास साहित्य में लोक चेतना के स्वर मुखरित हैं। उन्होंने लोक चेतना के विविध आयामों (सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक) के

परिवेश के तन्तु अपने उपन्यासों में निर्मित किए हैं। अपने उपन्यासों के द्वारा उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विषमताओं पर प्रहार किया है। उन्होंने समाज की बुराइयों को पाठक के सामने लाकर लोक को जागृत करने का प्रयत्न किया है। उनका प्रत्येक उपन्यास लोक चेतना के यथार्थ का दस्तावेज है।

संदर्भ:

1. ऋग्वेद, 3/53/12
2. वही, 10/90/14
3. व्याकरण सिद्धांत कौमुदी, भट्टोजि दीक्षित, पृ. 416
4. जनपद (वर्ष 1, अंक:1), हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 65
5. कला और संस्कृति, वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. 65
6. मालवी लोक साहित्य, श्याम परमार, पृ. 2
7. वही, पृ. 1
8. हिन्दी साहित्य में लोक तत्व, डॉ. रवीन्द्र भ्रमर, पृ. 03
9. लोक साहित्य के प्रतिमान, कुन्दनलाल उप्रेती, पृ. 05
10. लोक साहित्य, डॉ. बापुराव देसाई, पृ. 18
11. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 11
12. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येंद्र, पृ. 30
13. जैमिनीय उपनिषद, 3/28
14. नाट्यशास्त्रम्, आचार्य भरत, 14/68
15. वही, 14/60-70
16. Macmillan English Dictionary, P. 545
17. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, भाग 9, पृ. 444
18. साइकोलोजी एण्ड फोकलोर, आर. आर. मेरेट, पृ. 76
19. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, भाग-9, पृ. 446
20. वही, पृ. 475
21. हैंड बुक आफ फोकलोर, डॉ. शार्ल्ट सोफियाबर्न (अनुवादक: सत्येंद्र), पृ. 12,
22. गीतफ़रोश: जाहिल के बाने, भवानी प्रसाद मिश्र, पृ. 62

23. इन्द्र धनु रौंदे हुए, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', पृ. 62

24. अथर्ववेद, 12/1-12

25. तैत्तिरियोपनिषद्, 5/3

26. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 12

27. लोक: परम्परा, पहचान और प्रवाह, डॉ. श्याम सुन्दर दुबे, पृ. 49

28. लोक संस्कृति की रूपरेखा, कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.266

29. लोक साहित्य: सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रतिमान, अभिमन्यु सिंह (उद्धृत), पृ.59

30. लोक कथाए क्या बताती है आज कल की लोक कथा, अंक-1, पृ.12

31. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.167

32. लोकसाहित्य, प्रवेश कुमार, पृ.182

33. ब्रज लोकसाहित्य का अध्ययन, सत्येंद्र (उद्धृत), पृ.418

34. झाँसी की रानी, सुभद्रा कुमारी चौहान, पृ. 28

35. भारतीय नाट्य साहित्य, सं. डॉ. नगेंद्र, पृ. 54

36. लोक साहित्यः सिद्धान्त और प्रयोग, डॉ श्रीराम शर्मा, पृ.129

37. तेलुगू का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ एस एस दक्षिणामूर्ति, पृ.23

38. भारतीय लोक साहित्य, डॉ श्याम परमार, पृ.184

39. मैथिली लोक साहित्य का अध्ययन, डॉ ताराकान्त मिश्र, पृ.363

40. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.299

41. लोक साहित्य की भूमिका, कृष्णदेव उपाध्याय, पृ.167

42. संस्कृत हिंदी शब्द कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 378

43. हिन्दी शब्द सागर, श्याम सुन्दरदास, पृ. 1028

44. हिन्दी साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 319

45. मानविकी पारिभाषिक कोश, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 55

तृतीय अध्याय

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक चेतना : विविध आयाम

कोई भी रचनाकार जब सृजन-कर्म में संलग्न होता है, तब उसका एक 'विजन' होता है, एक दृष्टि होती है, एक स्पष्ट उद्देश्य होता है। डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यास का भी एक स्पष्ट 'विजन' है, जो उनके पद्य और गद्य की विविध विधाओं में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होता है। यह 'विजन' है भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद। डॉ. निशंक इस तथ्य को स्पष्टतः स्वीकार करते हैं– "मैं सम्पूर्ण जीवन का सार मानव और देश के प्रति सर्वस्व समर्पण तथा अगाध निष्ठा को मानता हूँ। जीवन का प्रत्येक क्षण अपने राष्ट्र और मानवता के प्रति समर्पित कर जन कल्याण के रास्ते पर चलना मेरे जीवन का ध्येय रहा है।"[1]

डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय उनकी इस सृजनात्मक प्रवृत्ति की पुष्टि करते हुए लिखते हैं– "निशंक जी की सांस्कृतिक चेतना भौगोलिक उपासनों के चित्रण के साथ-साथ राष्ट्रीय संस्कृति के रचनात्मक उन्मेष पर भी जोर देती है।"[2] परन्तु इस मूल चेतना के साथ डॉ. निशंक के लेखन का एक और पृथक आयाम है। यह आयाम है– लोक चेतना का। उनकी इस लोक चेतना का आयाम विस्तृत है जो ग्राम की खपरैलों से लेकर नगरों के कंक्रीट तक फैला हुआ है। डॉ. निशंक को अपने सहज और स्वाभाविक लोक से प्यार है। इसी लोक में उनका मन रमता है। इसी लोक से वे प्यार करते हैं और इसी लोक को वे अपने लेखन का आधार बनाते हैं।

डॉ. निशंक के उपन्यासों में लोक चेतना के निम्नलिखित आयाम हैं:

(क) सामाजिक चेतना
(ख) राजनीतिक चेतना
(ग) धार्मिक चेतना
(घ) आर्थिक चेतना
(ङ) सांस्कृतिक चेतना

(क) सामाजिक चेतना:

समाज से सम्बन्धित चेतना ही सामाजिक चेतना है। व्यक्ति का समग्र विकास समाज के मध्य रहकर ही सम्भव है। मनुष्य-जीवन की जितनी भी गतिविधियाँ हैं, उनका संवर्द्धन समाज में रहकर ही होता है। डॉ. निशंक के उपन्यासों में ग्रामीण समाज का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्मता से उपलब्ध है। परिवार समाज की लघुतम इकाई होती है। परिवार के सदस्य परस्पर एक-दूसरे के प्रति सहयोग और सुरक्षा का भाव रखते हैं। यही भाव उनमें प्यार और ममत्व विकसित करता है।

डॉ. निशंक के उपन्यास साहित्य में परिवार के संयुक्त और एकल-दोनों रूपों का चित्रण प्राप्त होता है। 'भागोंवाली' उपन्यास में संयुक्त परिवार का यह रूप स्पष्ट हुआ है :

"शादी के पूरे तीन वर्ष तक ससुराल में संयुक्त परिवार में रही थी अम्माँ। फिर जब शास्त्रीजी के साथ पहाड़ पर आ गई, तो शुरू-शुरू में तो उसका यहाँ दिल ही नहीं लगा। ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ और गहरी घाटियाँ देखकर उसका दिल यहाँ बहुत डरता। यहाँ के लोगों की बोली-भाषा भी कुछ समझ में नहीं आती, लेकिन धीरे-धीरे वह भी यहीं रम गई। पहाड़ के लोगों का स्नेह, अपनत्व उसे इस कदर भाया कि अब यहाँ अम्माँ को अपना घर ही लगने लगा।

चार देवर-देवरानी थे उसके। दो भाई रमानंदजी की तरह नौकरी पर बाहर थे तो, दो घर में कृषि कार्य ही करते थे। खेती काफी बड़ी थी, इसलिए घर का गुजारा आराम से चलता।

शुरू में तो उसने कई बार रामानंदजी से कहा भी, 'सुनो जी, यहाँ से बढ़िया तो अपना गाँव ही है। घर का पाँचवाँ हिस्सा भी मिलेगा तो इस मकान से बड़ा होगा।'

'हाँ, कहती तो ठीक हो, किंतु नौकरी तो यहीं करनी है न।' रामानंद ने समझाया।

तबादला क्यों नहीं करवा लेते अपना, वहाँ रहकर गाय-भैंस पालूँगी! कुल मिलाकर यहाँ से अच्छी ज़िंदगी तो होगी। यहाँ घर से इतनी दूर पहाड़ों में तो कोई भी अपना नहीं।" उसने अपनी बात रामानंदजी के सामने रखी।

रामानंद हँस पड़े थे। फिर मस्ती भरे स्वर में उन्होंने कहा था– 'अरे पगली, जहाँ प्यार मिलता है, वहीं अपनापन होता है। यहाँ कौन से हम विदेश में हैं। सभी लोग अपने ही तो हैं यहाँ पर। कितना आदर और सम्मान देते हैं। वहाँ तुम रह पाओगी मेरी भौजाइयों के साथ?'

'उस घर में हमारा भी तो हिस्सा है, हम अपना हिस्सा अलग माँग लेंगे।' मासूमियत से बोली थी अम्माँ!

'हिस्सा कैसे अलग माँग लेंगे? अभी हमारा संयुक्त परिवार है। जब हमारे बेटों की शादी इत्यादि होगी, तब घर का बँटवारा होगा। जब तक माता पिताजी हैं, तब तक घर का हिस्सा नहीं हो सकता।' शास्त्रीजी ने समझाया तो चुप हो गई वह। यही परम्परा थी उनके इलाके में । माता-पिता के आगे तो बच्चे सिर भी नहीं उठा पाते थे। जब भाइयों की शादी हो जाए और बच्चे हो जाएँ, तब ही घर के बँटवारे की बात चलती थी।"[3]

गाँव का संयुक्त परिवार लोक चेतना का प्रथम सोपान है। यही संयुक्त परिवार अपने सदस्यों को संस्कारित करता है। यही कारण है कि ग्राम समाज में समूचा ग्राम-समाज ही परस्पर परिवार होता है। व्यक्ति जो व्यवहार अपने पारिवारिक सदस्यों के साथ करता है, वही गाँव के अन्य सदस्यों के साथ करता है। सारा गाँव ही परस्पर चाचा, दादा, काका, ताऊ, दादा-दादी आदि रिश्तों में बँधा होता है। सब परस्पर अभिवादन करते हैं, छोटे, बड़ों के पैर छूते हैं। समूचे गाँव में यह पारिवारिक वातावरण व्याप्त रहता है। 'मेजर निराला' उपन्यास का नायक मेजर निराला अपने गाँव लौटता है। इस समय का सजीव चित्रण निशंक की सशक्त लेखनी से अभिव्यक्त है:

"घर के चौक में पहुँच कर मेजर ने कंधे से बिस्तर और बक्सा उतारा। तीन चार बच्चे दौड़ते हुए नजदीक आये।

'चाचा जी आ गये।'

'ताऊ जी आ गये।'

'चाचा जी प्रणाम।'

'ताऊ जी नमस्ते।'

बच्चों ने मेजर को घेर लिया। बच्चों के गालों पर हल्की थपकी देते हुए मेजर ने सबको दुलार किया– 'नमस्ते, नमस्ते, चिरंजीव, खुश रहो।'

जेब में हाथ डालकर मेजर ने कुछ टॉफियाँ निकालीं और बच्चों में बाँट दी। बबलू को न पाकर मेजर ने पूछा– 'अरे तो ये तो बताओ, तुम्हारा दोस्त बबलू कहाँ है?'

'ताऊ जी, वह तो सूरज के घर गया है'– एक बच्चे ने कहा।

'चाचा जी, मैं उसे अभी बुलाकर लाता हूँ।'– दूसरे बच्चे ने कहा और कहने के साथ ही दौड़ लगा दी।

X X X

मेजर की नजर बगल के मकान पर गयी। बूढ़ी रुकमा दादी छज्जे पर बैठी हैं, शान्त और स्थिर। अकेली है इतने बड़े घर में। जर्जर काया और झुर्रियों से अटा पड़ा चेहरा... । मेजर नसदीक पहुँचा और पाँव छूते हुए बोला– पाय लागू दादीजी।

चिरंजीव बेटे– एक फीकी सी मुसकान तैर गई रुकमा के पीले पड़ चुके होंठों पर– कौन है?

मैं हूँ दादी निराला, तुम्हारा निराला।'– मेजर ने कहा।

कौन ? नीरू पल्टनेर !'– खुशी से पूछा रुकमा दादी ने।

'हाँ दादी।'– मेजर ने अकड़कर कहा– 'कोई शक?'– भावावेश में रुकमा ने मेजर को गले लगा लिया। भीगी आँखों से बोली– 'कब आया मेरे पल्टनेर? ठीक है तू? लड़ाई लगी थी, हमें तेरी बहुत चिन्ता लगी हुई थी।'[4]

मेजर निराला और रुकमा दादी का यह स्नेहिल संबंध ही लोक की पूँजी रही है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित हुई है।

केवल परिवार और समाज के परस्पर मधुर संबंधों तक ही लोक की व्याप्ति नहीं है। यह तो लोक का एक लघु बिंदु मात्र है। लोक की अन्य विशेषताओं में एक और प्रमुख घटक है– लोक का सहज और अकृतिम परिवेश।

डॉ. निशंक का समग्र उपन्यास साहित्य लोक पर आधारित है। उत्तराखंड के पहाड़ी जीवन को उन्होंने जन्म से जिया है। वहाँ के पर्वत, नदी-नाले, वनस्पति, वन, पशु पक्षी, वहाँ का ग्राम्य जीवन सब कुछ इनके उपन्यासों में साकार हो उठा है। जैसे :-

"मिट्टी-गोबर से लिपी पत्थर की दीवारें, जिन्हें उसके पिता ने स्वयं चिना था और ऊपर स्लेट वाली पत्थर की छत, जिन्हें पहाड़ों में 'पठाली' कहते हैं।

उसने सुना था कि पहाड़ी शैली से बनने वाले भवनों में स्लेट पत्थर का विशेष स्थान है, लेकिन गाँव में इस पत्थर की छत होना किसी वास्तुकला व शिल्प का प्रदर्शन नहीं, अपितु निर्धनता का प्रतीक ही अधिक था। पैसे वालों के मकान पर या तो टिन की छतें लग गयी थीं या पक्के लिंटर पड़ गए थे।

जमीन के उसी टुकड़े पर अगल-बगल मात्र दो कमरों का झोपड़ीनुमा घर। पहला कमरा जिसमें गाय, बकरी भी बँधें रहते और दूसरा कमरा जिसमें एक कोने पर मिट्टी का बना चूल्हा और दूसरे पर एक नारियल की रस्सी से बुनी चारपाई। चारपाई के रस्से भी इतनी जगह पर कट चुके थे कि डर रहता न जाने कब वह जमीन से आ लगे।

चूल्हे वाले कमरे को माँ रोज गोबर-मिट्टी से लीप देती और उसकी सौंधी-सी खुशबू उस कमरे में फैल जाती। यद्यपि बगल के कमरे से आने वाली गोमूत्र, गोबर की गन्ध कभी-कभी उस खुशबू से अधिक तीव्र होती, लेकिन क्या गंध तो क्या खुशबू इसकी तो उन सबको आदत-सी पड़ गयी थी।"[5]

भारतीय ग्राम्य जीवन अथवा लोक जीवन का आधार सामूहिक कार्य- योजना है। मानव श्रम दिवसों में स्त्रियाँ पुरुषों की स्पर्धा में न्यून नहीं अपितु अधिक ही हैं। ये ग्राम्य स्त्रियाँ कुएँ से पानी भरने जाएँ तो समूह में, लकड़ी लेने जाएँ तो समूह में अथवा कृषि कार्य हेतु जाएँ तब भी समूह में ही जाती हैं। डॉ. निशंक के उपन्यासों में ग्राम्य स्त्री की इस सामूहिक चेतना का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है। ऐसे स्थलों के कतिपय दृश्य अवलोकनीय हैं–

"घास काटना उत्तराखण्ड की महिला के जीवन की दिनचर्या का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। महिलाएँ दल बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल घास काटने जाया करती हैं। एक दल नहीं, कई दलों में। गाँव की बुजुर्ग महिलाएँ अपना चार छः का अलग दल बनाती हैं, नई बहुएँ अपना अलग दल बना लेती हैं। घर-घर में मवेशी हैं। कृषि यहाँ का मुख्य व्यवसाय है, किन्तु कृषि के साथ पशुपालन भी अनिवार्य व्यवसाय है। बिना पशुपालन के कृषि कार्य एकदम असम्भव ही होता है।

खेती के लिए खाद की आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता जानवरों के गोबर से पूरी होती है। उर्वरकों का प्रयोग अभी तक पहाड़ में नहीं होता। कृषि और पशुपालन एक दूसरे के पूरक हैं। पशुओं से एक ओर दूध, खेत जुताई और खाद की आवश्यकता पूरी होती है तो दूसरी ओर खेती में उगा घास, चारा, खरपतवार एवं फसल के बाद बचा हुआ भूसा पशुओं के काम में आता है।

गाँव में सभी प्रकार के परिवार हैं । सम्पन्न, मध्यम और गरीब। किन्तु दुधारू गाय और भैंस प्रत्येक परिवार में होती है। सायं को दूध का एक बड़ा गिलास परिवार के प्रत्येक सदस्य

को मिल ही जाता है। कुछ विपन्न परिवार पौड़ी के बाजार में भी दूध बेचते हैं। यह उनकी आजीविका का प्रमुख साधन भी है। यूँ तो गाँव के इर्द गिर्द अपनी फैसरीन जमीन और जंगल है, जहाँ पर रोज पशु चरने जाते हैं। फिर भी दुधारू पशुओं को घर पर ही रखा जाता है। इनके लिए रोज घास की आवश्यकता होती है। घास काटकर लाना सिर्फ एक आवश्यकता नहीं हैं वरन महिलाओं और बहू बेटियों के रोज के मिलने-जुलने का यह एक बहना भी है। घरों से निकलकर महिलाएँ एक स्थान पर इकट्ठा होती हैं। वहाँ पर कुछ क्षणों के लिए बैठती हैं। 'पलेन्थरा' पर अपनी दंरातियों पर धार लगती हैं और फिर लगती हैं चौपाल। अपने सुख-दुख की बातें, हसी-मज़ाक, छेड़ छाड़ सब चलता है। इन बैठकों का यह भी लाभ है कि महिलाएँ एक दूसरे के चौक चूल्हे, खान-पान, रिश्ते-नातों, पारिवारिक संबंधों और सुख-दुख से भली भाँति परिचित हो जाती हैं। इन्ही बैठकों में महिलाएँ घर से लायी हुई चीजों का आपस में वितरण करती हैं जैसे, भुजे हुए भट्टे, सोयाबीन, चूड़े, बुखड़े, भांग के बीच आदि।

कभी कभी महिलाएँ घर से ही बड़े-बड़े लिम्बू और नमक लाकर खटाई भी बनाती हैं और चाव से खाती हैं। कभी आड़ू, खुबानी आदि की फाँकें काटकर नमक के साथ खाया जाता है, तो कभी हरी प्याज और मूली का सलाद बनाकर आनन्द लिया जाता है। कभी-कभी ये बैठकें लम्बी भी हो जाती है– एक-एक घण्टे या उससे भी अधिक देर तक चलती रहती हैं।"[6]

महिलाओं की इस कर्मठता का चित्रण निशंक जी के प्रायः प्रत्येक उपन्यास में प्राप्त होती है। 'बीरा' उपन्यास का प्रारंभ तो इसी प्रकरण से प्रारम्भ होता है:

"सूरज लगभग अपना सफर तय कर चुका था। ऊँचे-ऊँचे पेड़ों पर डूबते सूरज की स्वर्णिम आभा झिलमिला रही थी। पशु-पक्षी अपनी दिनचर्या समाप्त कर अपने-अपने रैन-बसेरों की ओर लौटने लगे थे। संध्या का आभास होते ही ग्वाले अपने-अपने पशुओं को विभिन्न संबोधनों से पुकारते घर चलने को कह रहे थे। दूर रक्तिम आभामय आकाश में इक्का-दुक्का गोरैया का जोड़ा आपस में छेड़-खानी कर लेता था, मानो अपनी दिनभर की कमाई को घोंसलों तक ले जाने हेतु परस्पर तकरार कर रहे हों।

अपने एक कमरे के घर में अकेली बैठी बीरा इस सारे दृश्य को चुपचाप निहार रही थी। कुछ ही देर में सूर्य पूरी तरह अस्त हो जायेगा और फिर धीरे-धीरे चारों ओर अंधकार फैल जाएगा। इस पहाड़ी गाँव में भी चारों ओर नीरवता और निस्तब्धता छा जाएग। इस गाँव के अधिकांश पुरुष रोजी-रोटी की तलाश में गाँव से दूर शहरों में पलायन कर चुके हैं। घर में जो भी खेती योग्य भूमि है वह घर की महिलाओं के हवाले है।

प्रातः होते ही यहाँ की महिलाओं की दिनचर्या जो शुरू होती है, वह रात तक रुकने का नाम नहीं लेती। सुबह उठते ही गाय-भैंसों को घास देने से लेकर गौशालाओं की सफाई करना, दूर बांज के पेड़ों की जड़ों से निकलकर आते धारे से पानी लाना, घास लकड़ी के लिए जंगल जाना, सुबह के नाश्ते से लेकर दिन का खाना बनाना और बाकी बचे समय में खेतों का काम करना। फिर जानवरों के काम से लेकर रात का खाना बनाना और बच्चों को खाना खिलाने तक पूरा दिन और आधी रात बस यूँ ही बीत जाति है।

गाँव के ठीक सामने वाली पहाड़ी की तलहटी में बहती काली गंगा की आवाज अब अधिक सुनाई देने लगीं थी। पेड़ पौधे जैसे किसी गहन चिंतन में खो गये हों, बायीं ओर की पहाड़ी पर बसा कुणेथ गाँव अब पूरी तरह रात की चादर ओढ़ने लगा था। महिलाएँ घास लकड़ी बटोरकर कोई पन्देरे की ओर जा रही थीं, तो कुछ गाय भैंसों को दुहती नजर आ रही थीं। कुछ एक डिंडालों और तिबारियों में हुक्के की गुड़गुड़ाहट भी सुनाई दे रही थी। कुछ ही देर में महिलाएँ चूल्हा फूँककर उसमें चाय की केतली रखकर सब्जी काटने और कुछ आटा गूंथने की तैयारी करने लगीं। कुछ घरों में चिमनी के सामने और कहीं चूल्हे की रोशनी में बच्चे अपनी किताब को टटोलते नजर आ रहे थे। बिजली के खंभे तो खड़े हैं गाँव में, लेकिन धुप धुप टिमटिमाते बल्बों को दिया दिखाना पड़ता था।"[7]

महिलाओं की कर्मठता से पृथक पुरुष की स्थिति का एक उदाहरण भी यहाँ उद्धृत किया जाना समीचीन होगा:

"वीरू जानता था कि पहाड़ की महिलाएँ कर्मठ हैं; लेकिन पुरुष नाकारा हैं, ऐसा भी नहीं था। पहाड़ में महिलाओं के कर्मठ और पुरुष के नाकारा होने के जुमले भी खूब प्रचलित थे बाहर। उनकी धारणा के अनुसार, पहाड़ के पुरुष ताश खेलने, गपबाजी करने और नशे में अपना समय व्यतीत करते हैं जबकि महिलाएँ ही घर-बाहर दोनों का काम संभालती हैं। पहाड़ का पुरुष या तो नौकरी की तलाश में शहरों में भटक रहा है या फौज में भर्ती हो सीमा पर दुश्मनों से देश की रक्षा कर रहा है। अपने-अपने क्षेत्रों में कुशलता से काम कर अपनी क्षमता का परिचय दिया है पहाड़वासियों ने। सीमा पर दुश्मनों से लड़ते हुए खुशी-खुशी अपने प्राणों का उत्सर्ग करनेवाला पहाड़ी युवा कैसे नकारा कहलाया जा सकता है?

गाँव में रह गए हैं कुछ सेवानिवृत्त बुजुर्ग और संसाधनहीन युवा, जो कुछ तो कमजोर आर्थिक स्थिति के हैं और कुछ पढ़ाई भी पूरी न कर पाए। ऐसे ही कुछ नाव युवक इन शराब तस्करों के हाथ की कठपुतली बन क्षेत्र को बदनाम कर रहे थे।"[8]

इन उदाहरणों के द्वारा उपन्यासकार डॉ. निशंक की सामाजिक चिंतनधारा को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया हैं। डॉ. निशंक ने समाज को गढ़ने के लिए अपनी जन्मभूमि और कर्मभूमि का चयन किया। इस दृष्टि से इनके उपन्यासों को फनीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों की भाँति आँचलिक उपन्यास कहा जा सकता है। परन्तु जैसे रेणु के उपन्यास रचनात्मक दृष्टि से आँचलिक होते हुए भी समग्र भारतीय जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसी प्रकार डॉ. निशंक के उपन्यास पहाड़ी जन जीवन पर केंद्रित होते हुए भी भारतीय समाज को प्रतिबिंबित करते हैं।

डॉ. निशंक के उपन्यास लेखन के सम्मुख उनका अपना पहाड़ी समाज है। इस समाज की गतिविधियाँ हैं और लोक जीवन की हलचल है। उपन्यासों में वर्णित वातावरण को पढ़कर-समझकर इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि पहाड़ी समाज भले ही पुरुष प्रधान हो, परन्तु महत्व स्त्री का और उसके श्रम एवं संघर्ष का है। पुरुषों के पास काम नहीं है अतः वे निठल्ले बैठे रहते हैं।

डॉ. निशंक का 'लोक' ग्राम तक सीमित नहीं है। उपन्यासकार ने नगरीय जन-जीवन का भी चित्रण किया है। परन्तु इस लोक जीवन को डॉ. निशंक कृत्रिम मानते हैं। क्योंकि इस जीवन में न तो उन्मुक्त प्रकृतिक परिवेश है, न रिश्तों की गर्माहट, न परस्पर प्यार। अगर है तो सिर्फ दमघोंटू वातावरण :

" 'पिताजी उतरिये! यहाँ से पैदल चलना होगा। आगे ऑटो नहीं जा सकता।' राजू की आवाज पर गुमान सिंह की तंद्रा टूटी। पाँच-सात मिनट पैदल चलकर राहू एक तीन मंजिले मकान के सामने रुका। मकान क्या, यों लगता था जूते के डिब्बे को सीधा खड़ा कर दिया हो। दो मंजिल चढ़कर ऊपर पहुँचने पर राजू ने कमरा खोलकर बत्ती जल दी।

अन्दर पहुँचते ही गुमान सिंह को अजब सी घुटन महसूस हुई– 'राजू खिड़की नहीं है तेरे घर में ? जल्दी से खिड़की तो खोल, दम घुट रहा है मेरा तो यहाँ।'

'अरे पिताजी, यहाँ इतनी छोटी-सी जमीन के टुकड़े पर ही इतने बड़े मकान बन जाते हैं। आस पास के सभी घरों की दीवारें एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं तो कहाँ से खिड़की निकलेगी?' राजू ने समझाया।

सुबह होने पर पिता ने ढंग से राजू का घर देखा। एक कमरा, उसके अन्दर ही कोने में छोटा-सा किचिन और दूसरे किरायेदारों के साथ बाँटा जाने वाला सम्मिलित शौचालय। तो ये है राजू का घर, जिसमें वह हम सबके एक साथ रहने की बात करता हैं?

बाहर छत पर निकलकर चारों तरफ देखा। छोटी छोटी तंग गालियाँ, खुली नालियाँ और जगह-जगह गंदगी का ढेर। ये दिल्ली काल रात देखी गई दिल्ली से कितनी अलग थी। उन्हें अनायास ही गाँव के बुजुर्गों की कही बातें याद आ गयी– दिल्ली में क्या मक्खियाँ नहीं रहती?'

दिन में राजू के साथ बाजार जाते हुए इसी दिल्ली को और नजदीक से देखने का मौका मिल गया था उन्हे। भव्य अट्टालिकाओं के दूसरी ओर झुग्गी बस्तियाँ, गन्दगी के ढेर से उठती सड़ांध। मक्खियाँ ही तो हैं, जो गन्दगी के ढेरों पर बैठी हैं।"[9]

'बीरा' उपन्यास का पात्र दिल्ली महानगर से जब अपने गाँव वापस आता है, तब उपन्यासकार उसके माध्यम से मानों स्वयं की अनुभूति व्यक्त कर रहा हो–

"दो दिन किसी तरह दिल्ली में रुककर गुमानसिंह वापस लौट आये। गाँव की धरती पर पहुँच कर उन्होंने सुकून भरी लम्बी साँस ली। लग रहा था मानों कितने दिनों से खुलकर साँस ही नहीं ले पाये हैं वे।"[10]

डॉ. निशंक के लोक की सर्वोच्च सीमा-बिंदु पर वास्तविक लोक है और सीमा के निम्न बिंदु पर कृत्रिम लोक। परन्तु उनकी दृष्टि उच्च बिंदु पर ही रही है। इस लोक की वे केवल प्रशंसा और विशेषताओं का ही बखान नहीं करते। उनमें जो न्यूनताएँ उन्हें परिलक्षित हुई हैं उन्हें भी अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। उपन्यास 'छूट गया पड़ाव' में अपने वक्तव्य में वे लिखते हैं– "इसके माध्यम से जहाँ पर्वतीय गाँवों की झलक से लेकर मानवीय मूल्यों, सामाजिक विसंगतियों व मानवोचित कमजोरियों को सामने लाने का प्रयास किया गया है, वहीं ग्राम्य जीवन के मूलाधार– 'मुखिया' व 'गुरु' के गुरुतर दायित्वों को दर्शाने की कोशिश की गई है।"[11]

लोक के दोनों रूपों– ग्राम्य एवं नगर की समाज-इकाई में निहित चेतना के विविध कार्य कलापों को डॉ. निशंक ने अपने उपन्यासों में भली भाँति चित्रित किया है।

(ख) राजनीतिक चेतना:

राजनीति से सम्बन्धित चेतना ही राजनीतिक चेतना है। सन् 1947 के पूर्व तक देश में राजाओं का राज अर्थात राजतंत्र रहा। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात राजे-

रजवाड़ों की प्रभुता धूमिल हो गयी, अंग्रेजों ने समूचे देश पर अधिकार कर लिया। यद्यपि वे कहलाते राजा-महाराजा ही थे; परन्तु इनका सारा नियंत्रण अंग्रेजों के हाथों में था। ये 'सिंह' (राजा-महाराजा) सर्कस के कटघरों में बंद थे और रिंग मास्टर (अंग्रेज) के कोड़ों के इशारों पर नाचते थे।

1947 में राजा-महारजाओं के साथ-साथ अंग्रेजों के राज का भी अंत हुआ और देश स्वतंत्र हुआ। 26 जनवरी, 1950 को देश में संविधान लागू होते ही हम स्वाधीन हो गये और देश में प्रजा का शासन अर्थात प्रजातंत्र हो गया।

जनता आजादी के सतहत्तर वर्षों के पश्चात भी रोजगार, शिक्षा, बिजली, पानी, सड़क, स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाओं से वंचित हैं। नगर इन सुविधाओं से परिपूर्ण हैं परन्तु ग्राम, विशेष रूप से पहाड़ी गाँव इन सुविधाओं के लिए तरस रहे हैं। डॉ. निशंक लेखक के साथ-साथ एक सफल राजनेता भी हैं। वे अनेक दायित्वों के साथ-साथ उत्तराखंड के मुख्यमंत्री और केंद्र सरकार में शिक्षा मंत्री भी रहे हैं। ग्राम विकास और राजनीति के मध्य के अंतर्संबंधों को वे भलीभाँति जानते हैं।

परन्तु यह भी सत्य है कि स्वतंत्रता के पश्चात सारे गाँव मूलभूत सुविधाओं से वंचित नहीं रहे। सरकारें कुछ गाँवों में अपनी कृपा का वर्षण भी करती रही हैं: "पहाड़ में आजादी के बाद काफी विकास हुआ है। खासकर बिजली, पानी, सड़क, शिक्षा और गाँव के रास्तों के विकास पर सरकार ने ज्यादा ध्यान दिया है।"[12] इसी बात का खंडन 'पहाड़ से ऊँचा' उपन्यास का नायक मोहन करता है, वह खोखले विकास अथवा कागजी विकास की पोल खोलता है:

"वर्षों से यही रोना है पहाड़ों का। स्वास्थ्य सेवाएँ यहाँ हैं नहीं, अन्य क्षेत्रों में भी कुछ ऐसी ही स्थिति है। बच्चे हैं तो स्कूल नहीं, स्कूल हैं तो भवन नहीं, भवन हैं तो अध्यापक नहीं। बिजली के पोल हैं तो बिजली नहीं, पानी के नल हैं तो पानी नहीं, अस्पताल हैं तो डाक्टर

नहीं। लोग बेचारे इतने भोले और सरल हैं कि उन्हें अपने मूल अधिकारों का ज्ञान तक ही नहीं है।

लेकिन अब तो सुना है कि पहाड़ों में भी बहुत विकास हो गया है? मोहन को बीच में रोकते हुए कह उठी गंगा।

हाँ गीता, कहीं कागजों में तो कहीं-कहीं हकीकत में। नीति निर्माता वहीं अधिक ध्यान देते हैं, जहाँ अलगाववाद, जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद, आतंकवाद के विभिन्न वादों का मवाद भरा हुआ हो। यहाँ की शान्त और भोली जनता के भाग्यविधाताओं ने इन्हें उन सुविधाओं से भी वंचित कर दिया है, जो आज की तिथि में तो बहुत सामान्य है। कागजी घोड़े दौड़ाते रहते हैं- महज खाना पूर्ति के लिए।

जनसेवक जब स्वयं को जनाधिकारी समझने लगे, तब यही हाल होता है। जनता से संग्रहीत कर पर ऐश्वर्य एवं वैभव का भोग करने वाले अधिकारी उनको प्रश्रय देने वाले जनप्रतिनिधियों की उदासीनता का सदैव गलत फायदा उठाते हैं, जिसका खामियाजा जनता को भुगतना पड़ता है।"[13]

उपर्युक्त उदाहरण से राजनीति का वास्तविक स्वरूप डॉ. निशंक ने स्पष्ट कर दिया है। यह स्पष्ट स्वरूप है– जनप्रतिनिधियों की उदासीनता का। इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए 'छूट गया पड़ाव' का आनन्दसिंह कहता है– "सरकारी काम है। कोई सुनने वाला नहीं, न कोई धमकाने वाला। नेताओं का भी बस चुनाव होने तक का नाता रहता है। कोई सुध ले तो काम हो भी। सालों से लटकी पड़ी है सड़क।"[14]

डॉ. निशंक राजनेता भी हैं। उन्हें वर्तमान राजनीति के कर्णधारों की प्रवृत्ति भली भाँति ज्ञात हैं। यहीं कारण है कि उन्होंने खुलकर राजनीति की अच्छाई-बुराई की बात नहीं अपितु इन दोनों के समन्वयात्मक रूप को प्रस्तुत किया है; जो– अच्छी भी है और बुरी भी।

जनता की सेवा करने के नाम पर चुनाव जीतने वाले नेता जब सेवा करने से 'उदासीन' हो जाते हैं तब वे नेता और उनकी राजनीति निकृष्ट श्रेणी में परिगणित होने लगती है।

राजनीति अब जनता की सेवा का साधन नहीं रही। इसमें पद-पैसा-प्रभाव का आकर्षण है। उसी आकर्षण के कारण नेतागण इस ओर आकृष्ट होते हैं। जनप्रतिनिधि बन जाने पर वे स्वयं का और स्वयं के परिवार का भला करने के प्रति अधिक प्रयासरत रहते हैं। उपन्यासकार एवं राजनेता डॉ. निशंक ने राजनीति के इस ऋणात्मक पक्ष को न तो अपने उपन्यासों में स्पर्श किया है और न ही विस्तृत चर्चा की है। इसका कारण है– डॉ. निशंक सामाजिक उपन्यासकार हैं। उनकी दृष्टि आम आदमी और उसके सुख-दुख पर है। पहाड़ी समाज और संस्कृति उनके लेखन के घोषित उद्देश्य हैं। राजनेता होते हुए भी उनका लेखन राजनीति-शून्य हैं।

डॉ. निशंक के उपन्यास लेखन में राजनीतिक पक्ष संकेतों में आधारित हुआ है। सांसद और विधानसभा जैसे शब्द इनके उपन्यासों में प्रायः नहीं हैं। राजनीति के नाम पर ग्राम प्रधान और ग्राम पंचायत तक ही एक दो स्थानों पर उपलब्ध हैं– "कुछ लोगों के प्रोत्साहन से उसके मन में धीरे-धीरे राजनीतिक महत्वाकांक्षा भी पनपने लगी थी। इसी के चलते उसने पिछली बार ग्राम प्रधान का चुनाव भी लड़ा, लेकिन विरोधी पार्टी के धन-बल के आगे उसे मुँह की खानी पड़ी, पर उसने उम्मीद का दामन नहीं छोड़ा। धन-उसके पास कभी आएगा नहीं, इस सत्य को वह बखूबी जानती थी, इसलिए जन-सरकारों से सीधे जुड़ मेहनत कर रही थी।"[15] उक्त उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि डॉ. निशंक का औपन्यासिक लेखन राजनैतिक चेतना रहित है। राजनीतिक दावे-पेंच और छिछली राजनीति का चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में नहीं किया है।

(ग) धार्मिक चेतना:

धर्म से सम्बन्धित चेतना ही धार्मिक चेतना है। तथाकथित बुद्धिजीवी लोकाचार, लोक विश्वास, लोक परम्पराओं, लोक मान्यताओं और लोक रूढ़ियों को अंधविश्वास की संज्ञा प्रदान कर इन्हें हेय दृष्टि से देखते हैं। यह उचित नहीं है। वर्तमान युग वैज्ञानिक युग का है । इस युग में प्रत्येक कार्य और सिद्धांत को विज्ञान की दृष्टि से देखा जाता है और तर्क की तराजू पर परखा जाता है। लोक आस्था का विषय है, विज्ञान का नहीं । परन्तु कुछ विश्वास और परम्पराएँ ऐसी भी हैं, जिन्हें विज्ञान भी मान्यता प्रदान करता है।

परन्तु लोक यह चिंता नहीं करता कि कौन उसे मान्यता दे रहा है और कौन नहीं? लोक विश्वास आस्था का विषय है। यह आस्था तब भी थी लोक में और आज भी है। यह अलग बात है कि तब इसका रंग प्रगाढ़ था, आज धूमिल है । धर्म का आधार यही आस्था है। आस्था, धर्म के विभिन्न रूपों में स्थित है, वह चाहे अभिजात्य धर्म हो अथवा लोक धर्म।

लोकधर्म का स्वरूप प्रकृत है, इसमें कृत्रिमता का कोई स्थान नहीं होता। लोक देवताओं को न तो तड़क भड़क युक्त वस्त्राभूषणों की आवश्यकता होती है, न ही व्यंजनों की। लोक देवी-देवताओं को लोक में पशु बलि देने और शराब अर्पित करने की परम्परा है। इसके अतिरिक्त ये देवता कुछ अधिक नहीं चाहते। लोक देवता सरल-सहज होते हैं। डॉ. निशंक के उपन्यासों में धर्म दोनों रूपों में व्याख्यायित है। उनकी अपनी मान्यता है। 'प्रतिज्ञा' उपन्यास के 'निवेदन' में वे लिखते हैं– "अपनी रचनाओं में मैंने देवभूमि उत्तराखण्ड की समृद्ध संस्कृति व गौरवशाली गाथाओं समेत यहाँ की पौराणिक, धार्मिक, सामाजिक परिवेश व परंपराओं से भी पाठकों को अवगत कराने की कोशिश की है।"[16] – उनकी यह कोशिश प्रायः समस्त उपन्यासों में परिलक्षित होती है।

हिन्दू धर्म में तीर्थयात्रा का बड़ा महत्व है। 'मेजर निराला' का नायक निराला अपनी माँ को तीर्थयात्रा कराने का अभिलाषी है– "माँ की याद उसे बराबर आती। अगली बार की छुट्टियों में वह माँ को बद्री केदार और गंगोत्री जमनोत्री की यात्रा कराएगा।"[17]

लोक देवताओं के चित्रण में डॉ. निशंक का मन अधिक रमा है–

"ढोली मधुर कंठ से गायन शैली में देवताओं का आह्वान कर रहा था, साथ में दमाऊँ वाला उसके स्वर में स्वर मिला रहा था।

देवताओं के 'पश्वा' जमीन में शुद्ध आसन में चौकी के ऊपर बैठे हुए थे। पंडित जी उनके ठीक आगे दीप धूप के साथ घंटी बजाकर मंत्र पढ़े जा रहे थे। लोग पुष्प लिये हाथ जोड़कर खड़े थे। महिलाएँ हाथों में 'थालीतांमी' थामे देवता के अवतरित होने की प्रतीक्षा कर रही थीं।

ढोल की थाप के साथ ही गाँव के नवयुवक रणसिंग, भंकोरे, घंटी आदि बजाकर देवताओं का आह्वान कर रहे थे।

प्रत्येक वर्ष गाँव के लोग सामूहिक रूप से देव पूजन करते हैं । इसका फल भी उन्हें मिलता है।

नागराजा, नरसिंह, भैंरो, हीत और भगवती माता गाँव के देवी देवता हैं। सबका यहाँ पर आह्वान किया जाता है। देवी-देवता अपने पशुओं पर अवतरित होते हैं और नाच कूद कर भक्तों को आशीर्वाद देते हैं।"[18]

डॉ. निशंक मेजर निराला के विचारों के रूप में अपनी अभिव्यक्ति देते हैं –

"आस्था हमें संस्कारित करती है। आस्था के कारण हम अच्छा करने की प्रेरणा पाते हैं और बुरा कार्य करने से डरते हैं। हमारे पहाड़ में हर मनुष्य के अन्दर श्रद्धा और आस्था कूट-कूटकर भरी है, इसलिए इसे देवभूमि भी कहा जाता है। करोड़ों हिन्दुओं की आस्था के प्रतीक श्री बद्रीनाथ, श्री केदारनाथ, गंगोत्री और यमनोत्री इसी भूमि में हैं। यह भूमि महान है। तभी

तो आज विश्व भर के लोग शान्ति की खोज में यहाँ पर आते हैं। ऋषी-मुनियों की तपस्थली भी रही है तपोभूमि।

हजारों वर्षों पूर्व से हिमालय की कंदराओं में तपस्या और साधना करके विश्व और मानव कल्याण के लिए हिन्दू धर्म के ऋषियों ने अपना जीवन अर्पित किया है। इतिहास की पुस्तकें इन सब किस्सों से भरी पड़ी हैं।"[19]

उपर्युक्त उदाहरण में डॉ. निशंक ने धर्म के दोनों रूपों- लोक धर्म और नागर धर्म को समन्वित करने का सार्थक प्रयास किया है। एक ओर 'गाँव के लोग सामूहिक रूप से देव पूजा करने और गाँव में सुख समृद्धि है' कहकर वे लोक धर्म के महत्व को प्रतिपादित करते हैं। दूसरी ओर बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री-जमनोत्री जैसे तीर्थों में कई लोग 'शान्ति की खोज' में यहाँ आने की बात कहकर वे नागर धर्म की पुष्टि करते हैं। डॉ. कपिल देव पांवर का मत इस प्रसंग में यहाँ उल्लेखनीय हैं। इस संदर्भ में वे लिखते हैं–

"रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने हिमालयी प्रदेश की लोक भूमि में अपने साहित्य लेखन की ऐसी जमीन तलाशी, जिसमें भारतीय जनमानस पर व्यापक सांस्कृतिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने लोक तत्वों को लोक के साथ स्वीकार किया है। वे उपादान आरोपित नहीं, बल्कि यहाँ की संस्कृति में समाहित हैं। उनकी लोक अध्ययन की दृष्टि से लोक मानस के रहन-सहन, उनके रीति रिवाज, धर्म, विश्वास, आस्था, आचार-विचार, शारीरिक विशेषताएँ, उत्पत्ति और वृद्धि, संस्कार और धर्म, नृत्य और गीत, मन्दिर और मठ, पर्व-उत्सव एवं भाँति-भाँति के आमोद प्रमोद, उनके बीच के विशेष गुण एवं स्वभाव, वेशभूषा एवं आभूषण, उनके निजी नाम एवं स्थानों के परिचय जैसा कुछ भी अछूता नहीं हैं। X X X उत्तराखण्ड की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि विविध धर्मी की मानस भूमि रही है। यहाँ की धार्मिक पृष्ठभूमि का विवेचन करने के फलस्वरूप इसे किसी एक धर्म-सम्प्रदाय में परिबद्ध नहीं किया जा सकता है। यहाँ के लोक मानस में शैव, शाक्त, नाग, वैष्णव, बौद्ध, नाथ आदि हिन्दु

सम्प्रदायों का मिश्रित प्रभाव रहा है। लोक मानस में जहाँ एक ओर नाथों, नागों, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, यक्ष-देवता के प्रति आस्था भाव है, वहीं पुण्य मानव-आत्मा में देवत्व स्थापित करने से लेकर प्रकृति का मानवीकरण करना भी लोकधर्म है।"[20]

डॉ. पांवर अपनी शोध पुस्तक में जिस लोक धर्म के स्वरूप को उद्घाटित और व्याख्यायित करते हैं, उसकी परिधि विस्तृत है। इस परिधि में छींक विचारना, शरीर के किसी अंग पर छिपकली गिरना, सिर पर कौवा बैठना, कोई शुभ बात कहते अथवा यात्रा पर जाते समय छींक आना, देह के किसी भाग में तिल, मस्सा या ऐसा ही अन्य कोई चिह्न होना, किसी कार्य को करने के लिए जाते समय सामने से भरे हुए घड़े मिलना, बछड़े को दूध पिलाती गाय दिखना, बिल्ली का रास्ता काटना आदि सैकड़ों शुभ-अशुभ ऐसी मान्यताएँ हैं जो लोक-मानस में व्याप्त हैं।

ज्योतिष भी लोक धर्म का प्रधान अंग है। ग्रह-नक्षत्र, वार, तिथि, लगन आदि के आधार पर की जाने वाली भविष्यवाणी को भी लोक मान्यता देता है। डॉ. निशंक के उपन्यासों में ज्योतिष की झलक प्राप्त हो जाती है– "जोशी जी स्वयं पंडित थे, तो उसी दिन दोनों की जन्मपत्री और पंचांग देखकर विवाह के लिए आगामी नवरात्रों का दिन भी निश्चित हो गया।"[21]

किसी तिथि विशेष का सम्बन्ध जन्म और मृत्यु से जोड़कर उसे शुभ और अशुभ के दायरे में बाँधना भी लोक मान्यताओं का एक अंग है– "ब्राह्म मुहूर्त में ठीक बैकुंठ एकादशी के दिन ही प्राण त्यागे थे पंडित जी ने।

'सीधे स्वर्ग जाएँगे पंडितजी'– गाँव के एक बुजुर्ग ने कहा तो पंडिताइन की सिसकियों की गति और तेज हो गई।"[22]

इसी प्रकार 'पहाड़ से ऊँचा' उपन्यास की शान्ति शिवजी से अपने पति की शराब छुड़ाने की कामना करती है। धर्म का बाह्य रूप ही भक्त को अथवा तो लोगों को आकर्षित

करता है। वह भगवान की पूजा करता है, चढ़ावा चढ़ाता है और अपने तथा परिजनों की सुख-समृद्धि की कामना करता है। उत्तराखण्ड में यद्यपि विष्णु आदि देव भी पूजित हैं, परन्तु देवादिदेव महादेव के पूजन का प्राधान्य है। शिव का सर्वप्रिय माह श्रावण माना जाता है। इस पूरे माह लोग विशेष रूप से महिलाएँ शिव का पूजन-अर्चन करती हैं और शिव से अपनी अभिलाषा पूरी करने का वरदान माँगती हैं। इस समूचे प्रकरण को डॉ. निशंक ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है:

"सावन की सुनहरी सोमवारी सुबह, सारी सुहागिनें गाँव के शिवालय में जल चढ़ाने जा रही थी। शान्ति भी अपने पति-परिवार की दीर्घायु तथा आरोग्य की कामना लिये देवालय गई । मन में उधेड़बुन थी कि पति शराब कैसे छोड़े। x x x भगवान के दरबार में कोई कुछ माँगता, कोई कुछ। पूरा देवालय श्रद्धालुओं की भीड़ से भरा था। द्वार पर कुछ कुष्ठ रोगी भी बैठे थे। पूरा वातावरण भोलेमय बना हुआ था। कोई घंटा बजाता, कोई कीर्तन करती मण्डली तन्मय होकर जैसे कैलाश पहुँच जाती हो। कोई प्रसाद वितरण करता, कोई जयकारा लगाता। शान्ति भी पल्लू सम्भाले शिवलिंग का जलाभिषेक करके मन ही मन पति के शराब की लत छूटने का वर मांगती जल्दी-जल्दी कुछ फूल पाती लिये तथा भिखारियों को यथाशक्ति दान-दक्षिणा देकर शीघ्र घर लौट आई थी।"[23]

उपर्युक्त उद्धरण में शिव मन्दिर भक्त का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। सामान्यतः देश के छोटे-बड़े मंदिरों में यही दृश्य प्राप्त होता है। ये सब बाह्य धर्म रूप के लक्षण हैं। कहीं-कहीं धर्म के मूल तत्व के लक्षण भी प्राप्त होते हैं : "मानवता की सेवा ही अब आपका परम धर्म है।"[24]

डॉ. निशंक की लोक चेतना में धर्म का स्वरूप व्यापक है। इनके उपन्यासों में उनके द्वारा इस तथ्य को उद्घाटित किया गया है।

(घ) आर्थिक चेतना :

आर्थिक मुद्दों से सम्बन्धित चेतना ही आर्थिक चेतना है। पुरुषार्थ चतुष्ट्य के अन्तर्गत द्वितीय पुरुषार्थ अर्थ है, जिससे मनुष्य के ईहलीकिक तथा पारलौकिक समस्त प्रयोजन सिद्ध होते है-यत सर्वप्रयोजनसिद्धि स अर्थ। अर्थ मनुष्यो के भोग, आरोग्य एवं धर्म का प्रमुख साधन है इसी कारण अर्थ के प्रति सर्वत्र प्रवृत्ति मानवीयजन की होती है। अर्थ की महत्ता बृहस्पति ने भी बताई है-अर्थ सम्पन्न व्यक्ति के पास मित्र, धर्म, विद्या, गुण क्या नहीं होता है। इसके विपरीत, अर्थहीन, व्यक्ति मृतक एवं चाण्डाल के समान है। इस प्रकार है, जगत् का मूल है। अर्थ अर्थात् धन से सम्बन्धित चेतना ही आर्थिक चेतना कहलाती है। आर्थिक शब्द अर्थ शब्द से ठक प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। जब कवि या रचनाकार समकालीन लोक परिवेश के आर्थिक पक्ष पर लेखनी चलाता है तो उसके द्वारा चित्रित यह स्वरूप आर्थिक चेतना के परिक्षेत्र में आता है।

किसी भी समाज अथवा राष्ट्र की उन्नति, राजनीतिक स्थिरता, सामाजिक समरसता एवं शान्तिपूर्ण वातावरण के लिए उस राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति का आर्थिक स्तर सतुष्टिजनक होना आवश्यक है। समाज एवं राष्ट्र का विकास अर्थ पर ही आधारित होता है। संसार में प्रत्येक कार्य की सिद्धि के लिए अर्थ की परम आवश्यकता होती है।

भारतीय परम्परा में अर्थ की गणना चतुष्फल– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में की गयी है। अर्थ के अभाव में विश्व का कोई भी कार्य सम्पादित नहीं होता। चार पुरुषार्थों में पहले धर्म का प्राधान्य था, अर्थ गौण था। आज परिस्थितियाँ विपरीत हो गयी हैं। अब अर्थ प्रथम स्थान पर समाहित हो रहा है और धर्म दूसरे स्थान पर जा पहुँचा है। आज समूचे विश्व में एक ही लक्ष्य रह गया है– अधिक से अधिक अर्थोपार्जन। सूरज की किरण उगने से लेकर अगले दिन उसी किरण तक मनुष्य केवल और केवल अर्थ प्राप्ति हेतु श्रम कर रहा है– यंत्र मानव बनकर।

इस अर्थ प्राप्ति में वह अनैतिक कार्यों को करने से भी नहीं चूकता– सारा विश्व निन्नानवे को सौ बनाने के फेर में लगा हुआ है। जिसके पास सौ रुपये हैं, वह उसे हजार रुपए बनाना चाहता है और जिसके पास हजार रुपए है वह लखपति बनने की होड़ में लगा है। लखपति-करोड़पति, करोड़पति-अरबपति और खरबपति समूचे विश्व की सम्पत्ति का स्वामी बनना चाहता है। सब इस अंधी दौड़ में एक दूसरे से आगे निकल जाना चाहते हैं। राजनेता, माया-मोह से दूर रहने का उपदेश देने वाले संत, धर्मगुरु आदि समाज का प्रत्येक वर्ग सम्मिलित है इस दौड़ में। कबीर-रैदास-तुलसी जैसे निस्पृह संत आज इस अर्थयुग में अप्रासंगिक-से हो गये हैं। 'संतन कौ कहा सीकरी सों काम' और 'जब आबै संतोष धन, सब धन धूर समान' जैसी उक्तियों को लोगों ने अपने जीवन से बहिष्कृत-सा कर दिया है।

भारतीय वाङ्मय में लक्ष्मी और कुबरे को धन के अधिष्ठात्री और अधिष्ठात्रा मानकर सम्मान और आदर दिया गया है। श्रम और नीति से कमाई गयी सम्पत्ति को श्रेष्ठ और ग्राह्य बताया गया है। 'ऋग्वेद' में– 'अबिनना रयिमश्नवत पोषमेव दिवेदिवे। यशसं विरक्तममै' कहकर अनीति से उपार्जित धन से दूर रहने का उपदेश दिया गया है। 'ऋग्वेद' के अनेक सूत्रों में कहा गया है कि अनीति से कमाई हुई लक्ष्मी हमारे पास से दूर-बहुत दूर चली जा। 'मनुस्मृति' और चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' में ऐसे अनेक स्थान हैं जहाँ अनीति से उपार्जित किये गये धन को बुरा कहा गया है और उसका तिरस्कार किया गया है। चाणक्य भी अपने 'अर्थशास्त्र' में इस बात का उल्लेख करते हैं कि अन्याय से कमाया हुआ धन दस वर्ष से अधिक नहीं चलता। ग्यारहवें वर्ष में तो वह मूल और सूद सहित नष्ट हो जाता है:

"अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशेवर्षे समूलं तद विनश्यति।।"[25]

लोक श्रद्धावान और आस्थावान होता है, इसलिए वह शस्त्रों और महापुरुषों के इन प्राप्त वचनों को शिरोधार्य करते हुए मान्यता प्रदान करता है। यह एक आदर्श स्थिति है।

साहित्य की पद्य विधा में इस आदर्श स्थिति को तो ग्रहण किया ही गया है, गद्य विधा में भी मान्यता प्राप्त है। 'गोदान' उपन्यास का नायक होरी मरते समय तक संघर्ष करता है, विपन्नावस्था में जीवन व्यतीत करता है, परन्तु अनीति से अर्थोपार्जन नहीं करता। दूसरी ओर रायबहादुर अनीति से ही अपनी तड़क-भड़क और वैभव का महल खड़ा करते हैं। होरी किसी से छल करना उचित नहीं मानता–

"होरी ने आकाश की ओर देखा और मानों उसकी महानता में उड़ता हुआ बोल– सब कुछ बँट गया चौधरी। जिनको लड़कों की तरह पाला-पोसा, वह अब बराबर के हिस्सेदार हैं, लेकिन भाई का हिस्सा खाने की अपनी नीयत नहीं है। इधर तुमसे रुपये मिलेंगे, उधर दोनों भाइयों में बराबर बाँट दूँगा। चार दिन की ज़िन्दगी में क्यों किसी से छल-कपट करुँ।"[26] यह है लोक चेतना।

डॉ. निशंक के उपन्यासों में अर्थ संबंधी यही चेतना सर्वत्र है। 'भागोंवाली' उपन्यास के शास्त्रीजी का लोक चेतना का स्तर होरी से साम्य है। होरी की भाँति शास्त्रीजी भी अपने भाइयों को धोखा नहीं देना चाहिए था:

> "मैं कह रही थी कि उम्र के इस पड़ाव में हमें यहाँ बसना ठीक रहेगा?
>
> 'क्या मतलब ?'– यकायक चौंक गये शास्त्रीजी।
>
> 'मतलब कि वहाँ तो अपनी खेती है, मकान है। अपना हिस्सा है हमारा....' – धीरे से कहा अम्मा ने।
>
> 'बावली हो गई हो क्या? अब क्या कहकर वहाँ हिस्सा मांगने जाएँगे, किया क्या है हमने वहाँ के लिए? वहाँ उनके सुख-दुख में कहाँ कभी काम आये?'– शास्त्रीजी ने पूछा।"[27]

डॉ. निशंक की यही आर्थिक आदर्शवादी चेतना उनके समस्त उपन्यासों में स्थापित है। यह आर्थिक आदर्श चेतना ग्रामों के अतिरिक्त अन्यत्र हो ही नहीं सकती।

गावों का अपना अर्थतंत्र- विकसित अर्थतंत्र है। इस अर्थतंत्र की सुदृढ़ नींव कृषि कार्य है। उदयानिकी एवं पशुपालन इसके सहायक हैं। इसके अतिरिक्त कृषि कार्य में प्रयुक्त होने वाले यंत्रों– हल, कुदाल, फावड़ा खुरपी, कुल्हाड़ी आदि का निर्माण और सुधार कार्य ऊन, सूत, बाँस व मिट्टी के समान का निर्माण, पत्थर की मूर्तियाँ व वस्तु शिल्प, जड़ी बूटियों से औषधि निर्माण– यह सब ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का सुदृढ़ आधार है।

डॉ. निशंक के उपन्यासों में इस आर्थिक चेतना का पर्याप्त चिन्तन उपलब्ध है। इस दृष्टि से वे महात्मा गाँधी के विचारों के अत्यधिक निकट हैं। गाँधीजी के ग्राम स्वरूप की कल्पना यही है। वो गावों को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाना चाहते थे जो राजनीतिक रूप से भी स्वावलम्बी हों और आर्थिक रूप से भी। इसके लिए ग्राम उत्पाद पर आधारित लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना पर वे बल देते थे। वे सहकारिता पर भी बल देते थे ताकि समानता और समता की भावना सुदृढ़ हो और वर्गवाद तथा सामाजिक व आर्थिक विषमता की समाप्ति हो। ग्रामीण जीवन में ये सारे तत्व हैं। बस इन्हें विस्तार करने के लिए दूरदर्शी और कर्मठ नेतृत्व चाहिए। यह नेतृत्व 'छूट गया पड़ाव' की सुनीता में है:

"सरोज के लिए दशहरे में यहाँ आयोजित रामलीला, गाँव व आसपास के लोगों से मिलने और विचार बाँटने का बेहतरीन मंच था। उसने इसका भरपूर उपयोग किया।

रामलीला मंचन के बीच-बीच में स्वांग व छोटे-छोटे नाटक आदि कार्यक्रम गाँव के बच्चों को लेकर ही तैयार किये गये थे। इनके जरिए गाँव वालों को पोलियो टीके, जच्चा-बच्चा को संतुलित अहार, कुटीर उद्योग, अल्पबचत, सहकारिता व चकबंदी की महिमा समझाई गयी, वहीं माता-पिता व वृद्धजनों की सेवा, जरुरतमंदों की मदद व स्वास्थ्य संबंधी बुनियादी मुद्दों के प्रति उन्हें जागरूक भी किया गया।"[28]

इतना ही नहीं, बापू के सपनों का भारत और बापू के सपनों के ग्राम की परिकल्पना डॉ. निशंक ने अपने उपन्यास 'छूट गया पड़ाव' में की है। उपन्यास का प्रारंभ ही ग्राम्य सौंदर्य, ग्राम की समृद्धि और आर्थिक सम्पन्नता के प्रदर्शन से होता है:

"बाँज-बुरांश के घने दिलकश जंगलों के बीच बसा बड़ा ही मनोरम गाँव है,बिनगढ़! करीब सौ परिवारों वाला सम्पन्न और धन-धान्य से परिपूर्ण। पहाड़ का शायद ऐसा पहला गाँव, जो पूरी तरह आत्मनिर्भर है। देवभूमि में साधनारत साधकों सा दुरूह जीवन जी रहे गाँव में अपवाद।

न यहाँ खाने-पीने की चिंता, न लकड़ी-चारे की। खेती-बाड़ी ही इतनी कि नौकरी-चाकरी की जरूरत ही नहीं। जमीन जैसे सोना उगलती हो। पथरीले पहाड़ में भी ऐसी उर्वर भूमि, यकीन ही नहीं होता! पूरे साल हरियाली। पैदावार इतनी कि लोग खा-पीकर अपनी अन्य जरूरतें अनाज बेचकर ही पूरी कर लेते। बाकी आने जाने वालों में जो बँटते रहता सो अलग। गेहूँ, चावल, दाल से हमेशा भण्डार भरे रहते। जैसा अनाज, वैसी ही फल-सब्जी। असूज कार्तिक में तो कद्दू, ककड़ी, लौकी, तोरई, बैंगन व अन्य साग भाजियों की भरमार। भुट्टे अलग। बच्चे तो खा-खाकर अघा जाते।

यही हाल फल-फूलों का। मालटा, संतरे, अखरोट, दाड़िम, अनार से पेड़ ऐसे लकदक कि बटोरना भी मुश्किल। सीजन में काफल, हिंसर, किनगोड़े, और न जाने क्या-क्या....। लगता जैसे कुदरत ने मेहरबान होकर बाकी सारे गाँव की कसर यहीं पूरी कर दी हो।

चारों ओर हरा-भरा जंगल, इसलिए लकड़ी-चारे की कोई कमी नहीं। हर घर में दो-चार भैंसें। एक दूध देना बंद कर दे, दूसरी खूँटे पर लाने में देर नहीं। ऊपर से गाय, बैल, बकरियाँ अलग। दूध, घी, छांछ इतना कि घर आए मेहमान भी तर हो जाते। इलाके भर में एक कहावत ही हो गई कि दूध-दही-घी से तो बिनगढ़ वाले बिल्कुल नहला देते हैं।"[29]

यह है डॉ. निशंक की लोक चेतना, जो गाँधीजी के ग्राम स्वराज्य का उत्कृष्ट औपन्यासिक संस्करण है। इसे गाँधीजी की परिकल्पना का साकार रूप भी कहा जा सकता है। 'छूट गया पड़ाव' उपन्यास डॉ. निशंक की आदर्श लोक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है।

डॉ. निशंक जिस पर्वतीय प्रदेश उत्तराखण्ड की गौरव-गाथा का गान करते हैं, वह वस्तुतः अत्यन्त दुर्गम प्रदेश है, जो प्रायः हिमाच्छादित रहता है। यहाँ के निवासियों की आर्थिक दशा तो चिंतनीय रहती है। परन्तु जीविकोपार्जन के लिए पर्यटन-उद्योग से जो और जितना प्राप्त हो जाता है, उतने में ही संतुष्ट रहते हैं:

"गाँव के अधिकांश लोगों का रोजगार भी इस धार्मिक पर्यटन पर आधारित है। गाँव से लेकर केदारनाथ तक के जितने प्रमुख पड़ाव थे, उन पर अधिकांश लोगों का छोटा-बड़ा कारोबार था। कहीं कोई फूल मालाएँ बेंचता, कोई प्रसाद की थैलियाँ तो कोई रिंगाल से बनी हुई छोटी-छोटी टोकरियाँ। इसी छह-सात माह के यात्राकाल में वे वर्ष भर की आजीविका कमा लेते हैं। इस वर्ष तो बहुत यात्री आय थे। यात्राकाल का चरम समय था यह। इसी कारण गाँव के अधिकांश पुरुष इन्हीं पड़ावों पर थे।"[30]

परन्तु उपन्यासकार सिक्के का केवल एक पक्ष दिखाकर प्रसन्न नहीं है। पहाड़ी गावों की वास्तविक स्थिति क्या है, यह भी उपन्यासकार ने निष्पक्ष दृष्टि से परिलक्षित किया है। लेखकीय आदर्श यही है कि स्थिति को ईमानदारी से चित्रित करे। डॉ. निशंक ने निम्नलिखित उद्धरण में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का दूसरा पक्ष अर्थात नकारात्मक पक्ष भी दर्शाकर अपनी लेखकीय ईमानदारी का परिचय 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में दिया है:-

"पहाड़ की अर्थव्यवस्था को मनिऑर्डर अर्थव्यवस्था कहा जाता है। यहाँ हर परिवार से एक आदमी फौज में है, जिससे मिलिट्री केन्टीन में सस्ती मिलने वाली रम गाँव के बुजुर्गों व अन्य लोगों को आसानी से उपलब्ध हो जाती है। कुछ तो पहाड़ी क्षेत्र की ठंडी आबोहवा और कुछ शराब की सहज उपलब्धता ने लोगों को इसका शौकीन ही नहीं, अमली बना दिया है। गाँववालों की इसी बुरी लत ने शराब माफिया के लिए उदारता से यहीं नहीं, पूरे पहाड़ में

द्वार खोल दिये हैं। x x x शराब व्यापारियों द्वारा बड़ी चतुराई से गाँव और कसबे के कुछ लोगों को लालच देकर शराब की आपूर्ति की जाती। नौकरी-चाकरी और व्यवसाय की अनुपलब्धता के कारण अपने ही बीच के कुछ नवयुवक भी तुरन्त पैसा कमाने के फेर में पड़कर नशे का कारोबार कर रहे थे।"[31]

आर्थिक विपन्नता का ऐसा ही एक दृश्य 'मेजर निराला' में प्रस्तुत किया गया है, जिससे गिरी हुई अर्थ व्यवस्था उद्घाटित होती है:

"मेजर की माँ के पास भी फीस के लिए पैसे नहीं होते थे। उस जमाने में फीस ज्यादा भी नहीं थी। मिडिल क्लास की फीस ज्यादा से ज्यादा दो रुपये। किन्तु तब दो रुपये भी बहुत ज्यादा होते थे। दिन भर काम करने की दिहाड़ी होती थी पैसा पैसे । दो रुपये का मतलब चार दिन की दिहाड़ी। x x x किन्तु उसकी माँ ने उसे अपनी विषमता का अहसास कभी नहीं होने दिया। खेती में कड़ी मेहनत करके सोयाबीन, उड़द, गहथ, कोदा, झंगोरा बेंचकर एक-एक पैसा जमा किया। भैंस पालकर दूध बेंचा। गाँव से रोज दो किलोमीटर पौड़ी बाजार जाना और होटल में दूध देकर वापस आना। उफ कितना संघर्ष किया है माँ ने। खुद भूखे पेट और फटी हुई मैली कुचैली धोती में दिन काट कर मिडिल पास कराया था उसको।"[32]

डॉ. निशंक ने पहाड़ी गाँवों के आर्थिक जीवन के दो दृश्य प्रस्तुत किये। परन्तु नकारात्मक अर्थात विपन्नता के दृश्य ही अधिक हैं इनके उपन्यासों में। सम्पन्न ग्रामीण जीवन का एक दृश्य प्रस्तुत कर उन्होंने यह दर्शाया है कि आदर्श ग्रामों की परिकल्पना उनकी चेतना में ऐसी है जहाँ आर्थिक स्वावलम्बन हो और हर गाँव खुशहाल हो।

(ङ) सांस्कृतिक चेतना:

संस्कृति से सम्बन्धित चेतना ही सांस्कृतिक चेतना है। संस्कृति का दायरा अत्यन्त विशाल है। व्यक्ति की सोच, विचार, खान-पान, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, संस्कार, धर्म, अध्यात्म, ज्योतिष, इतिहास, पर्व, त्यौहार, व्रत, मेले,उत्सव आदि सब कुछ संस्कृति में समाहित है। यहाँ

तक कि प्रातः काल उठने से लेकर सोने के समय तक के व्यक्ति की समस्त गतिविधियाँ संस्कृति के अंतर्गत आा जाती हैं। भारतीय संस्कृति विशाल और सुन्दर उपवन है, जिसमें भिन्न भिन्न प्रकार के रंगबिरंगे सुमन हैं। भारतीय संस्कृति की जड़ें अत्यन्त गहरी हैं। संसार की प्राचीन से प्राचीन संस्कृतियाँ लुप्त हो गयीं, परन्तु भारतीय संस्कृति अक्षुण्ण है। डॉ. अल्लामा मुहम्मद इकबाल कहते हैं :

"यूनान मिस्त्र रोमा सब मिट गये जहाँ से,
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।"[33]

भारतीय संस्कृति पर विदेशियों के आक्रमण पर आक्रमण हुए। तुर्की मुगलों और अंग्रेजों ने इसे समाप्त करने के हर सम्भव प्रयास किये, परन्तु भारतीय संस्कृति हिली भी नहीं।

भारतीय संस्कृति का मूलाधार लोक संस्कृति है। देश के सैकड़ों अंचलों की अपनी अपनी संस्कृतियाँ हैं। देवभूमि उत्तराखण्ड पहाड़ी क्षेत्र है। डॉ. निशंक ने उत्तराखण्ड के पर्वतीय अंचल में स्थित छोटे से ग्राम में जन्म लिया और यही क्षेत्र उनकी कर्मभूमि रही। यही कारण है कि इनकी औपन्यासिक कृतियों में उत्तराखण्ड की संस्कृति झलकती है। 'प्रतिज्ञा' उपन्यास के 'निवेदन' में वे लिखते हैं–

"मेरी सारी कहानियाँ, कविताएँ और उपन्यास इन्हीं सामाजिक मूल्यों और लोकजीवन की संवेदनाओं से उपजे हैं। या यूँ कहें– ये जीवंत दस्तावेज हैं मेरी अब तक की जीवन यात्रा के। हालाँकि अपनी रचनाओं में मैंने देवभूमि उत्तराखण्ड की समृद्धि संस्कृति व गौरवशाली गाथाओं समेत यहाँ की पौराणिक, धार्मिक, सामाजिक परिवेश व परम्पराओं से भी पाठकों को अवगत कराने की कोशिश की है।"[34]

उत्तराखण्ड उत्सव प्रेमी प्रान्त है। लोक देवताओं के स्थानों पर मेलों का आयोजन सामान्यतः होता है। इस परम्परा का निर्वाह लोक में पीढ़ी-दर-पीढ़ी होता रहता है। ऐसे ही एक मेले का दृश्य 'मेजर निराला' उपन्यास में दिखायी पड़ता है –

"बहरहाल,सचाई जो भी हो, लेकिन यह परम्परा सदियों से चलती आ रही है। लोग प्रत्येक वर्ष अपने परिवार, गाँव और गांवसियों की सुख समृद्धि के लिए देव पूजा का आयोजन करते हैं। इस पूजा में दूर-दराज के गाँवों से भी लोग शामिल होते हैं। साथ ही गाँव के प्रवासी भी जरूर इस अवसर पर गाँव आते हैं।

देवताओं के नाचने का क्रम कम-से कम एक घंटे तक जारी रहा। इसके बाद देवता शान्त हो गये तो गाँव के नवयुवक और वृद्ध गोल घेर बनाकर नाचने लगे....। एक घंटे तक नृत्य के पश्चात मंडाण का समापन हो गया।"[35]

इसी प्रकार के एक और लोक मेले का वर्णन इसी उपन्यास से दृष्टव्य है:

"मेले और कौथिग पहाड़ की पुरानी परम्परा हैं। आज भी पहाड़ में स्थान-स्थान पर वर्ष भर में अनेक 'थौल-मेलों' का आयोजन किया जाता है। किन्तु तब से अब तक, 'कौथिग' के नाम से प्रचलित इन मेलों के स्वरूप में बहुत बड़ा अन्तर आ गया है। रोजमर्रा की वस्तुओं के लिए बाजार भी बहुत दूर होते थे। इसीलिए वर्ष भर की आवश्यकता की वस्तुएँ लोग एक बार ही खरीद कर रख लिया करते थे। किन्तु महिलाओं की साज-श्रृंगार की वस्तुएँ और बच्चों के खेल-खिलौने तो सिर्फ इन 'खौल मेलों' में ही मिला करते थे।

दूसरी तरफ नवयुवक अपनी होने वाली पत्नी की झलक इन कौथिगों में ही देख पाते। बात करने की हिम्मत हो पाई तो बात करते और 'समौण' के रूप में उन्हें कुछ खरीद कर देते। यह समौण अँगूठी, रुमाल या माला कुछ भी होता। बच्चे अपने दोस्तों के साथ खूब मस्ती लेते। हाथी, बिल्ली, कुत्ता आदि रबर या मिट्टी के बने खिलौने, बाजे और बांसुरी आदि खरीदते। झूला झूलते और गरमागरम जलेबी खाते।

बुजुर्ग मेले में अपने दूर-दराज के नातेदार रिश्तेदार और सम्बन्धियों से मिलते। गाय, भैंस, बैल के खरीदने बेंचने की 'शौदा' लगाते, एक दूसरे के गाँव आने जाने का दिन-बार तय करते।"[36]

मेले भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। डॉ. निशंक ने उपर्युक्त उद्धरित प्रसंग में यह स्पष्ट किया है कि बच्चे, युवा-युवतियाँ, स्त्रियाँ तथा बुजुर्ग- सभी वर्ग के लोग मेलों से अपनी-अपनी पसन्द और आवश्यकतानुसार किस प्रकार लाभ उठा सकते हैं।

भारतीय संस्कृति में मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कारों का विधान है। शिष्ट समाज की अपेक्षा लोक इन्हें अधिक मान्यता प्रदान करता है। ये सोलह संस्कार हैं– गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, विद्यारंभ, कर्णच्छेदन, यज्ञोपवीत, वेदारंभ, केशांत, समावर्तन, विवाह तथा अन्त्येष्टि। इन संस्कारों में पुंसवन संस्कार गर्भ धारण के तीसरे माह तथा सीमन्तोन्नयन संस्कार गर्भ धारण के छठे या आठवें माह में किया जाता है। सीमन्तोन्नयन संस्कार में वधू पक्ष की ओर से होने वाले शिशु को तथा वर पक्ष के लोगों को वस्त्रादि लाये जाते हैं। जातकर्म संस्कार में शिशु का पिता उसे घी अथवा शहद अपनी उंगली से शिशु के मुख में डालता है। छठे संस्कार– निष्क्रमण में– शिशु को चार अथवा छह माह का होने पर पहली बार उसे बाहर निकालकर सूर्य-चंद्र के प्रभाव में लाया जाता है। जातकर्म संस्कार बच्चे के जन्म के तत्काल बाद मनाया जाता है। पटाखे चलाकर, बाजे बजाकर, गरीबों में भोजन- वस्त्रादि बँटवाकर इसे मनाया जाता है।

समावर्तन संस्कार का बारहवाँ क्रम है। प्राचीन समय में गुरुकुल से शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात जब छात्र वापस आता था तब यह संस्कार किया जाता था। आज इस संस्कार की प्रासंगिकता समाप्त हो चुकी है।

शिशु के सिर पर आये हुए बालों का जब प्रथम बार मुंडन कराया जाता है, वह चूड़ाक्रम संस्कार होता है। केशांत संस्कार सोलह वर्ष की उम्र के पूर्व नहीं किया जाता था। गुरुकुल की शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त आश्रम में ही प्रथम बार आयी हुई दाढ़ी-मूंछ को कटवाया जाता था। यह केशांत संस्कार है । आज यह संस्कार भी अपनी प्रासंगिकता खो चुका है।

डॉ. निशंक ने अपने उपन्यासों में उपर्युक्त संस्कारों में से अनेक संस्कारों का वर्णन लोकरीति के अनुसार किया है। कतिपय उदाहरण दृष्टव्य है:

विवाह: मनुष्य के जीवन का यह महत्वपूर्ण संस्कार है। इसी संस्कार के पश्चात व्यक्ति गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है और वंश वृद्धि कर समाज को आगे बढ़ाता है। लोक में जन्म से लेकर मरण तक पंडित का विशेष महत्व है। नामकरण, विवाहादि संस्कारों में जन्म पत्री बनाना, मिलाना, शुभ मुहूर्त निकालना आदि कार्य पंडित ही करता है:

"जोशी जी स्वयं पंडित थे तो उसी दिन दोनों की जन्मपत्री और पंचाग देखकर विवाह के लिए आगामी नवरात्रों का दिन भी निश्चित हो गया।"[37]

विवाह भी लोक में अपनी ही जात-बिरादरी में करता है। अन्य जाति में विवाह करना अच्छा नहीं माना जाता:

"लेकिन बेटी, हम ठहरे ठाकुर लोग और वे हैं ब्राह्मण। पहले तो दीपक की माँ ही इस रिश्ते को स्वीकार नहीं करेगी। वह तो तेरे हाथ का बना भात तक नहीं खाएगी। माना कि वह तैयार हो भी जाय वो भी समाज कहाँ इस रिश्ते को स्वीकार कर पाएगा? तेरे मामाजी भी तो समाज से बाहर कभी नहीं जाएँगे।"[38]

लोक में विवाह के समय दान-दहेज की प्रथा है। यह प्रथा आज सभ्य समाज में भी बंद नहीं हुई है:

"पर्वतीय अंचल में विवाह समारोह चलता तो तीन-चार दिन तक है, किन्तु बहुत दिखावा कहीं नहीं होता है। दान-दहेज के रूप में वर-वधू के कपड़े, पारम्परिक गहने और कुछ बर्तन भांडे दिये जाते हैं। अगर बहु के घर से शादी में बड़े बर्तन, जैसे- देग, चाशनी, परात आदि मिलें जो कि घर-गाँवों में शुभ समारोहों में काम आ सकें तो यह बहुत बड़ी बात समझी जाती है।"[39]

वैवाहिक कार्यक्रम में भी अनेक कार्य सम्पन्न होते हैं। इन्हें उप संस्कार भी कहा जा सकता है। मेहंदी लगाना, हल्दी लगाना आदि इन उप संस्कारों में प्रमुख हैं। डॉ. निशंक ने इसे चित्रण किये हैं, किन्तु कम ही है:

"रेणु नहाने गयी तो बची खुची हल्दी को लेकर सब आपस में होली खेलने लगे। भाभियाँ और देवर, जीजा और सालियाँ सब एक-दूसरे को रंगने का अवसर तलाश रहे थे।"[40]

विवाह में गाली गाना, जूते चुराना जैसे अनेक लोकाचार होते हैं, इनका वर्णन भी डॉ. निशंक करते हैं:

"सारा दिन बारातियों के स्वागत की तैयारियों में बीत गया। कहीं सूजी भूने जाने की खुशबू तो कहीं चटपटी सोंठ बनने की तैयारियाँ, गाँव और आसपास के ही निपुण रसोइए इस कम को कर रहे थे।

ढोल, मशकबीन की मंगल ध्वनि के बीच रात को बारात पहुँची तो सारा गाँव वहीं इकट्ठा हो गया।

बारात के शामियाने में बैठने के बाद गाँव की वृदधाओं ने सुर में सुर मिलाते हुए दूल्हे के रिश्तेदारों को गाली देना आरम्भ किया। x x x बेटा यह इस पहाड़ की परम्परा है, मजाक है सब, तुम बुरा मत मानो।

सुबह चार बजे फेरों का मुहूर्त था। गाँव भर के युवक-युवतियाँ बारातियों के साथ चुहलबाजी से नहीं चूक रहे थे। इस बीच युवतियों की एक टोली ने दूल्हे के जूते छिपा दिये और दोनों पक्षों में उसे लेकर सौदेबाजी आरंभ हो गई।

इन्हीं सब परम्पराओं का निर्वाह करते-करते दोपहर के भोजन के पश्चात ही बारात बिदा हुई।"[41]

अन्य संस्कार: लोक में जन्म और इसके पश्चात के होने वाले संस्कारों का चित्रण कम ही हुआ है। लोक में भूत-प्रेतों का विश्वास भी पर्याप्त प्रचलित हैं। शुभ-अशुभ का विचार, अभिवादन, आशीर्वाद जैसे संस्कारों का भी पर्याप्त प्रचलन है।

डॉ. निशंक की दृष्टि इन पर भी रहा है:

अभिवादन एवं आशीर्वाद: प्रत्येक सभ्य समाज में अभिवादन करने का संस्कार प्रचलन में है। उत्तर भारत में प्रायः राम राम कहकर अभिवादन किया जाता है और बड़ों के पैर छूकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया जाता है:

> "मेजर नजदीक पहुँचा और पाँव छूते हुए बोला – 'पायं लागूं दादी जी।'
>
> 'चिरंजीव बेटे।'
>
> 'जुग जुग जियो मेरे लाल जुग जुग जिओ।' – बूढ़ी रुकमा ने आशीर्वाद दिया।"[42]
>
> "जै राम जी की कृपालसिंह जी!"– गुमान सिंह ने हाथ जोड़ते हुए कहा।
>
> "जै राम जी की ! आइए बैठिए।"[43]
>
> "माँ के पैर छूकर उसने आशीर्वाद लिया। माँ ने तीन बार उसका ठुड्डी को छूकर अपने हाथों को चूमा। पर्वतीय क्षेत्र में प्यार जताने या चुम्बन लेने का यही तरीका है।"[44]

भूत-प्रेतादी की मान्यता: "माँ को लगा, इस भरी दोपहरी में जंगल के रास्ते आया है। भूत पिचाश या आंछरी न लग गयीं हों इसे। तुरन्त अन्दर गयी और मुट्ठी में उड़द की दाल और चावल मिलाकर ले आई। यही रिवाज है गाँव में बुरी नजर और बुरी आत्माओं से रक्षा करने का। दाल-चावल व्यक्ति के ऊपर घुमाकर चारों दिशाओं में फेंक दिया जाता है।"[45]

शुभाशुभ विचार: "मन ही मन अपनी इष्ट देवी का स्मरण करते हुए सुरेश घर पहुँचा।"[46]

> "घर जाकर रिश्ता पक्का कर आएँगे और लगे हाथ विवाह के लिए शुभ मुहूर्त भी निकाल आएँगे।"[47]
>
> "शुभ काम में देरी क्यों? रविवार ही क्यों? कल बृहस्पतिवार है, सबसे बढ़िया दिन।"[48]

अंतिम संस्कार: "पहाड़ के अधिकांश गाँवों में अंतिम संस्कार अभी तक भी नदियों अथवा गाड गदेरों के किनारे किये जाते हैं। हमारे गाँव का मुर्दाघाट भी खांकरा के नजदीक अलकनन्दा नदी के किनारे है। गाँव से लोग अर्थी उठाकर पगडंडी से पैदल चलते हुए खांकरा पहुँचते हैं....।"[49]

"उस दिन घर में चूल्हा नहीं जला। परम्परा के अनुसार उस दिन चूल्हा जलता भी नहीं।"[50]

पुत्र जन्म: "दो तीन दिन बाद लक्ष्मी के माता-पिता को पुत्र जन्म की खबर मिली तो दौड़ चले आये। बड़े यत्न से पंडिताइन ने दो किलो घी इकट्ठा कर रखा था। पहुँचते ही समधन के हाथ में घी से भरी परोठी पकड़ाई।"[51]

आस्था: "चारधाम यात्रा उन दिनों चरम पर थी। देश के अनेक राज्यों से श्रद्धालुगण गंगोत्री, यमुनोत्री सहित बदरीनाथ और केदारनाथ की यात्रा पर आये हुए थे। केवल देश भर से ही नहीं,वरन् विदेशों से भी बड़ी संख्या में लोग हर साल की तरह इस बार भी इन चार धामों के दर्शनों को पहुँचे थे।"[52]

डॉ. निशंक का लेखन उन्हें अन्य लेखकों से पृथक और विशिष्ट बनाता है। इनकी औपन्यासिक कृतियों में लोक का स्पंदन है। इनकी ये कृतियाँ लोक की विशिष्टता लिये हुए हैं। इनका 'लोक' महानगरीय अथवा नगरीय ड्राइंग रूम की टेबल पर सजाकर रखा गया प्लास्टिक के फूलों का गुलदस्ता नहीं है। इनका लोक मालू, ग्वीराल और सकीना के प्राकृतिक फूलों की सुगंध से सुवासित लोक है। इस लोक में दूर-दूर तक फैले छोटे-छोटे सीढ़ीनुमा खेत हैं, बैलों की टुन-टुन बजती घंटियाँ हैं, हलवाहकों की 'ले ले' 'छो-छो' की गूँजे हैं और मानवीय संवेदनाओं से संपृक्त संबंध हैं। डॉ. निशंक की औपन्यासिक चेतना इसी लोक में विचरण करती है।

डॉ. निशंक की औपन्यासिक कृतियों के चित्रों का एक ही मूल रंग है– जन कल्याण की भावना। ये चित्र लोक की विशाल भित्ति पर उत्कीर्ण किये गये हैं। डॉ. निशंक की लोक चेतना

के विविध आयाम हैं: सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक। डॉ. निशंक की लेखकीय लोक चेतना का विस्तृत आयाम है जो ग्राम की खपरैलों से लेकर नगरों के कंक्रीट तक विस्तारित है। परन्तु उनका मन लोक के वास्तविक स्वरूप के निरूपण में अधिक रमा है। इस वास्तविक स्वरूप में ग्राम्य जीवन के लोकाचार, परस्पर सम्बन्ध, राग-द्वेष, विश्वास, धर्म, आस्था, रोजगार, गाँवों की राजनीतिक चेतना आदि समाहित हैं। डॉ. निशंक द्वारा जिस पर्वतीय जीवन की अभिव्यक्ति अपने उपन्यासों में की गयी है, वह केवल उत्तराखण्ड नहीं अपितु समूचे भारत की लोक चेतना की अनुभूतिपरक अभिव्यक्ति है।

संदर्भ:

1. भूल पाता नहीं: मेरे गीत, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पुरोवाक, पृ. 10
2. हिमालय के आँचल में प्रकृति का स्पर्श, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पुरोवाक पृ.17
3. भागोंवाली, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 17
4. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 25
5. ज़िंदगी रुकती नहीं, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 34
6. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 74
7. बीरा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 5
8. प्रतिज्ञा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 52
9. बीरा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 104
10. वही, पृ. 106
11. छूट गया पड़ाव, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 18
12. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 25
13. पहाड़ से ऊँचा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 55
14. छूट गया पड़ाव, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 25
15. प्रतिज्ञा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 91
16. वही, निवेदन
17. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 62
18. वही, पृ. 94
19. वही, पृ. 95
20. निशंक के साहित्य में लोकत्व, डॉ. कपिल देव पांवर, पृ.117
21. अपना पराया, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 29
22. वही, पृ. 61

23. पहाड़ से ऊँचा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 49
24. वही, पृ. 24
25. अर्थ शास्त्र, चाणक्य, पृ. 62
26. गोदान, प्रेमचन्द, पृ. 40
27. भागोंवाली, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 24
28. छूट गया पड़ाव, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 40
29. वही, पृ. 21
30. ज़िन्दगी रुकती नहीं, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 21
31. प्रतिज्ञा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 21
32. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 59
33. तराना-ए- हिंदी, डॉ. अल्लामा इकबाल, पृ. 76
34. प्रतिज्ञा, डॉ. रमेश रमेश पोखरियाल 'निशंक', निवेदन
35. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 96
36. वही, पृ. 85
37. अपना पराया, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 29
38. बीरा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 65
39. वही, पृ. 79
40. अपना पराया, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 101
41. वही, पृ. 102
42. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 27
43. बीरा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', 77
44. वही, पृ. 83
45. बीरा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 85

46. अपना पराया, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 18
47. वही, पृ. 19
48. भागोंवाली, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 63
49. बीरा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 42
50. भागोंवाली, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 11
51. अपना पराया, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 55
52. ज़िन्दगी रुकती नहीं, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 21

चतुर्थ अध्याय

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक: परिवर्तित स्वरूप

परिवर्तन प्राकृतिक है, सत्य है और सनातन है। अपरिवर्तित है तो एक मात्र ईश्वर, जो अगम है, अगोचर है। यह परमात्म तत्व चिरंतन है और अपरिवर्तनशील है। यह तत्व व्यक्ति में जीवात्मा के रूप में विद्यमान है तथा यह अविनाशी है। 'श्रीमद्भागवात् गीता' में श्रीकृष्ण कहते हैं कि– इस विश्व में सर्वोच्च से लेकर निम्न तक आवागमन लगा हुआ है। पदार्थ और जड़ प्रकृति तो परिवर्तनशील है, परन्तु जो शुद्ध चेतना है, वह अपरिवर्तित है :

"आब्रह्माभुवनाल्लोका: पुनरावर्तिनोऽर्जुन।

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥"[1]

शुद्ध चेतना के अपरिवर्तित रहने का आधार है। अतः परिवर्तन सृष्टि का कोई परम सत्य न होकर इसकी प्रकृति का ही एक गुणमात्र है।

इसी प्रकार 'श्रीमद्भागवत गीता' में ही श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि– यह भौतिक प्रकृति मेरी शक्तियों में से एक है और मेरी अध्यक्षता में कार्य करती है, जिससे सारे चर-अचर प्राणी उत्पन्न होते हैं। इसके शासन में यह संसार बार-बार उत्पन्न होता है और बार-बार नष्ट होता है:

"मयाध्यक्षेण प्रकृति: सूयते सचराचरम्।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥"[2]

आदिगुरु शंकराचार्य अपने एक भजन में कहते हैं कि– दिन के पश्चात रात आती है, रात के बाद फिर दिन, फिर संध्याकाल आता है। ऋतुएँ बदलती हैं। शिशिर के पश्चात बसंत ऋतु आती है। काल क्रीड़ा करता है परन्तु यह आशा रूपी वायु का बंधन शिथिल नहीं होता:

"दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरबसंतौपुनरायात:।

काल: क्रीड़ति गच्छत्यायु: तदपि न मुंचत्याशावायु:॥"[3]

हिंदी के छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत अपनी एक कविता में प्रकृति के परिवर्तन को रेखांकित करते हुए लिखते है:

"पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश।
पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश॥"[4]

यह प्रकृति का परिवर्तन है। इसी परिवर्तन का विस्तार पंत की लम्बी कविता 'परिवर्तन' में परिलक्षित होता है। इस कविता में कवि परिवर्तन को जीवन का शाश्वत सत्य मानता है। कविता में परिवर्तन के दोनों रूपों– कोमल और कठोर का मार्मिक प्रयोग हुआ है। इस कविता का एक अंश अवलोकनीय है:

"आज कहाँ वह पूर्ण-पुरातन वह सुवर्ण का काल?
विभूतियों का दिगंत-छवि-जाल
ज्योति-चुंबित जगली का भाल?
राशि-राशि विकसित वसुधा का वह यौवन विस्तार

स्वर्ग की सुषमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार !
प्रसुनों के शाश्वत श्रृंगार,
स्वर्ण मृगों के गंध-विहार
गूँज उठते थे
बारम्बार
सृष्टि के प्रथमोद्गार, नग्न सुंदरता थी सुकुमार
ऋद्धि औ सिद्धि अपार!

अये, विश्व का स्वर्ण स्वप्न, संसृति का
प्रथम-प्रभात

कहाँ वह सत्य, वेद विख्यात?
दुरित, दु:ख दैन्य न थे जब ज्ञात,
अपरिचित जरा-मरण भ्रू पात।
हाय! अब मिथ्या-बात!"[5]

उत्तराखण्ड का कोमल कान्त पदावली का सुकुमार कवि पल-पल परिवर्तन की जो बात कविता में कर रहे हैं, वही बात उत्तराखण्ड का ही प्रतिभाशाली तथा भाव प्रवण उपन्यासकार डॉ. 'निशंक' अपने उपन्यासों के माध्यम से कर रहे हैं। डॉ. निशंक के उपन्यास कुछ और नहीं, लोक के पल-पल परिवर्तित वेश की गाथा हैं। बत्तीस साल की नौकरी के बाद वापस लौटे कैप्टन को सब कुछ बदला-सा लगता है :

"सेना में 32 साल की नौकरी के बाद ऑनरेरी केप्टन शंकरदत्त बड़े उत्साह से गाँव आकर बस गये थे। सबसे पहले रेटायर हुए सूबेदार गोपाल दत्त, मोहनसिंह विष्ट के साथ ही न जाने कितने और साथी देहरादून, रूड़की और कोटद्वार में बस चुके थे। संगी साथी जब शहर में बसने की बात करते,तो शंकरदत्त का मन व्यथित हो जाता। फौज की व्यस्त नौकरी में यदा-कदा पहाड़ से हो रहे पलायन की बात सुनकर उसका मन खराब होने लगता था। इसी के चलते उन्होंने रेटायरमेंट के बाद गाँव में ही बसने की ठानी थी। रेटायरमेंट से दो महीने पहले जब उन्हें लैंसडौन भेजा गया तो उन्हें बचपन से यौवन तक बिताये गये वर्षों की एक-एक बात याद आने लगी।"[6]

ऐसा ही परिवर्तन का आभास सेना के एक और अधिकारी मेजर निराला को होता है जो पन्द्रह वर्ष [कैप्टन शंकर दत्त की समयावधि से लगभग आधी] की सजा काटकर जेल से बाहर आता है :

"पन्द्रह वर्ष!

जी हाँ, पूरे पन्द्रह वर्ष जेल की सलाखों के पीछे काट दिये थे मेजर निराला ने कम नहीं होते जीवन के पन्द्रह बसन्त ! एक-एक दिन मानों एक-एक युग के बराबर !"[7]

परिवर्तन प्रत्यक्ष सत्य है। जीव में, प्रकृति में, कार्य व्यापार में– हर क्षेत्र में परिवर्तन अनिवार्यत: होता है। डॉ. निशंक ने इस परिवर्तन को परखा है और अपने उपन्यासों में उसकी अभिव्यक्ति की है। समाज, धर्म, राजनीति, संस्कृति एवं आर्थिक क्षेत्र में जिस रूप में और जिस मात्रा में परिवर्तन हुआ है, उसे विभिन्न दृष्टि से रेखांकित किया है।

(क) सामाजिक परिवर्तन:

जो समाज कल था, आज नहीं है। जो आज है, उसका स्वरूप कल नहीं रहेगा। परिवार में जो पारम्परिक सम्बोधन थे, वे तिरोहित हो गये । परिवार का जो लिहाज था, सम्मान था, वह लुप्त हो गया। स्थान परिवर्तित हो जाते हैं, उनका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है:

"तीन धारा में बस रुकी। छोटी-सी जगह है। कभी यहाँ पर पहाड़ी से निकलते शीतल जल के तीन धारे हुआ करते थे। उन्हीं धारों के अगल बगल ककड़ी, खीरा, मकई और जलजीरा की अस्थायी दुकानें लगाकर स्थानीय गाँव के कुछ लोग अपना व्यवसाय करते थे। समय बदला। वनों के अत्यधिक दोहन, पर्यावरण असंतुलन और खनन आदि अन्य कारणों से जल के स्रोत नीचे बैठ गये हैं। अब यहाँ पर तीन धारे तो नहीं हैं, अलबत्ता कई जगह पहाड़ी से पानी की बारीक धार और कई जगह से पानी टपकता हुआ प्रतीत होता है। खीरा, मकई और जलजीरे का व्यवसाय छोड़कर अब लोगों ने यहाँ पर बड़े-बड़े होटल बना लिए हैं । यहाँ पर अब यात्री खाना खाते हैं।"[8]

उपर्युक्त उद्धरण में स्थानों के परिवर्तन का ही संकेत नहीं है। पर्यावरण के परिवर्तित स्वरूप पर भी चिंता व्यक्त की गयी है। यदि प्राकृतिक संसाधन विनष्ट हुए हैं, जल स्रोत नीचे बैठ गये हैं तो इसका प्रमुख कारण उपन्यासकार वनों का दोहन, पर्यावरण असंतुलन और खनन को मानता है।

पर्यावरण को समाज और सामाजिक चेतना से किसी भी मूल्य पर विलग नहीं किया जा सकता। प्रकृति ही है, जिसके द्वारा मानव का अस्तित्व है, मानव के जीवन का अस्तित्व है। मनुष्य ने अपनी आँखें प्रकृति की गोद में ही खोली। प्रकृति ने ही प्रथम मानव– शिशु का पालन-पोषण किया, उसे सक्षम बनाया और सृष्टि के प्राणियों में सर्वोत्कृष्ट आकार-प्रकार प्रदान किया। परन्तु मनुष्य इतना कृतघ्न निकला कि जिस प्रकृति-माँ से उसने जीवन-रस प्राप्त किया, उसके अस्तित्व को समाप्त करने के लिए ही कटिबद्ध हो गया। यद्यपि प्रकृति अत्यन्त दयालु है। किन्तु मनुष्य को उसकी लालची प्रवृत्ति का दण्ड देकर उसे सचेत करती रहती है। उत्तराखण्ड में बार-बार आ रही विभीषिका इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। वर्ष 2013 में केदारनाथ घाटी में हुए संहार और प्राकृतिक प्रकोप का हृदय विदारक दृश्य कुछ इस प्रकार है:–

"बाहर उसने जो नजारा देखा, वह अकल्पनीय था। फिल्मों में भी अगर विध्वंस के ऐसे दृश्य दिखते, तो वह अतिश्योक्ति भरे लगते, लेकिन आज उससे भी भयावह दृश्य हकीकत में सामने था। शान्त जीवन-दायिनी मंदाकिनी फुंकार मारती कई फुट ऊपर बह रही थी। उसके साथ बह रहा था ढेर सारा मलबा, बड़े-बड़े पेड़ और पत्थर। उसके रास्ते में खेतों, जानवरों मकानों आदि सभी को बहा ले जा रहा था उसका प्रचंड वेग।

चारों ओर प्रलय-सा मंजर था। कहीं नदी कहर बरपा रही थी, तो कहीं पहाड़ दरक रहे थे। कुछ घर पूरे तहस-नहस हो गये थे तो कुछ आधे जमीन पर और आधे हवा में लटके हुए थे।"[9]

यह 2013 में केदारनाथ घाटी में आये हुए प्राकृतिक प्रकोप का भयंकर दृश्य है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार इस आपदा में कुल 6054 लोगों की मृत्यु हुई थी। इनमें 934 स्थानीय निवासी थे। इस आपदा में हजारों लोग लुप्त हुए थे और हजारों बेघर हुए थे। रामबाड़ा जैसे अनेक कस्बों का तो पूरी तरह अस्तित्व ही समाप्त हो गया था।

उत्तराखण्ड में यह आपदा प्रथम बार नहीं आयी थी। ज्ञात इतिहास के अनुसार सितम्बर, 1880 में आयी आपदा में 151, अक्टूबर, 1991 में आये भूकम्प में 768 तथा अगस्त 1998 में पिथौरागढ़ में हुई तबाही में 225 लोग मारे गये थे। वर्ष 1999 में चमौली में आये भूकंप में 100 लोगों की मृत्यु हुई। इनके अतिरिक्त वर्ष 1977, 1983, 1996, 2002, 2007, 2009, 2016, 2017, 2019 तथा 2020 में भी उत्तराखण्ड के विभिन्न अंचलों में न्यूनाधिक तबाही हुई। वर्षों से प्रकृति के मूल स्वरूप को स्वार्थ और लालच के वशीभूत होकर अधिक से अधिक विकृत करते रहने का ही यह परिणाम है। डॉ. निशंक लिखते हैं :

"आपदा आने के कारणों पर बहस जारी थी। अधिकांश वैज्ञानिक इसका कारण प्रकृति से अत्यधिक छेड़छाड़ और अनियोजित विकास को बता रहे थे।"[10]

यह अत्यधिक छेड़छाड़ और अनियोजित विकास ही प्रमुख कारण हैं जिससे उत्तराखण्ड में बार-बार प्राकृतिक आपदाएँ आती हैं।

इन आपदाओं के अतिरिक्त एक और सबसे बड़ी समस्या है – वह है पर्यावरण प्रदूषण की। आज ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण की समस्या सर्वाधिक है। गंगा-यमुना हमारे देश की अत्यन्त पावन और पूज्य नदियाँ हैं। ये भी प्रदूषण से मुक्त नहीं हैं। उपन्यासकार इस ओर से आँखें बन्द नहीं किये है। उसे इस प्रदूषित हो रही गंगा-यमुना की चिंता है। डॉ. निशंक लिखते हैं:

"अगाध श्रद्धा है भारतीयों में गंगा के प्रति। 'माँ' कहा जाता है गंगा को। माँ इसलिए कि वह पवित्र है शुरू से अन्त तक माँ की तरह। गंगा में डुबकी लगाने पर लोग स्वयं भी पवित्र हो जाते हैं। न जाने कितनी सदियों से निरन्तर बहती आ रही है गंगा, किन्तु अब धीरे-धीरे शहरों के किनारे लोगों ने कूड़ा-करकट सीवर, नाले और कम्पनी फैक्ट्रियों का प्रदूषित जल गंगा में डालना शुरू कर दिया है। सरकार अब सतर्क हो गयी है। गंगा को प्रदूषण मुक्त करने हेतु अब अभियान के साथ कई-कई योजनाएँ शुरू हो चुकी हैं।"[11]

वस्तुतः भारतीय मुखौटे लगाने में अभ्यस्त हो चुके हैं। गंगा सहित देश की तमाम नदियों को माँ कहते हैं, इनकी पूजा करते हैं, आरती उतारते हैं, फिर उन्हीं को प्रदूषित करते हैं। यह कृत्य सर्वथा अभाज्य है। पहले तो ऐसा नहीं था। इन नदियों की गंदगी और प्रदूषण से रक्षा करना– यह भी सामाजिक दायित्व है।

सामाजिक दायित्व तो यह भी है कि समाज के प्रत्येक जन को सुरक्षा, स्वास्थ्य और शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराना। एक समय था, जब कोई डॉक्टर गावों में सेवा करने के उद्देश्य से नहीं जाता था। उनका उद्देश्य शहरों में रहकर सुख-सुविधाओं का उपयोग करते हुए अधिकाधिक पैसा कमाना था। अधिकांश डॉक्टर्स की आज भी यही स्थिति है। परन्तु अब स्थिति परिवर्तित हो रही है। डॉ. निशंक के सपनों का डाक्टर, गाँव में रहकर दीन दुखी और असहायों की सेवा को ही अपना मानवीय धर्म मानता है:

"उसका ध्येय था– गाँव और गरीबों के मध्य रहकर असहायों, बेसहरों की सेवा करना। उसका दृढ़ विश्वास था कि मानवता की सेवा ही सच्ची सेवा है।

गाँव में ही क्लीनिक खोलकर गरीबों की सेवा में पूरी तरह रम गया था मोहन। मोहन के हाथ में कुछ ऐसा जादू था कि उसके पास मरीजों, बीमारों की भीड़ उमड़ने लगी थी। लोग दूर-दूर से आते। कुछ ही दिनों में इस नवडाक्टर दम्पति की कीर्ति पताका चारों दिशाओं में फहरा चुकी थी। जो भी मरीज आते संतुष्ट होकर जाते-जाते आशीष देकर जाते।"[12]

उपन्यासकार डॉ. निशंक परिवर्तन के पक्षधर हैं। परिवर्तन यदि पुरुष के जीवन में है तो स्त्री के जीवन में भी होनी चाहिए। यही कारण है कि डॉ. निशंक के सभी औपन्यासिक नारी पात्रों के भीतर परिवर्तन की एक तड़प है। यह तड़प पल्लवी (पल्लवी), बीरा (बीरा), सरोज (छूट गया पड़ाव), लक्ष्मी (जिन्दगी रुकती नहीं), लक्ष्मी (अपना पराया), अम्मा (भागोंवाली), मिताली (निशान्त), सुकन्या (कृतघ्न), सुनीता (प्रतिज्ञा) तथा सावित्री (मेजर निराला) इन सभी स्त्री पात्रों में परिलक्षित होती है। 'पल्लवी' उपन्यास में जहाँ बिन्दु पति की

मृत्यु के पश्चात अपने सास-ससुर की उपेक्षा करती है और वकील साहब से विवाह कर धोखा खाती है, वहीं पल्लवी दूसरा विवाह न कर अपना सारा जीवन गाँव की सेवा में समर्पित करती है। विवाह के लिए भाभी के प्रस्ताव को वह अस्वीकार कर देती है। दोनों का वार्तालाप कुछ इस प्रकार हैं –

"तू दूसरा विवाह क्यों नहीं कर लेती? तेरे भैया भी यही कह रहे थे।"

"नहीं भाभी, ये सम्भव नहीं हे।"– मानों करेंट सा लगा हो उसे। पहाड़ी समाज में विधवा को दूसरा विवाह अब भी आम बात नहीं थी। उसने स्वयं देखा था गाँव में, छोटी उम्र में विधवा हुई औरतों को, जो अपने संयम और अच्छे चरित्र से गाँव भर में नजीर बनी हैं आज भी। पिछले कुछ वर्षों से ही समाज में इधर कुछ बदलाव आया है और कुछ सहृदय सास-ससुर स्वयं ही बहू की छोटी उम्र को ध्यान में रख उसके पुनर्विवाह हेतु राजी होने लगे हैं।

लेकिन बिन्दु! उसकी तो बात ही और थी। अपने सास-ससुर से तो उसने कोई मतलब ही नहीं रखा था। पति की मृत्यु के बाद से ही उसने पतिगृह से नाता ही तोड़ लिया था।"[13]

'बीरा' उपन्यास की नायिका बीरा का चरित्र भी डॉ. निशंक ने अत्यन्त संघर्ष पूर्ण नारी के रूप में गढ़ा है। 'बीरा' वह बीरा नहीं है जहाँ लड़कियों को कहीं भी विवाह के लिए विवश कर दिया जाता है। बीरा और दीपक एक दूसरे को चाहते हैं, परन्तु बीरा का विवाह दहेज के लालची राजू से तय कर दिया जाता है। बीरा इस विवाह से स्पष्ट इंकार कर देती है और शेष जीवन समाज सेवा के लिए समर्पित कर देती है:

"पहाड़ के दुर्गम गाँवों में आज भी शहर से कोई नौकरी करने आना नहीं चाहता, इसलिए बीरा को नियुक्त मिलने में कोई कठिनाई नहीं हुई और तब से लेकर आज तक बीरा ने अशक्त, लाचार, बीमारजनों की सेवा में अपने आप को अर्पित कर दिया है। मानवता की सेवा कआ व्रत लिये इसी प्रकार के स्वास्थ्य केन्द्र अब उसके जीने का उद्देश्य बन चुके हैं।"[14]

यह सबसे बड़ा सामाजिक परिवर्तन है जिस ओर डॉ. निशंक संकेत कर रहे हैं। दहेज प्रथा हमारे समाज का कलंक रहा है और अभिशाप भी। न्यूनाधिक यह कलंक और अभिशाप अब भी चल रहा है। इस दहेज प्रथा ने हजारों-लाखों निरपराध युवतियों को असमय काल के गाल में पहुँचाया है। बीरा के चरित्र के द्वारा डॉ. निशंक ने युवतियों को एक नयी ऊर्जा प्रदान की है और यह ऊर्जा है – स्वलम्बन की, समाज सेवा की। बीरा दीपक से कहती है–

"दीपक, यह सच है कि तेरे और मेरे बीच में स्नेह बन्धन है। इस बात की जानकारी मेरे मामा-मामी को थी। किन्तु तब समाज के डर से उन्होंने इस रिश्ते के लिए मना कर दिया था। उसके बाद मेरी ज़िन्दगी में क्या हुआ, यह तुमसे बेहतर कौन जानता है ? तब से मुझे विवाह शब्द से भी घृणा हो गयी है।"[15]

सरोज– 'छूट गया पड़ाव' की नायिका है। अपने और अपने परिवार के लिए तो सब जीते हैं, सब उद्यम करते हैं। परन्तु मनुष्य वही है जो अपनों के साथ-साथ दूसरों के लिए भी जीये। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का यही संदेश है:

"विचार लो कि मर्त्य हो न मृत्यु से डरो कभी,
मरो परन्तु यों मरो कि याद जों करें सभी।
हुई न यों सुमृत्यु तो वृथा मरे, वृथा जीयए,
मरा नहीं वही कि जो जिया न आपके लिए।
वही पशु प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे॥"[16]

सरोज की नियुक्ति एक पहाड़ी गाँव के विद्यालय में होती है। परन्तु वह केवल 'सरकारी कर्मचारी' की भाँति अपना समय व्यतीत नहीं करती, अपितु लीक से हटकर गाँव के विकास के लिए कार्य करती है। अपने मधुर व्यवहार के कारण वह ग्रामवासियों में अत्यन्त लोकप्रिय हो जाती है।

गाँव के ही आनन्दसिंह की पुत्री अत्यन्त कुरूप है। उसकी प्लास्टिक सर्जरी के लिए वह भरसक प्रयास करती है। यहाँ तक कि अपने परिवार का ध्यान रखना भी विस्मृत कर देती है। अथक प्रयासों के पश्चात भी सरोज रानी को बचाने में सफल नहीं हों पाती। रानी के माता-पिता के उद्गार सरोज की महान् चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित करते हैं:

"तू औरत रूप में देवी है बहना, देवी। तू तो उसे नया जीवन देने में लगी थी, उसकी किस्मत में ही नहीं था तो हम क्या करें। बच्चे हैं उनको देख, स्कूल के बच्चों को देख। तू तो भाग्यवान है- इतने बच्चे हैं तेरे। ...किसी दीन दुखियारे को, किसी गरीब जरूरतमन्द को मदद कर हम अहसान नहीं करते, अपना फर्ज अदा करते हैं। और इस फर्ज सबको अदा करना होता है। यही मानव योनि का मूल मंत्र है।"[17]

वर्ष 2013 में केदारनाथ घाटी में आयी भीषण प्राकृतिक आपदा को केंद्र में रखकर लिखे गये उपन्यास– 'ज़िन्दगी रुकती नहीं' की नायिका– लक्ष्मी। सामान्यतः समाज में यह धारणा प्रचलित है कि स्त्रियाँ भीरु होती हैं और थोड़ी सी विपत्ति आने पर वे शीघ्र विचलित हो जाती हैं। परन्तु 'ज़िन्दगी रुकती नहीं' की नायिका इस मिथक को तोड़ती है। केदारनाथ आपदा में लक्ष्मी के परिवार जन उससे बिछुड़ जाते हैं। घर-द्वार सब कुछ नष्ट हो जाता है तथा वह स्वयं बुरी तरह घायल हो जाती है, फिर भी न वह धैर्य खोतीं है और न हिम्मत हारती है। हिम्मत हार चुके अपने मंगेतर को वह समझाती है:

"कितनी जल्दी निराश हो गये हो तुम, अरे, मैं तो एक लड़की हूँ। मेरे माता-पिता और भाई नहीं मिल रहे हैं। मुझे तो एक तुम्हारा ही सहारा था कि चलो, तुम्हारे साथ मिलकर उन सबकी तलाश करूँगी। लेकिन तुम तो खुद ही टूट गये।"[18]

'ज़िन्दगी रुकती नहीं' की लक्ष्मी यदि धैर्यवान और साहसी है तो 'अपना-पराया' की लक्ष्मी भी उससे कम नहीं। एक प्राकृतिक आपदा से जूझती है, तो दूसरी मानव-निर्मित त्रासदी से। लक्ष्मी का केवल इतना था कि उसने गरीब घर में जन्म लिया था और उसके स्त्रियोचित गुणों पर रीझकर सुरेश ने अपनी दहेज लोलुप माँ के विरुद्ध जाकर उससे विवाह किया था।

परिणाम यह हुआ कि जीवन भर उसे शारीरिक और मानसिक यंत्रणाएँ झेलनी पड़ीं। सुरेश की मृत्यु के पश्चात ये यंत्रणाएँ और अधिक बढ़ गयीं। इतना सब सहन करने के पश्चात भी लक्ष्मी अपनी निर्दय सास का साथ नहीं छोड़ती है:

"कमला समझ रही थी कि लक्ष्मी चाहती तो मानस की पढ़ाई के बहाने आसानी से इस समय उससे पीछा छुड़ा सकती थी, लेकिन उसने वह रास्ता नहीं चुना। लक्ष्मी के प्रति कमला के मन के किसी कोने में अनायास ही हल्की सी सहानुभूति उपज आयी।

लेकिन सास की सहानुभूति का पात्र लम्बे समय तक बन पाना लक्ष्मी की किस्मत में ही शायद नहीं था।"[19]

'भागोंवाली' की अम्माँ की कहानी 'अपना-पराया' की लक्ष्मी के समान ही है। लक्ष्मी अपनी सास से अपमानित, उपेक्षित और प्रताड़ित है, अम्माँ चार-चार पुत्रों के होते हुए भी बेटे-बहुओं से यह दंश पा रही है:

"माँ चारपाई पर पड़ी बड़बड़ाती रहती, लेकिन बगल में रह रहे बेटा बहू एक बार भी अम्माँ को देखने तक नहीं आये।"[20]

अम्माँ के अन्तिम समय की का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है:

"अम्माँ सन्निपात में बड़बड़ाती– 'मेरे पति का घर है यह, मुझे मत निकालो यहाँ से, मैं कहीं नहीं जाऊँगी यहाँ से.... मेरे पति की निशानी है ये....।' कम्पकपाती आवाज के साथ रोने का स्वर भी मिल जाता तो दूसरे ही क्षण हँसने लगती अम्माँ... "चार-चार बेटे हैं मेरे, चार-चार बहू हैं। भागोंवाली हूँ मैं, भागोंवाली, चार के कंधों पर सवार होकर सीधा स्वर्ग जाऊँगी मैं...सीधा स्वर्ग....

उस बेचारी को अब होश नहीं रहा। उसे अब कहाँ मालूम कि जो बेटे उसे जीते-जी स्वर्ग नहीं दे पाये, अब मरने के बाद क्या स्वर्ग देंगे। x x x आशा-निराशाओं के बीच झूलते हुए भागोंवाली अम्माँ इस निर्दयी संसार से विदा हो गईं।"[21]

'निशान्त' उपन्यास में स्त्री पात्र बहुत हैं– चन्द्रलेखा, रूबी, मीताली, शालिनी, सोनाली आदि। परन्तु इन सब में केंद्रीय पात्र मीताली ही है। मीताली संघर्ष और धैर्य का पर्याय है। पुराने समय की लड़कियों की अपेक्षा अब इन ग्रामीण लड़कियों की चेतना में जो परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है, मीताली उसका श्रेष्ठ उदाहरण है। डॉ. निशंक मीताली के चरित्र को उद्घाटित करते हुए लिखते हैं:

"दरअसल मीताली की ज़िन्दगी इतनी सरल नहीं थी, बहुत बड़ा बोझ था उस पर परिवार का। साधारण लड़कियों की तरह नहीं था उसका जीवन। उसे तो बचपन से ही पुरुष की तरह कार्य करना पड़ा है। कभी माँ बनकर तो कभी पिता बनकर गृहस्थी का संचालन करना पड़ा है। अपने बारे में तो उसे कभी सोचने की फुर्सत ही नहीं मिली।"[22]

उपन्यासकार ने मिताली के रूप में एक ऐसी संघर्षशील नारी को गढ़ा है जो अपनी छोटी बहन को शिक्षित कराती है और विवाह कराती है। अपने उद्दंड भाई शेखर की जमानत कराती है और जेल से उसे छुड़ाती है। यह निः संदेह अत्यन्त साहस का कार्य है और नारी की परिवर्तित चेतना को अभिव्यक्त करता है।

'निशान्त' उपन्यास की भाँति 'कृतघ्न में भी एकाधिक स्त्री पात्र हैं– वर्षा, जानकी, पूनम, पूनम की चाची-सावित्री, दादी, अम्मा, सुकन्या, गुंजन, अंजली। पूरे उपन्यास की केन्द्र बिन्दु है– पूनम। परन्तु पूनम खलनायिका है।

सुकन्या का प्रवेश उपन्यास में विलंब से होता है। परन्तु वह पूनम के षड़यंत्रों से कथा नायक को बचाती है। कथानायक अम्बुज सुकन्या से विवाह करता है। सुकन्या को फल की प्राप्ति होती है अतः वही उपन्यास की नायिका है।

परन्तु इस नायिका का जीवन अत्यन्त संघर्ष पूर्ण दर्शाया गया है। उपन्यास का परिच्छेद नौ पूरा का पूरा सुकन्या के जीवन को समर्पित है जो पृष्ठ क्र. 86 से पृष्ठ क्र. 96 तक विस्तारित है। उपन्यासकार के शब्दों में इस संघर्ष का संक्षिप्त दिग्दर्शन कुछ इस प्रकार है –

"लम्बी बीमारी के बाद सुकन्या की माँ जब स्वर्ग सिधारी, उस समय वह मात्र चार वर्ष की ही थी। एक निजी स्कूल में हिंदी के शिक्षक उसके पिता मामूली वेतन पाते। पत्नी के इलाज में जमा पूँजी तो जाती रही, उलटा कर्जा और सिर पर चढ़ गया। सुकन्या की उम्र को देखते हुए कई लोगों ने उन्हें विवाह की सलाह दी, लेकिन 'सौतेला' शब्द दिमाग के अन्दर कुछ इस तरह बैठ गया था कि वे राजी न हुए। घर-गृहस्थी के काम-काज से लेकर नन्हीं सुकन्या की सारी जिम्मेवारी अब उनके सिर पर थी।"[23]

परन्तु आगे और भी बड़े-बड़े संकट सुकन्या पर आये। परन्तु वह इन सबको चीरती गयी और आगे बढ़ती गयी। अपने पैरों पर खड़ी होकर उसने स्वावलम्बन का पाठ पढ़ा।

सुकन्या ने अपने बौद्धिक-चातुर्य से उपन्यास के नायक अम्बुज को, पूनम द्वारा बिछाये गये बहुत ही बड़े षड़यंत्र के जाल से बचाती है। अपने नाम को सार्थक करती हुई वह अम्बुज तथा उसके परिवार की विश्वासपात्र बन जाती है। इतना ही नहीं, अम्बुज का दूसरा विवाह भी उसकी माँ सुकन्या से कर देती है। अम्बुज को पत्नी और उसके दोनों मातृविहीन बच्चों को स्नेहमयी माँ मिल जाती है।

नारी यदि ठान ले तो वह क्या नहीं कर सकती, बड़े-से बड़ा परिवर्तन ला सकती है वह समाज में। असम्भव को सम्भव बना सकती है वह– 'प्रतिज्ञा' की सुनीता की तरह।

शराब के अवैध फलते-फूलते व्यवसाय से गाँव के गाँव नष्ट हो रहे थे। इस व्यवसाय में लगे युवा, रोजगार के नाम पर भ्रमित हो रहे थे। सुनीता के पति वीरू ने इसके विरुद्ध मोर्चा खोला तो अपराधियों ने उसे मृत्यु के घाट उतार दिया। असहाय सुनीता ने बहुत हाथ-पाँव मारे, पर अपराधियों के आतंक के भय से कोई उनके विरुद्ध गवाही देने के लिए तैयार न हुआ। आतंक और अधिक बढ़ गया। अंततः सुनीता ने मुख्य अपराधी को उसी की कार्यशैली में उसे सबक सिखाया:

"सुनीता आगे बढ़ी और कुलदीप के पास आ खड़ी हुई। उसकी आँखें अंगारे उगल रही थीं। चेहरा देदीप्यमान था, मानो साक्षात देवीस्वरूप का अवतार रख धरती पर उतर आयी

हो। कोई कुछ समझ पाता, इससे पहले ही सुनीता की चारों सहेलियों ने मुख्य द्वार बन्द कर दिया। दो महिलाएँ वहीं पर खड़ी रहीं, जबकि दो सुनीता के पास आ गयीं। सुनीता ने दोनों हाथ जोड़ दिए। उपस्थित लोगों के चेहरों पर निराशा छा गई। तो सुनीता ने माफी मांग ही ली।

लेकिन अचानक ही 'जय देवी माँ' के उद्घोष के साथ सुनीता ने कमर में यत्न से छुपाई गयी दरांती निकाल कुलदीप पर ताबड़ तौड़ प्रहार शुरू कर दिये।

सामने अविश्वसनीय दृश्य था। थोड़ी ही देर में कुलदीप का रक्तरंजित शव पंचायत हॉल में पड़ा था।

x x x

सांझ ढली, रात हो आई। गाँव में सन्नाटा पसरा था। एक और हत्या हुई थी आज। कल फिर पुलिस आएगी। फिर वही पूछताछ, क्या पता, हत्यारा पकड़ा जाय? क्या पता वीरू के हत्यारे की तरह कभी पकड़ में ही न आय?

इतिहास ने फिर एक बार अपने आपको दोहराया। इस बार भी कोई गवाह न मिला।"[24]

डॉ. निशंक के उपन्यासों के प्रायः समस्त नारी पात्र न केवल समाज में सकारात्मक परिवर्तन के पक्षधर हैं, अपितु उसके क्रियान्वयन हेतु उद्यम भी करते हैं।

डॉ. निशंक के पुरुष औपन्यासिक पात्र भी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवर्तन के पक्षधर हैं। महिला पात्रों की भाँति डॉ. निशंक के उपन्यासों के पुरुष पात्र भी संघर्ष करते दृष्टिगोचर होते हैं। यह परिवर्तन के लिए संघर्ष है उनका। इन पुरुष पात्रों में ध्रुव और श्रवण (पल्लवी), दीपक (बीरा), आनन्दसिंह (छूट गया पड़ाव), विक्रम (ज़िन्दगी रुकती नहीं), राहुल और पांडे जी (अपना-पराया), कुलदीप (भागोंवाली), निशान्त (निशान्त), अम्बुज (कृतघ्न), वीरू (प्रतिज्ञा) तथा निराला (मेजर निराला) प्रमुख हैं। यद्यपि डॉ. निशंक द्वारा लिखित इन उपन्यासों में सात उपन्यास नायिका प्रधान हैं (पल्लवी, बीरा,

छूट गया पड़ाव, अपना-पराया, भागोंवाली, कृतघ्न तथा प्रतिज्ञा)। परन्तु डॉ. निशंक देश और समाज के सकारात्मक परिवर्तन में स्त्री-पुरुष दोनों की सम्मिलित भूमिका स्वीकार करते हैं।

अपने उपन्यासों में डॉ. निशंक ने सामाजिक चेतना में हो रहे कुछ अन्य परिवर्तनों की ओर भी संकेत किये हैं, जिसका उल्लेख किया जाना समीचीन होगा:

"गाँवों में अभी-भी ये परम्परा है कि घर की बहुएँ सास ससुर और बाहर वालों के सामने पति से बहुत अधिक बात नहीं करतीं और किशन की पत्नी भी इस परम्परा को बखूबी निभा रही थी।"[25]

यह परम्परा उत्तर भारत में सर्वाधिक प्रचलन में रही है। परन्तु शनैः शनैः समाप्त प्राय है। पहले पत्नियाँ अपने पति का नाम नहीं लेती थीं। परन्तु अब ये सामाजिक प्रथाएँ गावों से भी लुप्त होती जा रही हैं। इसके कई कारण हैं। अब गावों की लड़कियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर नौकरियाँ कर रही हैं। मनपसन्द विवाह कर रही हैं । साथ-साथ आती-जाती हैं। ऐसी स्थिति में पति से बात करने या पति का नाम लेने जैसी सामाजिक मान्यताओं के बन्धन टूट रहे हैं। एक और सामाजीक परिवर्तन कहें तो क्रांतिकारी परिवर्तन यह हो रहा है कि पहले पढ़ी-लिखी शहरी लड़कियाँ गाँव में विवाह करने या गाँव में रहने के नाम पर सहमत नहीं होती थीं, (अब भी प्रायः यही स्थिति है) परन्तु डॉ. निशंक के पात्र इस मिथक को तोड़ते हुए प्रतीत होते हैं:

"पल्लवी ब्याह होकर पहली बार गाँव आयी तो उसका शुरुआती परिचय गाँव की अन्य लड़कियों के साथ-साथ कुन्ती से भी हुआ। जहाँ सब लड़कियाँ उसके पढ़ी-लिखी और शहरी होने के कारण बात करने में झिझक रही थीं, वहीं कुन्ती पटर-पटर बोल उसे गाँव के रीति रिवाजों और लोगों से परिचित करा रही थी।"[26]

एक और सामाजिक प्रथा है– दहेज। इसने आज दुखद कुरीति का रूप धारण कर लिया है। मुखौटे औढ़ने के अभ्यस्त समाज के कुछ संभ्रांत जन प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से वर को विक्रय करते हैं और दहेज विरोधी भी बने रहना चाहते हैं। कहीं कहीं वर स्वयं ही दहेज की माँग करते हैं। 'बीरा' उपन्यास का राजू ऐसा ही प्रतिनिधि है। दूसरी ओर 'पल्लवी' उपन्यास का

ध्रुव ऐसा प्रतिनिधि पात्र है, जो दहेज विरोधी है। डॉ. निशंक ध्रुव के दहेज विरोधी चरित्र का अंकन करते हुए लिखते हैं :

"दहेज के नाम पर मिलने वाले उपहारों के लिए ध्रुव ने विनम्रता से साफ मना कर दिया।"[27]

सामाजिक परिवर्तन के क्रम में डॉ. निशंक दो मुद्दे उठाते हैं और ये दोनों मुद्दे ही अत्यन्त ज्वलन्त और सामयिक हैं। एक है विधवा विवाह और दूसरा है तलाक। दोनों ही समाज के महत्वपूर्ण मुद्दे हैं। यद्यपि विधवा विवाह आज कोई मुद्दा नहीं रहा। परन्तु एक समय था, जब समाज में विधवा को हेय दृष्टि से देखा जाता था। मांगलिक कार्यों में उसकी उपस्थिति अशुभ समझी जाती थी, यहाँ तक कि वैवाहिक कार्यक्रमों में अन्तिम लोकाचार होने तक उसे काल कोठरी में बन्द कर दिया जाता था। सती प्रथा विधवा की चरम परिणति थी। विधवा की दारुण मनःस्थिति का चित्रण सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' से अच्छा कौन कर सकता है:

"वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी,
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन –
दलित भारत की ही विधवा है।

षड्-ऋतुओं का श्रृंगार
कुसुमित कानन में नीरव-पद-सञ्चार
अमर कल्पना में स्वच्छन्द विहार –

व्यथा की भूली हुई कथा है,
उसका एक स्वप्न अथवा है।

उसके मधु-सुहाग का दर्पण,
जिसमें देखा था उसने –
बस, एक बार बिम्बित अपना जीवन-धन,
अबल हाथों का एक सहारा –
लक्ष्य जीवन का प्यारा, वह ध्रुवतारा?
दूर हुआ वह; बहा रहा है
उस अनन्त पथ से करुणा की धारा।

हैं करुणा-रस से पुलकित इसकी आँखें,
देखा तो भीगीं मन-मधुकर की पाँखें,
मृदु रसावेश में निकला जो गुञ्जार
वह और न था कुछ, था, बस, हाहाकार!

उस करुणा की सरिता के मलिन पुलिन पर,
लघु टूटी हुई कुटी का, मौन बढ़ाकर
अति छिन्न हुए भीगे अञ्चल में मन को –
दुख-रूखे सूखे अधर-त्रस्त चितवन को
वह दुनिया की नज़रों से दूर बचाकर,

रोती है अस्फुट सवर में:

दुख सुनता है आकाश धीर, –
निश्चल समीर,
सरिता की वे लहरें भी ठहर-ठहरकर।

कौन उसको धीरज दे सके?
दुख का भार कौन ले सके?
यह दुख वह जिसका नहीं कुछ छोर है,
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है।

क्या कभी पोंछे किसी के अश्रु-जल?
या किया करते रहे सबको विकल?
ओस-कण-सा पल्लवों से झर गया
जो अश्रु, भारत का उसी से सर गया।"[28]

उन्नीसवी शताब्दी में दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर जैसे प्रभूत समाज सुधारकों ने इन सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध मोर्चा खोला। हिंदी साहित्य के कवि-लेखक भी पीछे नहीं रहे। श्री एम. वी. मोक्षाकर ने 'विधवा' विवाह उपन्यास लिखा जो सन् 1939 में सेठ जवाहरलाल नाहटा सिकंदराबाद ने प्रकाशित किया। यद्यपि यह शीर्षक से ही उपन्यास है। पुस्तक पर 'नाटक' न लिखा होने पर भी यह नाटक-सा (नाटक नहीं) है। क्योंकि पूरी कृति कथोपकथन शैली में सृजित है। यद्यपि इसके दस वर्ष पूर्व 1929 में जैनेन्द्र कुमार का विधवा जीवन पर आधृत उपन्यास 'परख' प्रकाशित हो चुका था।

इसके और चालीस वर्ष पूर्व पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा लिखित और सन् 1888 में प्रकाशित हिंदी के प्रथम उपन्यास माने गये 'भाग्यवती' में खुल कर विधवा विवाह का समर्थन और दहेज प्रथा का विरोध किया गया है। और भी अनेक कवियों-लेखकों ने विधवा विवाह के समर्थन और दहेज प्रथा के विरोध में अपना श्रेष्ठतम लेखकीय योगदान किया है। यहाँ यह सब अभिप्रेत नहीं है। प्रासंगिक अभिप्रेत मात्र इतना है कि इस श्रृंखला में डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने जहाँ भी अपने उपन्यासों में उन्हें अवसर प्राप्त हुआ है, इसे उकेरा है। 'पल्लवी' उपन्यास की सहनायिका बिन्दु के विधवा होने पर भी वकील साहब से विवाह करना इसी परिवर्तित सामाजिक चेतना का उदाहरण है:

"कुछ दिन के सोच-विचार के बाद आखिर बिन्दु ने हाँ कर दी x x x और एक दिन घर के लोगों की उपस्थिति में बिन्दु और वकील साहब विवाह सूत्र में बँध गये।"[29]

प्रस्तुत प्रसंग में एक तथ्य उल्लेखनीय है कि सैनिक किशन की पत्नी बिन्दु विधवा है और वकील का अपनी पत्नी से तलाक हो चुका है। किशन के शहीद होने के पश्चात भाइयों के बहकावे में आकर वह अपने मायके में भाइयों-भाभियों के साथ रह रही है। डॉ. निशंक के उपन्यासों में 'पल्लवी' एकमात्र ऐसा उपन्यास है, जिसमें एक साथ विधवा विवाह और तलाक जैसी सामाजिक समस्याओं को उठाया गया है।

भारतीय समाज में पति-पत्नी के सम्बन्धों को सात जन्मों अथवा जन्म-जन्मांतरों का सम्बन्ध माना गया है। भारतीय समाज में यह मान्यता प्रचलित है कि पिता के घर से दुल्हिन बनकर जाने के बाद ससुराल से उनकी अर्थी ही उठती है। हिन्दू धर्म में विवाह का सम्बन्ध देह अथवा यौनेच्छा की पूर्ति मात्र नहीं है। यह दो आत्माओं के मिलन का संस्कार होता है।

परन्तु, अब अनेक कारण वश इस मान्यता में पर्याप्त परिवर्तन परिलक्षित हुआ है। डॉ. निशंक के उपन्यास साहित्य में इस परिवर्तन का प्रतिनिधित्व 'पल्लवी' उपन्यास के वकील साहब करते हैं जिनका अपनी पत्नी से तलाक हो चुका है। यद्यपि यह तलाक हुआ नहीं। बिन्दु

को मिली सरकारी राशि हड़पने के लिए वकील साहब ने यह षड़यंत्र रचा था, जिसका रहस्य आगे चलकर खुलता है –

"गाँव के लोगों से पता किया तो मालूम हुआ कि वह तो पहले से ही अपराधी प्रवृत्ति का इन्सान है। वकालत की आड़ में लोगों को ब्लेकमेल करना ही उसका पेशा था। उसकी पत्नी भी उससे परेशान थी और उससे कुछ समय से अपने दोनों बच्चों के साथ मायके में ही रह रही थी।"[30]

औपन्यासिक रोचकता की पूर्ति करने के उद्देश्य से कथानक को यह रूप दे दिया गया हो, पर तलाक का प्रश्न तो उपस्थित हो ही गया।

समाज में हो रहे परिवर्तनों की शृंखला में एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन डॉ. निशंक की तीक्ष्ण और सूक्ष्म दृष्टि से बच नहीं पाया है। वह है– वरिष्ठ जनों की उपेक्षा और तिरस्कार का संकट।

भारतीय संस्कृति में बड़े-बूढ़ों को आदर और सम्मान देने की व्यवस्था की गयी है। परन्तु आधुनिकता और पैसे की चकाचौंध में भ्रमित हुई आज की युवा पीढ़ी इन वरिष्ठजनों का घोर अपमान और उपेक्षा कर रही है। एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2023 में देश में वरिष्ठ नागरिकों की संख्या 13 करोड़ अस्सी लाख थे। इनमें से लगभग आधे सामाजिक संस्थाओं द्वारा संचालित वृद्धाश्रमों, अनाथालयों और तीर्थ क्षेत्रों में रह रहे हैं। ये सामाजिक संस्थाएँ अपने आर्थिक संसाधन स्वयं जुटाती हैं। कभी-कभी सरकारें भी इन्हें अनुदान उपलब्ध करा देती हैं। इन संस्थाओं में अपने बेटे-बहुओं से प्रताड़ित और अपमानित वृद्ध जन अपने जीवन की शेष अवस्था पूरी करते हैं।

डॉ. लखन लाल खरे अपनी कृति– 'मानस : नवीन भाव-बोध' के एक आलेख– 'मानस में वृद्ध विमर्श' में रामचरित मानस के दो प्रसंगों के माध्यम से बताते हैं कि वृद्धों के मान अपमान का परिणाम क्या होता है? यह प्रसंग विवेच्य प्रसंग से तादात्म्य स्थापित करता है :

"रामचरित मानस में दो प्रसंग हैं– एक रामदल का, एक रावण दल का। दोनों दलों में एक-एक वृद्ध का उल्लेख है। ये दोनों वृद्ध 'वंत' हैं– एक जामवंत, एक माल्यवंत। एक को श्रीराम मान-सम्मान देते हैं, दूसरे को रावण प्रताड़ित करता है– तिरस्कृत करता है। इसका परिणाम क्या हुआ? श्रीराम की विजय और रावण का वंश सहित नाश। निर्णय आप स्वयं करें, आप क्या चाहेंगे– श्रीराम की भाँति विजयी होना या वृद्धजनों को अपमानित करते हुए नष्ट हों जाना।"[31]

डॉ. निशंक के उपन्यास 'पल्लवी' में ये दोनों रूप प्राप्त होते हैं। विधवा पल्लवी भी है और बिन्दु भी। पर, पल्लवी का व्यवहार बुजुर्गों के प्रति राम जैसा सम्मान पूर्ण है और बिन्दु का रावण जैसा:

"ऐसी बहू तो कई जन्मों के पुण्य से ही मिलती है, वरना आजकल कौन पूछ रहा सास ससुर को ! साथ रहना तो दूर, शक्ल देखना तक पसन्द नहीं करती वो। और पति के बाद तो सब कुछ समेट कर ही चल हैं। और एक ये हैं, सब कुछ छोड़कर सास ससुर की सेवा में लगी है।"[32]

"थोड़ी ही देर में यह बात आग की तरह पूरे गाँव में फैल गयी, लेकिन एक भी आदमी ऐसा नहीं था, जो कहे कि बेचारी के साथ गलत हों गया। सब ये ही कहते, ये तो होना ही था उसके साथ। कैसे ठोकर मार कर चली गयी थी बिलबिलाते सास ससुर को। भगवान के यहाँ देर है, अंधेर नहीं।"[33]

परिवार के बुजुर्गों की असहायता का सीधा सम्बन्ध परिवार की सुगठित संगठन-प्रक्रिया से है। पहले परिवार संयुक्त होते थे, तब वरिष्ठ जनों का समुचित आदर था, सम्मान था। परन्तु अब इनके दरकने की क्रिया द्रुतगति से होने लगी है:

"संयुक्त परिवारों की प्रथा अब पहाड़ में भी धीरे-धीरे खत्म होती जा रही है। एक दूसरे को सहने की क्षमता कम होती जा रही है। अहं बढ़ रहे हैं। चाचा चाची झगड़ा करके

अलग रहने लगने थे। दोनों भाइयों में बात-चीत तक नहीं होती थी। फिर भी गाँव वालों की लोकलाज के भय से वे इन अभागे दोनों भाई बहन को अपने साथ ले आये थे।"[34]

कहावत है, मकान– ईंट गारे से बनता है और घर मकान में रहने वाले हाड़मांस के बोलते हुए पुतलों से। जब यही हाड़-मांस के पुतले मकान से निकल कर गाँव-नगर की सीमा को नापते हैं तब समाज का बहुविध विस्तार होता है। पहले गाँवों का जो स्वरूप था, अब नहीं रहा। शहरी छाया लोक पर भी आ पड़ी है:

"किन्तु अब धीरे-धीरे शहरी परिवेश की छाया पहाड़ी गाँवों के विवाह समारोहों पर भी पड़ने लगी है। पीठा-पलंग की जगह अब तो डबल बैड, सोफ़ा, स्टील अलमारी, टेलिविजन और टेप रिकार्डर दुल्हन को मिलने वाले दहेज की सूची में अपनी जगह बना चुके हैं। हालाँकि गाँव के पारम्परिक मकानों के छोटे दरवाजों के अन्दर कभी-कभी यह सामान खिसकाना बड़ा ही मुश्किल कार्य हो जाता है। बड़े बड़े पारम्परिक बर्तनों की जगह भी अब डिनर सेट ने ले ली है।"[35]

जब परिवर्तन की बयार चलती है तब सारे स्थापित मूल्यों को बदल देती है। लोक में जो भी परिवर्तन होते हैं, वे द्रुतगति से होते हैं। उन पर भौतिकवाद का आक्रमण शीघ्र होता है:

"उस जमाने में घी-दूध खूब था। कोदा झँगोरा खाकर लोग हृष्ट पुष्ट थे। तब सन्साधन जरूर कम थे, जीवन थोड़ा असुविधाजनक था। किन्तु धीरे धीरे आधुनिकता आने लगी। लोगों की अभिरुचि के साथ खान पान और पहनावे में भी बदलाव आया। यही नहीं, पर्यावरण में भी बदलाव आ गया। अब मनुष्य में अनेक प्रकार की बीमारियाँ पनपने लगी हैं, तब बीमारियाँ कुछ नहीं थी। हैजा और चेचक जैसी दो महामारियाँ जरूर थीं। इनका इलाज भी आयुर्वेदिक विधि से किया जाता था। स्वस्थ और प्रसन्नचित्त था व्यक्ति, जरूरतें कम थीं। जरूरत के हिसाब से मेहनत होती थी और सीमित संसाधनों में ही परिवार का जीवन यापन होता था। आज मनुष्य मशीनी युग में स्वयं भी मशीन की तरह हो गया है। मेहनत करने की प्रकृति खत्म हो रही है। यही कारण है कि खेती-पाती और गाँव-खलिहान से लोगों का मोह भंग होने लगा

है। पलायन कर रहे हैं लोग। गाँव लगातार खाली होते जा रहे हैं और ज़मीन धीरे-धीरे बंजर।"[36]

जब परिवर्तन की बाढ़ आती है, तो अपने साथ कुछ बहाकर ले जाती है तो कुछ कचड़ा भी किनारे पर छोड़ जाती है। लोक में परिवर्तन हुआ तो कुछ बुराइयाँ भी पनपीं। गावों में पहले शराब-सेवन को हेय दृष्टि से देखा जाता था। शराब पीने वाले का सामाजिक बहिष्कार किया जाता था। परन्तु अब यह 'स्टेटस सिम्बल' बन गया है। शराब के दुर्गुणों ने लोक की पावनता को दूषित किया है और लोक की शान्ति तथा सौहार्द्र को भंग किया है:

"गाँव और आसपास का माहौल तेजी से बदल रहा था। शाम होते ही नशे में चूर लोगों के आपसी झगड़े और गाली-गलौज के स्वर अक्सर सुनाई पड़ते। बुजुर्गों और महिलाओं ने शाम होते ही घर में सिमट जाना सीख लिया था। कभी इधर तो कभी उधर, घर-गाँव में हर तरफ बहू-बेटियों, लड़कियों और महिलाओं से छेदछाड़ की घटनाएँ बढ़ती ही जा रही थीं। ..... इस माहौल से अगर किसी को सबसे ज्यादा फर्क पड़ा था तो वे थीं महिलाएँ और लड़कियाँ। अधिकतर गाँवों में आठवीं तक का ही स्कूल होने के कारण लड़कियों को आगे की पढ़ाई के लिए मिलों दूर जाना पड़ता। रास्ते में जंगल भी पड़ते तो गाड़ गधेरे भी। अत्यधिक शराब के सेवन के कारण मतिभ्रष्ट और संस्कारहीन हुए युवा उनसे अभद्रता करने से नहीं चूकते।"[37]

लोक के परिवर्तित रूप का चित्र दर्शाते हुए डॉ. निशंक, 'पहाड़ से ऊँचा' उपन्यास के नायक मोहन के माध्यम से कहते हैं कि –

"मध्य वर्ग, निम्न मध्य वर्ग हो या चाहे उच्च मध्यवर्गीय महिला, सार्वजनिक जीवन के साथ-साथ पारिवारिक दायित्वों के निर्वाह की जिम्मेदारी उन्हीं पर अधिक थोपी जाती है। हम यह भी जानते हैं कि मध्य वर्ग ही समाज में अधिकांशतया जनमत का निर्माण करता है तथा इसी में सामाजिक सरोकारों से लेकर अन्य विषयों के लिए कुलबुलाहट और बेचैनी ज्यादा रहती है।

आज का आदमी अमीर बनने को प्रयत्नशील रहता है व गरीब बनना नहीं चाहता, दिखावे के चक्कर में खोखला होता जाता है। यही बातें कमोवेश इस वर्ग की महिलाओं पर भी लागू होती है। किचन, कपड़े, पड़ौस, गप्प, टी.वी. के सिवाय इतने बड़े मानवीय संसाधन का अन्य कार्य भी कोई है? क्योंकि मैं समझता हूँ कि साक्षरता एवं शिक्षा की सतही चमक प्रभावकारी नहीं हो सकती, उसे अंतः करण से शक्तिशाली व आत्मविश्वास से लबालब बनाना होगा।"[38]

लोक का विस्तार जहाँ तक है– नगर और ग्राम (विशेष रूप से), वहाँ की सामाजिक चेतना में जो परिवर्तन हुए हैं या हो रहे हैं, उनका सूक्ष्म विश्लेषण डॉ. निशंक ने अपने उपन्यास साहित्य में समग्र दृष्टि से किया है।

(ख) राजनीतिक परिवर्तन :

जब परिवर्तन होता है तो बहुत धीरे-धीरे और उसका आभास शीघ्रता से होता है। राजनीतिक रूप से हमारे देश में अनेक परिवर्तन हुए हैं। प्राचीन भारत में पहले राज व्यवस्था के रूप में गणतांत्रिक प्रणाली थी और भारत सोलह गणराज्यों में विभक्त था। ये सोलह गणराज्य सोलह महाजनपद कहलाते थे। ये प्राचीन महाजनपद और उनका वर्तमान स्वरूप यहाँ प्रसंगवश प्रस्तुत किया जा रहा है:

क्र.	महाजनपद	राजधानी	वर्तमान स्थिति
1.	अंग	चम्पा	भागलपुर/ मुंगेर के आसपास का क्षेत्र पूर्वी बिहार
2.	मगध	राजगृह/वैशाली पाटलिपुत्र	पटना/गया (मगध के आसपास का क्षेत्र) - मध्य दक्षिणी बिहार
3.	काशी	वाराणसी	आधुनिक बनारस
4.	वत्स	कौशाम्बी	प्रयागराज
5.	वज्जी	वैशाली, विदेह,	दरभंगा/मधुवनी के आसपास का क्षेत्र

	मिथिला	(बिहार)
6. कौसल	श्रीवस्ती	अयोध्या/फैजाबाद के आसपास का क्षेत्र
7. अवन्ति	उज्जैन, महिष्मती	मध्यप्रदेश का मालवा क्षेत्र
8. मल्ल	कुशावती	देवरिया(उत्तर प्रदेश)
9. पंचाल	अहिछत्र, काम्पिल्य	उत्तरी उत्तर प्रदेश
10. चेदि	शक्तिमती	बुंदेलखंड, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश
11. कुरु	इन्द्रप्रस्थ	दिल्ली, मेरठ, हरियाणा का क्षेत्र
12. मत्स्य	विराटनगर	जयपुर- राजस्थान
13. कम्बोज	हाटक	राजौरी- हाजरा उत्तरप्रदेश
14. शूरसेन	मधुपुरी(मथुरा)	मथुरा
15. अश्मक	पोतन	दक्षिणी भारत में गोदावरी नदी घाटी के आसपास का क्षेत्र
16. गंधार	तक्षशिला	पेशावर व रावलपिंडी के आसपास का क्षेत्र (पाकिस्तान)

काल के प्रवाह में ये सारे महाजनपद विलीन हो गये। इनके स्थान पर सैकड़ों राजसत्ताओं का उदय हुआ। गणराज्यों में वर्तमान प्रजातांत्रिक व्यवस्था की झलक प्राप्त होती है। परिवर्तन हुआ और राजतंत्र का उदय हुआ। भारत की स्वतंत्रता तक देश में यही राजतांत्रिक प्रणाली थी। इसके अंतर्गत समूचे देश में सैकड़ों राज्य थे, रियासतें थीं, राजे-महाराजे थे और बादशाह थे। मुगलों की बादशाहत के पश्चात अंग्रेजों ने ब्रिटिश के राजा और रानी के नाम पर राज किया। 15 अगस्त, 1947 को देश स्वतंत्र हुआ और 26 जनवरी, 1950 से देश में प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली शुरू हुई। शासन-सूत्र जनता के हाथ में आ गये। देश में ग्राम पंचायतें पहले भी थीं। परन्तु संविधान के 73वें संशोधन के द्वारा इस प्रणाली को 1993

से वैधानिक रूप से पूरे देश में लागू कर दिया गया। देश में प्रजा का शासन, प्रजा के लिए प्रजा के द्वारा शासन प्रणाली वास्तविक रूप से लागू हुई। बड़ा परिवर्तन परिलक्षित हुआ।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो इन सहज और स्वाभाविक परिवर्तनों को स्वीकार नहीं कर पाते। उनका मन अतीत में भटकता रहता है। उनका प्रयास यही रहता है कि परिवर्तन को विफल करने का प्रयास करें और अपना तानाशाही व्यवहार करते रहें। वे अपना अधिकार और प्रभुत्व खोना नहीं चाहते। 'ज़िन्दगी रुकती नहीं' उपन्यास के प्रधानजी का यही चरित्र है:

"राजनीति में कभी भी, कुछ भी घटित हो सकता है। प्रधान जी का गणित भी परिसीमन के कारण बिगड़ गया। ग्राम प्रधान की यह सीट महिला आरक्षित हो गयी। अब प्रधान जी ने किसी तरह भी इस सीट को सामान्य करवाने हेतु ब्लाक से लेकर जिला मुख्यालय तक दौड़ लगायी, लेकिन सब व्यर्थ रहा। प्रधान जी को एक रबर स्टाम्प चाहिए था, इसलिए बहू को उम्मीदवार बना दिया। वह आशा जीत तो गयी, लेकिन ससुर जी की मंशा पूरी न हो पायी। पढ़ी-लिखी और सुलझे विचारों की आशा ने धीरे-धीरे ससुर जी को बता दिया कि अब उनके गलत-सही कार्यों पर वह चुपचाप मोहर नहीं लगाएगी।"[39]

प्रधानजी के माध्यम से उपन्यासकार ने वर्तमान राजनीति के विद्रूप चेहरे को पाठकों के सम्मुख रखा है। राजनीति के सबसे निचले क्रम अर्थात ग्राम पंचायत के स्तर की राजनीति की धरातलीय वास्तविकता यही है। गाँव का प्रभावशाली व्यक्ति अपने पूर्वजों के समय से चले आ रहे प्रभुत्व को अक्षुण्ण रखने के उद्देश्य से सरपंच या प्रधान का पद जीतता है। पाँच वर्ष बाद उसकी पंचायत यदि आरक्षित हो जाती है, तब वह अपनी बेटी, बहू और यहाँ तक कि अपने नौकर-चाकरों में से किसी को चुनाव लड़वाता है ताकि वास्तविक सत्ता उसी के हाथ रहे।

परन्तु शिक्षा और समझदारी के कारण एक परिवर्तन यह भी परिलक्षित हुआ कि विजयी प्रधान किसी के हाथ की कठपुतली नहीं बनना चाहता। वह पूर्व प्रधान की बहू ही क्यों

न हो? वह पूर्व प्रधान, जो केवल सत्ता का लालची है। डॉ. निशंक ने इस मानसिकता के लोगों का प्रधान जी के रूप में श्रेष्ठ वर्गीय चित्रण किया है:

"गाँव के प्रधान के घर पर माँ उसे लेकर गयी थी, ग्राम प्रधान जो सेवनिवृत्त फौजी भी थे, बड़ी-बड़ी मूँछों को ताव देते हुए छज्जे में बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे और विक्रम व उसकी माँ नीचे आँगन में खड़े थे। विक्रम को उस पल की दो बातें सदा याद रहीं, एक तो प्रधान जी की मूँछें और दूसरा उस जंगले की नक्काशी।"[40]

x x x

"अगले वर्ष ही पंचायत चुनाव होने थे, प्रधान जी कुछ सोचकर चुप रह गये। आखिर एक मास्टर से बिगाड़कर उन्हें राजनीतिक हानि के अलावा और कुछ मिलने वाला नहीं था।

प्रधान जी को उम्मीद थी कि इस बार भी वह किसी-न-किसी तरह चुनाव जीत ही जायेंगे। वोटों का गणित उन्हें अच्छी तरह मालूम था, उन्हें यह भी मालूम था कि गाँव के मास्टर और पोस्टमास्टर स्थानीय राजनीति के ध्रुव भी होते हैं, इनके कहने पर किसी का भी राजनीतिक गणित सुधर-बिगड़ सकता है।"[41]

राजनीति को कभी जन और जनता की सेवा का माध्यम माना जाता था। सारे नेतागण आज भी सेवा करने का यही राग आलापते हैं। एक बार मुझे सेवा का अवसर अवश्य दें'– जैसे सूत्र वाक्य बोलते, हाथ जोड़ते राजनीतिज्ञ प्रायः दृष्टिगोचर हो जाते हैं। ये लाखों करोड़ों रुपये व्यय कर सांसद विधायक बने तथाकथित जन सेवक अपने क्षेत्र का विकास भी मनोयोग से नहीं कर पाते। आजादी के 77 वर्षों के उपरान्त आज भी सैकड़ों ग्राम बिजली, पानी, सड़क, पुल जैसी सुविधाओं से वंचित हैं। डॉ. निशंक इस ओर संकेत करते हुए लिखते हैं:

"सड़क के लिए गाँव वाले जुट पड़े हैं। प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना से गाँव को जोड़ने की कवायद चल रही है। पर सरकारी काम है। कोई सुनने वाला नहीं न कोई धमकाने वाला।

नेताओं का भी बस चुनाव होने तक का नाता रहता है। कोई सुध ले तो काम हो भी। सालों से लटकी पड़ी है सड़क।"[42]

परन्तु सारे जन प्रतिनिधि समान नहीं होते। कुछ जन प्रतिनिधि सच्चे मन से जनता की सेवा करते हैं, वे अपना घर नहीं भरते, न शासन से कोई आर्थिक लाभ लेते हैं। इस प्रसंग में दो घटनाओं का उल्लेख करना चाहूँगी। दोनों ही ज्वलंत घटनाएँ हैं। पहली घटना वर्ष 2023 के दिसम्बर माह की है जिसमें राजनीति करने वाले झारखण्ड प्रदेश के एक राजनीतिक दल के राज्यसभा सांसद के राजमहलनुमा भवन से तीन सौ इक्यावन करोड़ की नकदी छापेमारी में बरामद हुई। जाँच समितियों के सम्मुख इस संपत्ति का विवरण संतोषजनक रूप से दे नहीं सके।

दूसरी घटना इसके ठीक विपरीत है। दिसम्बर 2023 में मध्यप्रदेश में विधानसभा के चुनाव हुए। इस चुनाव में सांसद विधानसभा क्षेत्र से एक विधायक– चेतन कश्यप निर्वाचित हुए और मंत्रिपरिषद में मंत्री बने। निर्वाचन के समय इन्होंने चुनाव आयोग के समक्ष अपनी सम्पति 296 करोड़ की घोषित की थी। इन्होंने सरकार को पत्र लिखकर घोषणा की है कि वे एक विधायक और मंत्री के रूप में मिलने वाले किसी भी वेतन भत्ते और सुख-सुविधाओं को स्वीकार नहीं करेंगे।

एक सच्चे राजनीतिज्ञ की यही है सच्ची जनसेवा। डॉ. निशंक की ऐसी ही आदर्श परिकल्पना 'प्रधान जी' के रूप में व्यक्त हुई है:

"आनन्दसिंह का जीवन तो जैसे गाँव वालों के लिए ही समर्पित था। सामाजिक सरोकार उन्हें विरासत में मिले थे। वह हमेशा गाँव की बेहतरी के ही सपने बुना करते। थे तो वह एक सामान्य से ग्रामीण। पर जनसमस्याओं और उनके निस्तारण की उन्हें गहरी समझ थी। यही नहीं, शासन-प्रशासन में कहाँ उन्हें मिलना है, कैसे काम कराना है, इस पर भी उनकी गहरी पकड़ थी। आये दिन वह उनके नुमाईदों से मिलकर कुछ-न कुछ काम कराते ही रहते। परन्तु ऐसे अपताद स्वरूप आदर्श राजनीति के उदाहरण अब कम होते जा रहे हैं।"[43]

डॉ. निशंक ने अपने उपन्यास में राजनीति के परिवर्तित होते जा रहे मूल्य एवं 'जनसेवा' में आ रही गिरावट के प्रति एक शब्द 'विनती' (अनुनय-विनय)के द्वारा गहरा व्यंग्य किया है।

केदारनाथ की भीषण त्रासदी पर आधृत उपन्यास– 'ज़िन्दगी रुकती नहीं' के एक पात्र कमल की व्यथा का उपन्यासकार ने चित्रण किया है। त्रासदी में कमल का परिवार बिछुड़ जाता है। अपनों की खोज में वह स्वयं परेशान है। परन्तु अपने गाँव की बसन्ती काकी के दुख से वह अपना दुख भूल जाता है। विवाह के पन्द्रह वर्ष बाद संतान प्राप्त काकी केदारनाथ आपदा के दो ढाई साल पूर्व विधवा हुई थी और त्रासदी के समय घर में निपट अकेली थी। उसके दोनों 25-23 वर्षीय बेटे केदारनाथ मार्ग पर खच्चरों से यात्री तथा सामान की ढुलाई का कार्य करते थे । पर सब लापता थे।

गाँव के एक घायल लड़के से उसे विदित होता है कि पत्थरों के गिरने से अनेक घर नष्ट हो गये। लोग वन में घरों से भागे। इस आपाधापी में हेलीकाप्टर से अनेक लोगों को खोजकर राहत शिविरों और चिकित्सा शिविरों में पहुँचाया गया। इन्हीं घायलों में वह लड़का था।

कमल के द्वारा इस कार्य में सहायता हेतु विधायक जी से गुहार की। ये वही विधायक थे, जिनके चुनाव में कमल ने 'बहुत मदद' की थी इनकी। इनके माध्यम से वह मंत्रीजी से 'विनती' करना चाहता था:

"तेरी तो मंत्री से पहचान है। एक बार मुझे मिला दे उनसे, मैं विनती कर लूँगा। मुझे एक बार गाँव के ऊपर के जंगल में हेलिकाप्टर से दिखा लें।"[44]

ये राजनीतिज्ञ पद पाते ही गर्व से चूर हो जाते हैं। पद पाने के पूर्व तक चुनाव जीतने के लिए 'जनता की सेवा करने के लिए सेवक' बनते हैं। फिर जनता को अपने सहज कार्यों को कराने के लिए इनसे 'विनती' करनी पड़ती है– 'सेवक' से मालिक(जनता) विनती करता है। वर्तमान राजनीति का कड़वा सच यही है।

(ग) धार्मिक परिवर्तन :

धर्म का स्वरूप भी परिवर्तनशील रहा है, किन्तु केवल बाह्य रूप ही। 'धारयेति इति धर्मः' के अनुरूप जो तत्व धारण करने योग्य हैं, वे तो शाश्वत हैं, अपरिवर्तनीय हैं। इन तत्वों पर देश-काल-वातावरण किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ता और इसका आधार है आस्था और श्रद्धा: "मनुष्य के अन्दर आस्था और श्रद्धा के भाव होना बहुत जरूरी है। श्रद्धा हमें आत्मबल और प्रेरणा प्रदान करती है। श्रद्धा ही हमें उत्कृष्ट कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।"[45]

इसी श्रद्धा के धारण करने के कारण ही डॉ. निशंक के तमाम औपन्यासिक पात्र श्रेष्ठ कार्य और मानवीय कार्य करने हेतु तत्पर रहते हैं और आदर्शों की स्थापना करने हेतु प्रयत्न करते रहते हैं। 'मेजर निराला' का निराला, 'बीरा' का दीपक, 'छूट गया पड़ाव' की सरोज, 'पहाड़ से ऊँचा' का मोहन और गीता, 'पल्लवी' का ध्रुव और पल्लवी, 'निशान्त' का निशान्त, 'भागोंवाली' के शास्त्रीजी, 'प्रतिज्ञा' की सुनीता, 'अपना-पराया' के पांडेजी और राहुल, 'कृतघ्न' का अम्बुज तथा 'ज़िन्दगी रुकती नहीं' के विक्रम और कमल ऐसे पात्र हैं जो धर्म के आदर्श रूप की स्थापना के लिए कटिबद्ध हैं और उसके लिए पौरुष करते हैं।

डॉ. निशंक यद्यपि आदर्शवादी हैं और इसीलिए उन्होंने अपने कथा साहित्य में; विशेष रूप से उपन्यास साहित्य में आदर्श की स्थापना का उद्यम किया है। परन्तु वे 'दिनकर' की इन पंक्तियों से भी प्रेरित हैं:

"क्षमा, दया, तप, त्याग मनोबल
सबका लिया सहारा
पर नर व्याघ्र सुयोधन तुमसे
कहो, कहाँ, कब हारा ?

क्षमाशील हो रिपु-समक्ष
तुम ये विनत जितना ही,

दुष्ट कौरवों ने तुमको
कायर समझा उतना ही

अत्याचार सहन करने का
कुफल यही होता है
पौरुष का आतंक मनुज
कोमल होकर खोता है

क्षमा शोभती उस भुजंग को
जिसके पास गरल हो
उसको क्या जो दंतहीन
विषरहित, विनीत सरल हो॥"[46]

भारत के प्राचीनतम धर्म ग्रंथों और शस्त्रों में यह तथ्य अत्यन्त स्पष्ट रूप से उल्लेखित है कि शस्त्र उठाने के पूर्व शास्त्र सम्मत सुलह की और समझदारी की बात होनी चाहिए। कौरव, पांडवों को पाँच गाँव भी देने को तैयार न थे, परिणामतः युद्ध हुआ। सीता की वापसी हेतु राम ने अनेक विनम्र और अहिंसक प्रयास किये, परन्तु उन्हें भी अंततः हिंसा करनी पड़ी और रावण का वध करना पड़ा। राम तीन दिन तक हाथ जोड़कर समुद्र से मार्ग देने की प्रार्थना करते रहे। राम की विनम्रता का समुद्र पर कोई असर नहीं हुआ। अंततः समुद्र के विरुद्ध धनुष उन्हें भी उठाना पड़ा:

"विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीत।
बोले राम सकोप तब, बिन भय होय न प्रीत॥
लछिमन बान सरासन आनू।

सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू॥
सठ सन विनय, कुटिल सन प्रीती,
सहज कृपन सन, सुंदर नीती॥
ममता रत सन ज्ञान कहानी,
जिमि लोभी सन विरति बखानी॥
क्रोधहिं सम, कामहीं हरि कथा।
ऊजर बीज बये भल जथा॥
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा।
यह मत लछिमन के मन भावा॥
संधानेऊ प्रभु बिसिख कराला।
उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला।।"[47]

'रामचरित मानस' के उपर्युक्त प्रसंग से स्पष्ट है कि भय के बिना प्रीति नहीं हो सकती। आशय यह है कि– तीन दिन विनय करते-करते हो गये परन्तु जड़ समुद्र ने राम की प्रार्थना स्वीकार नहीं की । तब राम क्रोध से भरकर बोले– बिना भय दिखाए प्रीति नहीं होती।

हे लक्ष्मण! धनुष बाण लाओ। मैं अग्निबाण से समुद्र को सूखा दूँगा। मूर्ख से विनय करने पर, कुटिल के साथ प्रेम-व्यवहार करने पर, सहज रूप से जो कंजूस प्रकृति का है, उसे नीति के उपदेश देने से कोई लाभ नहीं होता।

इसी प्रकार ममता में फँसे मनुष्य से ज्ञान की कथा कहना, लोभी से वैराग्य का वर्णन करना, क्रोधी से शान्ति की अपेक्षा करना और कामप्रिय व्यक्ति से प्रभु की कथा कहना व्यर्थ है। बंजर भूमि पर बीज बोना ही व्यर्थ है।

ऐसा कहकर राम ने समुद्र पर धनुष-बाण साध लिया। इस प्रक्रिया से लक्ष्मण प्रसन्न हुए। धनुष-बाण साधने पर समुद्र से विकराल ज्वाला उठने लगी।

'रामचरितमानस' के उपर्युक्त प्रसंग और दिनकर की कविता से पूरी तरह प्रभावित है– डॉ. निशंक के उपन्यास 'प्रतिज्ञा' की नायिका – सुनीता।

उपन्यास का प्रतिनायक कुलदीप अनैतिक कार्यों को करने का अभ्यस्त हो चुका है। वह गाँव और गाँव के आसपास के युवाओं को शराब के अवैध कारोबार में ढकेल कर उन्हें पथभ्रष्ट कर रहा है:

"गाँव और आसपास का माहौल तेजी से बदल रहा था। शाम होते ही नशे में चूर लोगों के आपसी झगड़े और गाली-गलौज के स्वर अक्सर सुनाई पड़ते। बुजुर्गों और महिलाओं ने शाम होते ही घर में सिमट जाना सीख लिया था। कभी इधर तो कभी उधर घर-गाँव में हर तरफ बहू-बेटियों, लड़कियों और महिलाओं से छेड़छाड़ की घटनाएँ बढ़ती ही जा रही थीं।

ईमानदार और मेहनती नवयुवक एक बार फिर शहरों में रोजगार के अवसर तलाशने लगे थे तो शराब से जुड़े व्यवसायों की पौ बारह थी। इस माहौल से अगर किसी को सबसे ज्यादा फर्क पड़ा था तो वे थीं महिलाएँ और लड़कियाँ। अधिकतर गाँवों में आठवीं तक का ही स्कूल होने के कारण लड़कियों को आगे की पढ़ाई के लिए मीलों दूर जाना पड़ता। रास्ते में जंगल भी पड़ते तो गाड़-गधेरे भी। अत्यधिक शराब के सेवन के कारण मतिभ्रष्ट और संस्कारहीन हुए युवा उनसे अभद्रता करने से नहीं चूकते। एक-दो बार जब इस तरह की घटनाएँ हुई तो माता-पिता ने लड़कियों को आगे की पढ़ाई के लिए स्कूल भेजना ही बन्द कर दिया।

महिलाएँ अपने शराबी पतियों से भी कम परेशान न थीं। देर रात नशे में लड़खड़ाते हुए घर में घुसना और फिर हंगामा खड़ा कर देना आम बात हो गयी थी। अब तो कुछ लोग बीवी-बच्चों से मारपीट पर भी उतर आते।"[48]

उपर्युक्त लम्बा चौड़ा उद्धरण पढ़कर पाठक यह सोचने पर विवश हो जाता है कि वह रावण राज्य का वर्णन पढ़ रहा है और यह अत्याचार कभी दूर होगा नहीं– ऐसा ही अंधेरा रहेगा और ऐसे ही धर्म का क्षय होता रहेगा, अधर्म बढ़ता रहेगा।

परन्तु उपन्यास की नायिका सुनीता इस भ्रम को तोड़ती है। प्रतिनायक कुलदीप के द्वारा सृजन इस रावणी संजाल को ध्वस्त करने के क्रम में सुनीता का पति वीरू कुलदीप के आदमियों के द्वारा मारा जाता है। कुलदीप के प्रभाव और आतंक के कारण कोई उसके विरुद्ध साक्ष्य देने को तैयार नहीं होता। परिणामतः उसका आतंक और अधिक बढ़ जाता है। ऐसी विषम परिस्थितियों में सुनीता स्वयं इस आतंक को समाप्त करने का केवल प्रण ही नहीं करती, अपितु उसे हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त कर देती है:

"सुनीता आगे बढ़ी और कुलदीप के पास आ खड़ी हो गयी। उसकी आँखें अंगारे उगल रही थीं। चेहरा देदीप्यमान था, मानों साक्षात देवी शक्तिस्वरूप का अवतार रख धरती पर उतर आयी हो।

कोई कुछ समझ पाता, इससे पहले ही सुनीता की चारों सहेलियों ने द्वार बन्द कर दिया। दो महिलाएँ वहीं पर खड़ी रहीं, जबकि बाकी दो सुनीता के पास आ गयीं। सुनीता ने दोनों हाथ जोड़ दिये। उपस्थित लोगों के चेहरे पर निराशा छा गयी। तो सुनीता ने माफी माँग ही ली। कुछ देर पहले सुनीता के रूप से भयभीत हुआ कुलदीप प्रसन्नचित्त हो उठा।

लेकिन अचानक ही 'जय देवी माँ' के उद्घोष के साथ कमर में यत्न से छुपायी गयी दराँती निकाल कुलदीप पर ताबड़ तोड़ प्रहार शुरू कर दिये।

अपनी सफलता के मद में चूर कुलदीप संभल भी न पाया। सम्भलने की कोशिश की तो सुनीता की सहेलियों ने उसे घेर लिया। सब कुछ इतना अप्रत्याशित था कि किसी की समझ में कुछ न आया। लोगों की साँसें जहाँ की तहाँ अटकी रह गयीं।

सामने अविश्वसनीय दृश्य था। थोड़ी ही देर में कुलदीप का रक्तरंजित शव पंचायत हॉल में पड़ा था।"[49]

श्रीमद्भागवत्गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए कृष्ण ने स्पष्ट उद्घोषणा की है कि जब-जब भी धर्म की हानि होती है, तब-तब मैं अवतार धारण कर सज्जनों के दुखों को दूर करता हूँ और दुष्कृत्य करने वालों का संहार करता हूँ। इस प्रकार मैं हर युग में अवतार धारण कर धर्म की पुनर्स्थापना करता हूँ–

"यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम सृज्याहम॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे।।"[50]

जो बात श्रीमद्भागवत्गीता में कृष्ण के द्वारा कहि गयी है, वही रामचरितमानस में भी उपस्थित है :

"जब जब होई धरम कै हानी।
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध शरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।"[51]

अब इस 'बिबिध शरीरा' में सुनीता की देह भी हो सकती है, जिसे धारण कर कुलदीप जैसे अत्याचारी को समाप्त कर उसके और उसके सहयोगियों का आतंक समाप्त किया गया।

डॉ. निशंक के समस्त ग्यारह उपन्यासों में 'प्रतिज्ञा' ही अकेला ऐसा उपन्यास है, जिसे हिन्दू धर्म की समुचित व्याख्या के रूप में देखा जा सकता है।

(घ) आर्थिक परिवर्तन :

अर्थ, मानव-जीवन का महत्वपूर्ण अवयव है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष- इन चार पुरुषार्थों में अर्थ का क्रम द्वितीय है। अर्थ का अर्जन व्यापार, वाणिज्य एवं विभिन्न श्रम कार्यों से होता है।

समय-समय पर इस अर्थार्जन के स्रोत बदलते रहे हैं। अर्थ के उपार्जन का ग्रामों में मूल स्रोत कृषि, बागवानी और पशुपालन हुआ करता था। लोगों की आवश्यकताएँ सीमित हुआ करती थीं। इसलिए कम आय में भी वे प्रसन्न रहा करते थे। एक संतुष्टि का भाव सदैव ग्रामीणों के हृदय में हुआ करता था। वे अधिक पाने के अभिलाषी नहीं थे।

परिवर्तित समय में एक और क्रांतिकारी कार्य परिलक्षित हुआ। पहले नारी शक्ति का कार्य घर की चहारदीवारी तक था। अधिक हुआ तो कृषि कार्यों के लिए खेतों तक अपना योगदान करती थीं, घास और लकड़ी लाती थीं तथा पशु उत्पाद– दूध निकालना, दूध से छाछ, दही, घी, मक्खन आदि निकालने में ये सहयोग करती थीं।

परन्तु लड़कियाँ अब शिक्षा प्राप्त कर सरकारी नौकरी कर रही हैं। निजी नौकरी कर रही हैं और परिवार को आर्थिक दृढ़ता प्रदान कर रही हैं। इतना ही नहीं, डॉ. निशंक अपने उपन्यासों के स्त्री पात्रों को 'बेचारगी' से बाहर निकालते हैं और उन्हें आर्थिक स्वावलम्बन प्रदान करते हैं। 'बीरा' उपन्यास की नायिका बीरा नर्स का प्रशिक्षण प्राप्त करती है और नर्स की नौकरी करती है:

"उन्हीं दिनों नर्सिंग कोर्स के लिए प्रवेश हो रहे थे। इस कोर्स को बीरा गाँव के पास ही छोटे शहर जाकर भी कर सकती थी। खर्चा भी अधिक नहीं था। उसे बीरा के लिए यही व्यावसायिक कोर्स सर्वाधिक उपयुक्त लगा। दीपक के मार्गदर्शन और उसकी प्रेरणा से बीरा गाँव छोड़ कर नर्सिंग का कोर्स करने शहर आ गयी थी। एक वर्ष का कोर्स पूरा करते ही बीरा की नियुक्ति उसके गाँव के पास ही हो गयी।"[52]

'छूट गया पड़ाव' की नायिका सरोज, सरकारी शिक्षिका है, और दुर्गम पहाड़ी ग्राम-बिनगढ़ में नौकरी करती है। 'पल्लवी' उपन्यास की नायिका अपने सैनिक पति– ध्रुव के शहीद होने पर स्वयं ही फौज में भरती होती है और अधिकारी बनती है:

"अरे वही पल्लवी, देविधार के शहीद कैप्टन ध्रुव की पत्नी जिसने पति की शहादत की सम्मान राशि भी लौटा दी थी और आज खुद भी फौज में कमीशन पाकर कप्टन बनकर लौट रही है।"[53]

'कृतघ्न' उपन्यास की पूनम, सुकन्या और गुंजन तीनों जीवन में संघर्ष करते हुए पढ़ाई करती हैं और आत्मनिर्भर बनती हैं:

"नौकरी मिलना बहुत आसान तो न था, लेकिन अम्बुज की मदद से पूनम को एक प्राइवेट अस्पताल में नौकरी मिल ही गयी। वेतन अधिक न था, लेकिन आश्रम में रहते स्वयं का खर्चा तो चला ही सकती थी वह।"[54]

'अपना पराया' उपन्यास की अनीता संघर्षों को झेलते हुए पढ़ती है। विवाह के पश्चात विधवा होने पर अनुकंपा नियुक्ति प्राप्त करती है और शिक्षिका बनती है। 'निशान्त' उपन्यास की मिताली भी कम संघर्ष नहीं करती। वह ट्यूशन करते हुए अपने छोटे भाई-बहिन को पढ़ाती है, स्वयं पढ़ती है और शिक्षिका की नौकरी भी करती है:

"पिता के मित्र की सलाह पर उसने पिता के स्थान पर नौकरी हेतु आवेदन कर दिया। उसके घर की स्थिति को देखते हुए लड़कियों के एक स्कूल में विभाग द्वारा उसे अध्यापिका की नौकरी दे दी गयी थी।"[55]

डॉ. निशंक के उपन्यासों के समस्त स्त्री पात्र जो नौकरी करते हैं वे या तो स्वास्थ्य विभाग में नर्सिंग कार्य करते हैं अथवा शिक्षिका का कार्य करते हैं। उपन्यासकार का मत है कि:

"पहाड़ में लड़कियों के लिए एकमात्र सर्वाधिक व्यवसायिक कोर्स था बी.टी.सी.। रोजगार की गारंटी के कारण सुविधा सम्पन्न घरों की लड़कियाँ तक इसमें प्रवेश लेने को लालायित रहतीं। प्रवेश परीक्षा होने के कारण अब इसमें प्रवेश कठिन हो चला था। और दो वर्ष की पढ़ाई समाप्त होते ही ठक से प्राथमिक विद्यालय में अध्यापिका की नौकरी मिलना पक्का था। इससे ज्यादा क्या चाहिए था पहाड़ की संतोषी लड़कियों को?"[56]

आर्थिक संसाधनों की परम्परागत परिपाटी को अब लोग त्याग रहे हैं। इसके अनेक कारण हैं। प्रथम, परिवारों की सदस्य संख्या में वृद्धि, दूसरे संयुक्त परिवारों का विघटन, तीसरे, नवीन शिक्षा और तकनीकी शिक्षा का प्रसार, चौथे, परम्परागत कृषि और सम्बन्धित कार्यों में श्रम व लागत अधिक लाभ कम होना, पाँचवा, युवाओं का ग्रामों से मोहभंग और शहरी वातावरण का आकर्षण, छठा, आवश्यकताओं की वृद्धि आदि ऐसे अनेक कारण हैं जिन्हें उपन्यासकार डॉ. निशंक ने परिवर्तित आर्थिक लोक चेतना के रूप में अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

गाँवों के युवा रोजगार की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। शहरों में स्थित बड़े-बड़े कारखानों में काम करते हुए इनका समय व्यतीत होता है। केवल युवा ही नहीं, ग्रामों के हुनरमंद लोगों ने भी गाँव छोड़कर शहरों में अपना व्यवसाय प्रारम्भ कर लिया है–

"अरे पिताजी, यहाँ सब मिलता है। पहाड़ से आये हुए लोगों ने भी यहाँ पर अब अपना व्यवसाय जमा लिया है। उनके यहाँ पहाड़ का सब कुछ मिलता है।"[57]

परम्परागत आर्थिक संसाधनों और उसके परिवर्तित स्वरूप को डॉ. निशंक ने अति निकट से देखा है। उसका सटीक विश्लेषण करते हुए लिखते हैं:

"तीनधारा में बस रुकी। छोटी सी जगह है। कभी यहाँ पर पहाड़ी से निकलते शीतल जल के तीन धारे हुआ करते थे। उन्हीं धारों के अगल-बगल ककड़ी, खीरा, मकई और जल जीरा की अस्थाई दुकानें लगाकर स्थानीय गाँव भरपूर के कुछ लोग अपना व्यवसाय करते थे। समय बदला, वनों के अत्यधिक दोहन, पर्यावरण असंतुलन और खनन आदि अन्य कारणों से जल के स्रोत नीचे बैठ गये हैं। अब यहाँ पर तीन धारे तो नहीं हैं। अलबत्ता कई जगह पहाड़ी से पानी की बारीक धार और कई जगह से पानी टपकता हुआ प्रतीत होता है। खीरा, मकई और जलजीरे का व्यवसाय छोड़कर अब लोगों ने यहाँ पर बड़े-बड़े होटल बना लिये हैं। यहाँ पर अब यात्री खाना खाते हैं।"[58]

उपर्युक्त उद्धरण में खीरा, मकई, जलजीरा–परम्परागत व्यवसाय के प्रतीक हैं। 'बड़े-बड़े होटल बना लेने' का संकेत परम्परागत व्यवसाय को विस्थापित कर नवीन आर्थिक स्रोतों को दर्शाते हैं।

पहले वर्णित किये गये तमाम कारणों से ग्रामीण क्षेत्रों का आर्थिक अवदान कम हुआ है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली भी रोजगारोन्मुखी नहीं है। केवल डिग्रियों तक सीमित हैं। डॉ. निशंक इस पर प्रकाश डालते हैं:

"चाय के खोमचों में दिन भर इस तरह खाली बैठे रहना उसे ही क्या, किसी भी नौजवान को इस उम्र में अच्छा नहीं लग सकता। पहाड़ में लाख हाथ-पैर मारते हुए भी रोजगार नहीं मिल सकता। खेती इतनी है नहीं कि उसके भरोसे पूरे जीवन भर यहाँ टिका जा सके।

कमरतोड़ मेहनत और खाने को मात्र चार महीने का राशन भी नहीं निकलेगा खेती से। उसे अपने बाबू जी की बात उचित ही जान पड़ती कि पहाड़ से व्यक्ति काले बाल लेकर जाता है और फिर सफेद बाल लेकर लौटता है। परिवारजन पहाड़ में तो खुद परदेश में। उधर नौकरी की अनिश्चितता की चिंता तो इधर घर की चिंता।"[59]

नौकरी की यह अनिश्चितता इसलिए है कि शिक्षा डिग्री आधारित है :

"परन्तु सचाई यही है कि बी.ए.एम.ए पास लड़के भी दिन भर दिल्ली में कार्यालयों में चक्कर लगाते हैं। हमारे पहाड़ के लड़के के पास नाममात्र की डिग्री होती है। न कोई तकनीकी डिग्री है और न ही कोई अनुभव, ऐसे में कौन पूछता है वहाँ? मैं भी आई.टी.आई से रेडियो, टी वी मैकेनिक ट्रेड से ट्रेनिंग करना चाहता था, किन्तु वहाँ अध्यापक न होने के कारण मैंने वहाँ जाना उचित नहीं समझा। अब सोचता हूँ कि वैसे ही कर लेना चाहिए था। कम से कम डिग्री तो होती।"[60]

डॉ. निशंक को जहाँ-जहाँ भी और जब-जब भी अवसर प्राप्त हुआ है, आर्थिक पक्ष को व्यावहारिक धरातल पर देखकर विश्लेषित किया है। केवल उत्पादन से नहीं, अपितु रोजगार

का भी अर्थ व्यवस्था से सीधा सम्बन्ध है। पहाड़ों क्षेत्र के गावों में बेरोजगारी अधिक है अतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था भी तदनुसार दुर्बल है। यद्यपि सड़क, यातायात, बिजली आदि अधोसंरचना गाँव में पहुँचनी प्रारम्भ हुई है और पहुँची भी है। इन सबसे ग्राम्य लोक की आर्थिक दशा परिवर्तित हुई है। फिर भी आधुनिक विकास क्रम में परम्परागत रोजगार को विस्मृत नहीं किया जाना चाहिए:

"गाँव के अधिकांश लोगों का रोजगार भी इस धार्मिक पर्यटन पर ही आधारित है। कहीं कोई फूल-मालाएँ बेंचता, कोई प्रसाद की थालियाँ तो कोई रिंगाल से बनी हुई छोटी-छोटी टोकरियाँ। इसी छह-सात माह के यात्रा-काल में वे वर्षभर की आजीविका कमा लेते हैं।"[61]

परन्तु परिवर्तित समय में अब इसका रूप यह हो गया:

"अब तो पिछले कुछ समय से बढ़ते शहरीकरण और मशीनीकरण ने पारम्परिक कलाकारों और हुनरमंदों को भुला-सा दिया था। ढोल-दमाऊ के स्थान पर ईंट और सीमेंट के मकान बनने लगे। आजीविका के इस संकट ने सबको मजदूरी करने पर मजबूर कर दिया।"[62]

डॉ. निशंक ने लोक की आर्थिक चेतना में जो भी परिवर्तन हुए अथवा दृष्टिगोचर हो रहे हैं, उन सबको अपने उपन्यासों में पात्रों के द्वारा तथा घटनाक्रमों के द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से विश्लेषित करने का सार्थक एवं सफल प्रयत्न किया है।

(ङ) सांस्कृतिक परिवर्तन :

प्रायः संस्कृति और सभ्यता को एक समझ लिया जाता है, पर दोनों में पर्याप्त अन्तर है। संस्कृति किसी भी देश, जाति और समुदाय की आत्मा होती है। संस्कृति से ही देश, जाति या समुदाय के उन समस्त संस्कारों का बोध होता है, जिनके सहारे वह अपने आदर्श जीवन मूल्यों का निर्धारण करता है।

सभ्यता-बाह्य क्रिया-कलापों से उत्पन्न होने वाली उन वस्तुओं का नाम है, जो मनुष्य की सुरक्षा और स्वतंत्रता का कारण होती है। सभ्यता का निर्माण करके मनुष्य ने जीवित रहने

की कठिन प्रक्रिया को रोचक तथा सम्पूर्ण बनाया है। संस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य के आंतरिक विकास से है, जैसे हमारी सोच, चिंतन, विचारधारा आदि। संस्कृति का क्षेत्र सभ्यता से कहीं अधिक व्यापक होता है। भौतिक स्तर बाह्य जीवन का विकास है, जैसे रहन सहन, खान-पान, बोलचाल आदि। यही कारण है कि सिंधु घाटी की सभ्यता को सभ्यता कहा जाता है, सिंधु घाटी संस्कृति नहीं। सभ्यता में मनुष्य के राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, प्रौद्योगिकीय और दृश्य कला जैसे स्वरूप शामिल होते हैं जो मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। इसी प्रकार संस्कृति किसी विशेष समाज के दृष्टिकोण, रीति-रिवाज, सामाजिक दृष्टिकोण और उद्यम को जोड़ती है।

यद्यपि संस्कृति अपरिवर्तनशील होती है। तथापि परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है। परिवर्तन संस्कृति में भी परिलक्षित होता है। भारतीय संस्कृति में तो परिवर्तन परिलक्षित होता ही है, लोक संस्कृति में भी परिवर्तन परिलक्षित होता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अति विकसित रूप का प्रभाव लोक संस्कृति पर भी पड़ा है और परिवर्तन उसमें भी हुआ है। बाजारवाद की गिरफ्त में लोक संस्कृति भी आ चुकी है। पश्चिमी सभ्यता और आधुनिकता का लोक पर प्रभाव पड़ा है।

सन् 1989 में प्रसिद्ध लोक संस्कृतिविद डॉ. कृष्ण बलदेव ने अपनी पुस्तक- 'भोजपुरी लोकसंस्कृति' में एक घटना का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि–

"अब मनु द्वारा स्थापित चार वर्गों में सभी निम्न वर्गों में अपने आप को उच्च वर्ग का बताने की होड़ लगी है। नाइयों का कहना है कि हम लोग पहले ब्राह्मण थे, परन्तु क्षौर कर्म को पेशे के रूप में स्वीकार करने के कारण नाई हो गये। ऐसे लोग अपनी जाति 'नाई ब्राह्मण' बताने लगे।"[63]

यह तो लोक संस्कृति में हो रहे परिवर्तन का एक उदाहरण मात्र है। स्वतंत्रता के पश्चात नवीन शिक्षा प्रणाली, उन्नत विज्ञान आदि के कारण स्थापित लोक संस्कृति में आमूल-

चूल परिवर्तन हुए हैं। इन सांस्कृतिक विकृतियों से आहत होकर डॉ. गोविंद चातक ने लिखा था–

"भोगवादी प्रवृत्ति का शिकार होने वालों में नारी और युवा वर्ग तो है ही, लोक जीवन पर भी उसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। लोकगीत, लोकनृत्य और लोक कला लोक जीवन की सबसे बड़ी धरोहर होते हैं....। जो गीत कभी हमको हमारी जमीन, हमारी परम्परा, तीज-त्यौहार, मेले-ठेले, ऋतु पर्व, आल्हा और कजरी से दुख और दर्द से, मांगल्य और उल्लास से जोड़ते थे, वे आज उपभोक्तावादी संस्कृति के अवैध सम्बन्धों के नीचे छटपटा रहे हैं।"[64]

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक हैं। संस्कृति का आयाम कोई भी हो, उन्हें यह पसन्द नहीं कि उसके भीतर अन्य विदेशी तत्व प्रवेश करें। होली, दशहरा, दीवाली, कृष्णजन्माष्टमी तथा रामनवमी जैसे पर्व व्यक्त तो हैं ही, इनमें 'जन' के साथ 'लोक' की सामूहिक चेतना भी समाविष्ट है। प्रायः ऐसा कम ही होता है कि किसी गाँव के किसी लड़के या लड़की की विशिष्ट उपलब्धि पर सामूहिक गाँव आनन्दित होकर पर्व-उत्सवों की भाँति खुशियाँ मनाए। 'पल्लवी' उपन्यास की नायिका 'पल्लवी' के मिलिट्री अफसर बनकर गाँव लौटने पर समूचा गाँव आनन्दित होकर ढोल नगाड़ों एवं डी.जे. के दमघोंटू कानफाड़ संगीत की अभिव्यक्ति के द्वारा खुशी की अभिव्यक्ति करता है –

"देवी धार की रौनक आज देखने लायक थी। हवाओं में हर तरफ तैर रहा था फागुनी उल्लास। बीच-बीच में ढोल-मंजीरों की आवाज, गितारियों के मदमस्त गीत और श्रवण की टोली की तान इसमें और मस्ती घोल रही थी। पहाड़ की धार पर बसा ये गाँव आज दुल्हन की तरह सजा था। बहू-बेटियाँ पारम्परिक पोशाकों में स्वागत की तैयारियों में लगी थी। गाँव के आधे लोग तो इस समय डॉलूडांडा बस अड्डे पर बेसब्री से इन्तजारी में थे। पूरा गाँव खुशी में झूम रहा था। उनकी खुशी थी – पल्लवी, जो आज बहू ही नहीं, पूरे गाँव की बेटी बन गयी थी....।"[65]

इस उत्सव का वातावरण तक तो ठीक था। परन्तु उत्सव की पोशाक भी भारतीय गौरव और गरिमा के अनुरूप होनी चाहिए, जो थी। उपन्यासकार ने अपने इस मन्तव्य को उपर्युक्त उद्धरण में 'बहू-बेटियाँ पारम्परिक पोशाकों में' से अभिव्यक्त किया है। भारतीय संगीत को प्रदूषित कर रही विदेशी तर्ज पर बजने वाला डी.जे. का शोर उन्हें पसन्द नहीं:

"बाहर युवा ढोल की थाप और ठेठ पहाड़ी मुजरों पर जमकर थिरक रहे थे। पल्लवी को शहरी डी.जे. इसके आगे बिल्कुल फीका और उबाऊ लग रहा था।"[66]

संगीत, भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है– केवल भारतीय संगीत। डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' अपनी संस्कृति में मिश्रण के सर्वथा विरोध में हैं। पल्लवी के उपर्युक्त कथन के द्वारा डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के मन्तव्य की पुष्टि होती है। भारतीय लोक-संगीत के मूल रूप में डॉ. निशंक किसी प्रकार की मिलावट के पक्षधर नहीं। डी.जे. जैसे वाद्ययंत्रों के वे घोर विरोधी हैं। लोकसंस्कृति में परिवर्तन का यह पहला चरण है।

हिन्दू धर्म के सोलह संस्कारों में अन्तिम संस्कार है– अन्त्येष्टि संस्कार। इस संस्कार में सामान्यतः हिन्दू धर्म में शव को जलाये जाने का प्रावधान है। अन्य समाजों में दफनाने का प्रावधान है। चूंकि यह मनुष्य जीवन का अन्तिम संस्कार होता है, इसीलिए लोग इसे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पूर्ण करते हैं। उत्तरांचल के पहाड़ी क्षेत्रों में भी वहाँ के निवासी अपनी संस्कृति और परम्परा के अनुसार अन्तिम संस्कार करते हैं–

"पहाड़ के अधिकांश गाँवों में अन्तिम संस्कार अभी तक भी नदियों अथवा गाड़ गधेरों के किनारे किये जाते हैं। हमारे गाँव का मुर्दाघाट भी खांकरा के नजदीक अलकनन्दा नदी के किनारे है। गाँव से लोग अर्थी उठाकर पगडंडी से पैदल चलते हुए खांकरा पहुँचते हैं। यही कोई दो मील के लगभग पैदल होगा।"[67]

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अन्तिम संस्कार विभिन्न प्रकारों से किये जाते हैं। पूर्वोत्तर भारत के राज्यों– असम, अरुणाचल, त्रिपुरा,मिज़ोरम, नागालैण्ड, मेघालय, सिक्किम और

मणिपुर की अनेक जनजातियों में मृतक को अन्तिम संस्कार के रूप में दफनाते हैं और कुछ लोग जलाते हैं। भारत के कुछ क्षेत्र के आदिवासियों में अभी तक अन्तिम संस्कार के समय शराब के सेवन करनी की सहज परम्परा है। परन्तु शराब सेवन की परम्परा केवल आदिवासियों में ही नहीं बल्कि भारत के अन्य वर्गों में भी यह कुप्रवृत्तियाँ दिख जाती हैं:

"पिताजी ने अपनी दादी के अन्तिम संस्कार के लिए एक नयी प्रथा शुरू कर दी। शवयात्रा के लिए उन्होंने बड़ी बस बुक करवायी थी, जिसमें बैठकर पच्चीस मील का सफर तय करके शव यात्रा खांकरा पहुँची।

शाम को जब शवयात्री अपने-अपने घर में पहुँचे तो अधिकांश शराब के नशे में धुत थे। यह देखकर माँ आगबबूला हो गई। घर में यूँ तो मुर्दा मरा था और मुर्दाफ़रोश नशे में धुत थे।"[68]

लोक में जब परिवर्तन होते हैं तो समाज के प्रत्येक अंग में यह परिलक्षित होता है। विवाह संस्कार भारतीय संस्कृति का एक पावन अंग है। डॉ. निशंक के विभिन्न उपन्यासों के द्वारा यह दर्शाया गया है कि समाज का आकार-प्रकार प्रायः एक-सा नहीं रहता। प्रत्येक सामाजिक संरचना परिवर्तन के अधीन है।

पहाड़ी जीवन में लोक को डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने यथावत शब्द तो दिये ही हैं, उनमें हो रहे परिवर्तनों को भी उपन्यासकार ने पढ़ा है, समझा है और विश्लेषित किया है।

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' की लोक-सांस्कृतिक दृष्टि प्रधान रूप से ग्राम्य-दर्शन पर आधृत है। नगरीय संस्कृति का स्पर्श तो उन्होंने प्रसंगवश ही किया है। परन्तु संस्कृति लोक की हो अथवा ग्राम्य की इन सब में एक ही धारा प्रवाहित हो रही है– मानवता की स्थापना की। ईश्वर की आराधना से आम जन की व्यथा के बोझ का भार कुछ कम हो जाता है:

"गरीबी और अभाव को प्रभु की निकटता से जोड़कर हमने ऐसी प्रभावशाली परिभाषा गढ़ रखी है कि उनमें अभावग्रस्त जीवन की कुंठा और असंतोष न उपजे। उस कष्टकारी स्थिति में भी संतोष का परमभाव बना रहे।"[69]

यह परमभाव का पुष्ट होना ही संस्कृति का मूल तत्व है।

संस्कृति का एक और मूल तत्व है– सबके प्रति सम्वेदनशील होना। यह सम्वेदनशीलता यदि केवल अपनों के लिए है तो यह स्वस्थ संस्कृति नहीं है:

"हमारी संस्कृति ने हमें सिखाया है कि दिल की यह छटपटाहट अपने और अपनों के लिए ही नहीं, सबके लिए होनी चाहिए। हम सबको मिलकर यहाँ आपदा पीड़ितों की मदद करनी है। इसीलिए नकारात्मक नहीं, सम्वेदनशील बनो। नकारात्मकता विध्वंस का प्रतीक है और सम्वेदनशील होना सृजन का। प्रकृति इसी सम्वेदना और सृजन से चलती है। नकारात्मक सोच से ज़िन्दगी रुक जाती है और जिजीविषा एवं सम्वेदनशीलता से ज़िन्दगी कभी रुकती नहीं। चलती रहती है, बढ़ती रहती है।"[70] परन्तु संस्कृति के इन दोनों मूल तत्वों के स्वरूप में भी परिवर्तन परिलक्षित होने लगा है। डॉ. निशंक के समस्त उपन्यासों में संस्कृति के सात्विक तत्व विद्यमान हैं, परन्तु इसके जो नकारात्मक बिन्दु हैं, उनका चित्र भी डॉ. निशंक के उपन्यासों में उपस्थित है।

सब कुछ परिवर्तनशील है। जो कल था, आज नहीं है, जो आज है, कल नहीं रहेगा। प्रकृति के परिवर्तित रूप के साथ-साथ मानवीय क्रियाकलाप परिवर्तित होते हैं, उसकी गतिविधियाँ परिवर्तित होती हैं। यह परिवर्तन जीवन के प्रत्येक अंग में होता है। रचनाकार इस परिवर्तन को अपनी दृष्टि से ग्रहण कर उसके ऋणात्मक और धनात्मक दोनों रूपों में विश्लेषित करता है। इस विश्लेषण से प्राप्त समाजोपयोग और जनोपयोग तथ्यों को वह ग्रहण करता है, शेष को अनुपयोगी समझकर त्याज्य कर देता है।

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' अत्यन्त सजग उपन्यासकार हैं। उनके उपन्यासों में यह लेखकीय सजगता पग-पग पर परिलक्षित है। डॉ.निशंक मूलतः लोक के कुशल चितेरे हैं। इनके उपन्यास साहित्य के समूचे कथानक पहाड़ी जन जीवन पर केन्द्रित हैं। पहाड़ी जन-जीवन का नैसर्गिक सौन्दर्य, निश्छल जीवन चर्या, जो है और जितना है, उसी में संतुष्टि, अधिक के लिए किसी के साथ छल न करना आदि पहाड़ी लोक की विशेषताएँ हैं। परन्तु परिवर्तनशील समय

के अनुरूप पहाड़ी जनजीवन में भी परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक चेतना के रूप में परिलक्षित होता है। डॉ. निशंक के पुरुष औपन्यासिक पात्र इन परिवर्तनों के पक्षधर हैं। इसी प्रकार इनके प्रायः समस्त नारी पात्र न केवल समाज में सकारात्मक परिवर्तन के पक्षधर हैं अपितु उसके क्रियान्वयन हेतु उद्यम भी करते हैं। लोक का विस्तार जहाँ तक है– नगर और ग्राम (विशेष रूप से), वहाँ की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक चेतना में जो परिवर्तन हुए हैं या हो रहे हैं, उनका सूक्ष्म वर्णन डॉ. निशंक ने अपने उपन्यास-साहित्य में समग्र दृष्टि से किया है।

संदर्भ:

1. श्रीमद भागवत् गीता, 8/6
2. वही, 9/10
3. भजन संग्रह, शंकराचार्य, पृ. 3
4. पर्वत प्रदेश में पावस, सुमित्रानंदन 'पंत', पृ. 68
5. परिवर्तन, सुमित्रानंदन 'पंत', पृ. 28
6. पहाड़ से ऊँचा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 5
7. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 5
8. वही, 22
9. ज़िन्दगी रुकती नहीं, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 26
10. वही, पृ. 126
11. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 104
12. पहाड़ से ऊँचा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 63
13. पल्लवी, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 146
14. बीरा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 164
15. वही, पृ. 169
16. स्पर्श (भाग-2): मनुष्यता, मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 15,
17. छूट गया पड़ाव, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 130
18. ज़िन्दगी रुकती नहीं, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 160
19. अपना पराया, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 131
20. भागोंवाली, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 141
21. वही, पृ. 142
22. निशान्त, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 50

23. कृतघ्न, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 86
24. प्रतिज्ञा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 150
25. पल्लवी, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', 27
26. वही, पृ. 108
27. वही, पृ. 116
28. अनामिका, निराला, पृ. 29
29. पल्लवी, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 148
30. वही, पृ. 157
31. मानस: नवीन भावबोध, डॉ. लखन लाल खरे, पृ. 46
32. पल्लवी, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 162
33. वही, पृ. 165
34. बीरा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 7
35. वही, पृ. 80
36. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 55
37. प्रतिज्ञा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 84
38. पहाड़ से ऊँचा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 38
39. ज़िन्दगी रुकती नहीं, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 44
40. वही, पृ. 35
41. वही, पृ. 43
42. छूट गया पड़ाव, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 25
43. वही, पृ. 28
44. ज़िन्दगी रुकती नहीं, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 82
45. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 95

46. कुरुक्षेत्र, रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ. 118
47. रामचरित मानस, गोस्वामी तुलसीदास, सुंदरकांड 57/1 से 6
48. प्रतिज्ञा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 84
49. वही, पृ. 150
50. श्रीमद्भागवद्गीता 4/7,8
51. रामचरित मानस, गोस्वामी तुलसीदास, बालकांड 120/3,4
52. बीरा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 164
53. पल्लवी, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 150
54. कृतघ्न, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 69
55. निशान्त, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 14
56. अपना पराया, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 128
57. बीरा, डॉ. रमेश 'पोखरियाल 'निशंक', पृ. 105
58. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 22
59. पहाड़ से ऊँचा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 12
60. वही, पृ. 10
61. ज़िन्दगी रुकती नहीं, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 21
62. वही, पृ. 48
63. भोजपुरी लोक संस्कृति, कृष्णदेव उपाध्याय, पृ. 344
64. संस्कृति-समस्या और संभावना, डॉ. गोविंद चातक, पृ. 193
65. पल्लवी, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 150
66. वही, पृ. 153
67. बीरा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 42
68. वही, पृ. 42

69. ज़िन्दगी रुकती नहीं, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 54

70. वही, पृ. 166

पंचम अध्याय

डॉ. निशंक के उपन्यासों की भाषा-शैली

(क) भाषा:

भाषा का सम्बन्ध समाज से है। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार– "भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चारित, यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह संरचनात्मक व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान प्रदान करते हैं।"[1]

बाबूराम सक्सेना के अनुसार– "जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मानुष परस्पर विचार विनिमय करता है, उसे भाषा कहते हैं।"[2]

ब्लॉक तथा ट्रेगर के अनुसार– "Language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a social group co-operates."[3]

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका– "भाषा यादृच्छिक भाष् प्रतीकों का तन्त्र है जिसके द्वारा मानव प्राणी एक सामाजिक समूह के सदस्य और सांस्कृतिक साझीदार के रूप में एक सामाजिक समूह के सदस्य संपर्क एवं सम्प्रेषण करते हैं।"[4]

सामान्यतः भाषा को वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम कहा जा सकता है। भाषा आंतरिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। इतना ही नहीं, वह हमारे अन्तर के निर्माण विकास, हमारी अस्मिता तथा सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान का भी साधन होता है । भाषा के अभाव में मनुष्य अपूर्ण और पशुवत् होता है।

विश्व में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। अनेक भाषाओं का तो अस्तित्व ही समाप्त हो चुका है। भाषा के साथ जुड़ा है बोली का प्रश्न। एक भाषा के अंतर्गत अनेक बोलियाँ हो सकती हैं और होती हैं। भाषा की अपेक्षा बोली का प्रभाव क्षेत्र अपेक्षाकृत संकुचित होता है। एक बोली बोलने वाले लोगों में प्रायः एक भावनात्मक लगाव होता है। सामान्यतः बोलियों में

साहित्य-सृजन नहीं होता। परन्तु ब्रज, बुन्देली और अवधी इसके अपवाद हैं। मध्यकाल में ब्रज में भक्त कवियों ने इतना साहित्य सृजन किया कि हिन्दी भाषा की यह बोली ही भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो गयी। कालान्तर में ब्रज, भाषा के पद से च्युत हो गयी। अवधी में 'रामचरितमानस' जैसे अनमोल ग्रन्थ के अतिरिक्त सूफी महाकाव्य सृजित हुए। 'परमाल रासो' और 'आल्हखंड' जैसे वीरगाथात्मक काव्य बुन्देली बोली में सृजित हुए। यही बोली 'भाखा' अथवा लोकभाषा कहलाती है। डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने अपने सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में समुचित आदर प्रदान किया है। डॉ. निशंक को अपनी लोक भाषा से अत्यंत प्रेम है:

"कई प्रवासी तो वर्षों तक पहाड़ आते ही नहीं हैं। यही नहीं, उनकी नई पीढ़ी यानी कि उनके बच्चे तक अपना मूल गाँव नहीं जानते और हाँ, गढ़वाली बोली तो उन्हें आती ही नहीं है, न ही माँ-बाप ने उन्हें अपनी बोली सिखाने का कोई प्रयास किया। बच्चे सीखेंगे भी कैसे? माँ-बाप स्वयं भी तो गढ़वाली नहीं बोलते। फिर बच्चों की बातें करना तो बेईमानी है।"[5]

डॉ. निशंक की 'निज भाषा' से दूरी बनाते युवाओं की प्रवृत्ति पर व्यथा। डॉ. निशंक को इस बात का अत्यंत क्षोभ है कि पहाड़ के लोग अपनी भाषा-संस्कृति और अपनी माटी से कटते जा रहे हैं। डॉ. निशंक की यह प्रवृत्ति उन्हें फनीश्वरनाथ रेणु और डॉ. वृन्दावनलाल वर्मा की विशिष्ट पंक्ति में खड़ा करती है। परन्तु, डॉ. निशंक के इस 'निज भाषा' प्रेम का जहाँ अभिनंदन किया जाना चाहिए, वहीं यह तथ्य भी दृष्टव्य होता है कि गढ़वाली के प्रयुक्त शब्दों का यदि कोष्ठक में अर्थ दिया जाता, तो अर्थ-ग्राह्यता बाधित न होती :

- कौन? नीरू पल्टनेर?[6]
- फिर जानवरों को घास देकर अड्या मोर लगाना है।[7]
- जू और लाट के मध्य बँधे नाड़े की चरमराहट तेज हुई।[8]
- गहथ की भरी ढबड़ी रोटी बनाई थी सावित्री ने। साथ में मूली का थिंच्वाणी। ठिक्की भरकर छांछ भी लाई थी।[9]

- गाँव के इर्द गिर्द अपनी कैसरीन जमीन और जंगल हैं, जहाँ पर रोज पशु चरने जाते हैं।[10]
- हर घर में एक से अधिक भैंसें और बकरियों की ताँद जरूर है।[11]
- कभी बड़ी चराचरी होती थी इस चौक में।[12]
- मकान के इर्द गिर्द लगभग 60 नाली पुस्तैनी कृषि योग्य भूमि और कई एकड़ में फैला घास लकड़ी का जंगल।[13]
- भूत पिशाच या आंछरी न लग गयी हो इसे।[14]
- ईजा की दवा लेने हर पन्द्रह दिन बाद बाजार जाना पड़ता है।[15]
- घुघुती घुरौंण लागी मेरा मैत की बौड़ी-बौड़ी ऐगे ऋतु ऋतु चैत की।[16]
- लड़का अपने मामा के साथ थापला जाएगा।[17]
- मकरैंणी के कोथिंग से लौटते-लौटते रात हो गई थी।[18]
- सभ्य बारातियों के बीच कुछ झांजी भी थे।[19]
- चाची मोहन का सिर मलाशती, बलाएँ लेती। [20]
- दाज्यू आपके आने की खुशी में सजावट की गई है।[21]
- असूज-कार्तिक में तो कद्दू, ककड़ी, लौकी, तोरई, बैंगन व अन्य साग-भाजियों की भरमार।[22]
- भुली ठीक हो तो कह रही है रानी की माँ।[23]
- मैं गई थी तो टीका-पिठ्या किए बगैर आने ही नहीं दिया।[24]
- ढोल-दमाऊँ पहुँच गये।[25]
- प्रधान जी ने तो पीठाई भी की।[26]
- इन मालदारों का ही कोई पुछला तो नहीं।[27]
- देर रात तक पौड़ा नृत्य चलता रहा।[28]
- वह तो मनखी जैसी भी नहीं लगती।[29]

- सीजन में काफल, हिंसर, किनगोड़े और न जाने क्या क्या।[30]
- पंदेरे के और पास आकर उसने रास्ता पूछने की हिम्मत जुटाई।[31]
- गाँव के समीप लगने वाले थौल-मेलों से भी अपने लिए क्रीम-पावडर-लिपस्टिक लाना न भूलती रेणु।[32]
- तेरी इस गन्दी जुबान पर ही डास धर दूं, तभी ठीक रहेगी तू।[33]
- समधन के हाथ में घी से भरी परोठी पकड़ाई तो कमला ने बुरा-सा मुँह बनाया।[34]
- अब आयी असली अरसे बनाने वाली।[35]
- इस बुलाक में ये खाना कैसे खा पाती होगी?[36]
- यदि ऐसा समय रहते न किया गया तो फिर कुरी झाड़ियों की तरह यह अमरबेल फैलती चली जाएगी।[37]
- धवल दीवारें और उन पर गेरू से बनाई गयी कलात्मक आकृतियाँ।[38]
- गाँव के सभी लोग गेहूँ, उड़द, कोदा, झँगोरा, गहथ, भट्ट आदि की ही खेती करते।[39]
- घुघुति घुराण लगीं म्यारा मैत की

  बौड़ि-बौड़ि ऐगे ऋतु-ऋतु .. s चैत की

  म्यारा मैत कू बोण मौठ्ठि गे होलू।[40]

उपर्युक्त पहाड़ी गीत का भावार्थ गीत के साथ दे दिया गया है अतः गीत के भावार्थ ग्राह्यता में बाधा उत्पन्न नहीं होती। यद्यपि उपन्यासकार ने इसी गीत की प्रारम्भिक दो पंक्तियों को अपने अन्य उपन्यास– 'पहाड़ से ऊँचा' में स्थान दिया है।

लोकभाषा के मात्र उन शब्दों को ग्रहण किया गया है, जिनके अर्थ उनके साथ नहीं दिये गये हैं। इनके अतिरिक्त सैकड़ों शब्द ऐसे प्रयुक्त हुए हैं, जो लोकभाषा– गढ़वाल के हैं।

'मेजर निराला' उपन्यास में लोक संस्कृति और लोक भाषा का सर्वाधिक प्रभाव है। यद्यपि यह प्रभाव डॉ. निशंक के समस्त उपन्यासों में परिलक्षित होता है।

शब्द, वाक्य की लघुतम इकाई होती है। भाषा, भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती है– यह सत्य है। परन्तु सत्य यह भी है कि भावों की यह अभिव्यक्ति भाषा के दो प्रमुख घटकों– शब्द और वाक्य के द्वारा ही सम्भव है। रचनाकार, विशेष रूप से हिन्दी साहित्य की रचना में अपनी अपनी विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करता है। हिन्दी भाषा का शब्द भंडार भी संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव के अतिरिक्त देशज, विदेशी और संकर शब्दों से भरा पड़ा है। हिन्दी अत्यन्त लचीली भाषा है। तमाम प्रकार के शब्दों को इस भाषा ने अपनी प्रकृति के अनुरूप ढाल लिया है। जैसे संस्कृत शब्द 'आत्मा' पुल्लिंग है– 'आत्मा कभी नहीं मरता' – वाक्य संस्कृत की दृष्टि से सही है। परन्तु हिन्दी ने इसे अपनी प्रकृति के अनुरूप स्त्रीलिंग में ढाल लिया– 'आत्मा कभी नहीं मरती।' विदेशी शब्दों (विशेष रूप से अंग्रेजी के) में एक वचन से बहुवचन बनाने के लिए शब्द के अन्त में 's' अथवा 'es' लगाते हैं। तदनुसार उनका उच्चारण भी होता है। Hospital का बहुवचन Hospitals होता है; हिन्दी प्रकृति के अनुसार इसका बहुवचन 'अस्पतालों' होगा। डॉ. निशंक ने हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप ही विदेशी शब्दों को ग्रहण किया है। हिन्दी में और लोक में ये शब्द इसी रूप में प्रचलित हैं:

- एक नहीं: अनेक <u>डॉक्टरों</u> को दिखा दिया था उसने अम्मा को। लेकिन <u>डॉक्टरों</u> ने भी हाथ खड़े कर दिए।[41]
- कमल कुछ <u>स्कूलों</u> (school का बहुवचन school) में भी गया।[42]
- 'और बच्चों को <u>कॉपी-किताबें</u> उपलब्ध करा दी जाएँ तो बच्चे पढ़ने आएँगे?'[43]

उपर्युक्त वाक्य में 'कॉपी-किताबें' शब्द युग्म संकर वर्ण युग्म है। कॉपी मूल लैटिन का शब्द है जो लैटिन से अंग्रेजी में आया है और अपना मूल अर्थ खो चुका है।

'किताबें' मूल अरबी के कतब से बना है जो एक वचन में किताब और बहुवचन में 'कुतुब' होता है। हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप इसका उपयोग बहुवचन में 'किताबें' होता है।

डॉ. निशंक भाषा के सहज और सर्व स्वीकार्य रूप के प्रयोग करने के पक्षधर हैं। वे स्वीकार करते हैं कि :

"कभी जीवन- मूल्यों की धड़कन बनकर, तो कभी आम आदमी की आवाज बनकर मैं इन्हें सीधे- सरल शब्दों में अपने पाठकों तक पहुँचाने की कोशिश करता रहा हूँ?"[44]

X X X

जो देखा, महसूस किया और भोगा, वह मनोभावों में उमड़ कर सीधी, सरल और बोलचाल की भाषा में ढलता चला गया।"[45]

इनके विचारों के अनुरूप ही डॉ. निशंक की औपन्यासिक भाषा– 'सीधे-सरल शब्दों' की है और 'सीधी, सरल और बोलचाल' की भाषा है। देशज, तत्सम, तद्भव, विदेशी, पारिभाषिक और संकर शब्दों का भरपूर प्रयोग डॉ. निशंक ने किया है। इन वर्गों के प्रयुक्त हुए कतिपय शब्द निम्नानुसार हैं:

(i) तत्सम शब्द:

परिवेश, त्याग, समर्पण, धरा, धाम, आत्मा, अतृप्ति, तृप्ति, इष्ट, श्रेय, नैराश्य, धैर्य (उपन्यास 'छूट गया पड़ाव')

स्नेह , अंबुज, वर्ष, व्यवसाय, अग्नि, विषपान, संतुष्टि, शीतल, छात्रावास, भविष्य, प्रश्न, आश्रम (उपन्यास 'कृतघ्न')

शास्त्रीजी, ईश्वर, उत्तीर्ण, गृह-प्रवेश, पैतृक, प्रातःकाल, पार्थिवदेह, संघर्ष, संयुक्त, चक्र (उपन्यास 'भागोंवाली')

मूकदर्शक, विचलित, अनुशासन, संस्कार, छत्रच्छाया, प्रताप, अध्यापन, त्वरित, प्रतिक्रिया, मूक (उपन्यास 'प्रतिज्ञा')

ज्योतिर्लिंग, ऋतु, आस्था, रौद्र, ज्वालामुखी, स्वर्ण, मस्तिष्क, स्मृतियाँ, शुभाशीष, अबोध, मंदाकिनी (उपन्यास 'ज़िन्दगी रुकती नहीं')

सहर्ष, वैद्य, स्नेह, मानस, मुकुट, ब्रह्म, मुहूर्त, दुर्दिनों, आवेश, आवास, आशंकित, संचार, यथास्थान (उपन्यास 'अपना पराया')

भोर, मर्मांतक, व्रज, साक्षात, श्रवण, विकलांग, सम्पन्न, दंभ, स्वास्थ्य, अपशकुन, भक्ति, अभिवादन (उपन्यास 'पल्लवी')

शान्त, अन्तर्मुखी, अनुरूप, अनभिज्ञ, प्रवृत्ति, शेष, वार, पत्नी, प्रदूषण, कृत्रिम, पावन, कृषि (उपन्यास 'पहाड़ से ऊँचा')

आधिपत्य, अध्याय, संरक्षक, गौशाला, जगन्नाथ, व्यग्र, अंकुश, निर्धन, संस्था, वार्षिकोत्सव, आमंत्रण (उपन्यास 'निशान्त')

स्वर्णिम, आभा, विडम्बना, हरि, तीव्र, श्यामा, उपलब्ध, कर्मचारी, अधिकारी, प्रधान, जिज्ञासा (उपन्यास 'बीरा')

बसन्त, परिश्रम, अन्तर्द्वन्द्व, युद्ध, वार्ता, आक्रोश, दृष्टि, प्रवेश, सुगंधित, आनन्द, कर्कश, राष्ट्र (उपन्यास 'मेजर निराला')

(ii) तद्भव शब्द:

गाँव, दूध, घी, मिट्टी, सास, डंडा, पाँच, पाँव, साँस, बिला, उजाला, ललक, जच्चा-बच्चा (उपन्यास 'छूट गया पड़ाव')

आलस, निन्द, छुट्टी, बूढ़ा, पुरखे, चमक, सपना, सुध, बहू, नाक, ठंडक (उपन्यास 'कृतघ्न')

(iii) विदेशी शब्द:

अंग्रेजी, फारसी,अरबी,तुर्की,फ्रेंच,उर्दू आदि विदेशी भाषाओं के जो शब्द हिन्दी में आकर घुल मिल गये हैं, ऐसे सामान्य बोलचाल के शब्दों का प्रयोग डॉ. निशंक ने अपने उपन्यासों में निःसंकोच किया है। इन भाषायी शब्दों के कतिपय उदाहरण अवलोकनीय है:

अंग्रेजी शब्द:

एक्सीडेंट, प्रायमरी, हेडमास्टर, रिटायर, ट्रांसफर, फ्रेम, साइड, स्टेंड, ट्यूशन (उपन्यास 'भागोंवाली')

रिजल्ट, डुप्लीकेट, पैकिंग, फैक्टरी, मनीआर्डर, डीलर, कॉलेज, डिस्पेंसरी, कम्पाउण्डर (उपन्यास 'प्रतिज्ञा')

बेड, हॉल, टॉप, कोचिंग, फीस, ड्राइवर, किलोमीटर, स्टाम्प, ब्लाक, फाइल, नम्बर (उपन्यास 'ज़िन्दगी रुकती नहीं')

प्राइवेट, कलेण्डर, टीम, बॉक्स, क्लास, कंडक्टर, स्टेशन, इंजीनियर, ऑफिस, डिप्लोमा (उपन्यास 'अपना पराया')

केप्टन, बार्डर, टॉपर, केंटीन, मेग्जीन, प्लीज, प्रोफेसर, मेरिट, स्टेज, कमीशन, रेलवे (उपन्यास 'पल्लवी')

ऑनरेरी, रेजीमेंटल, डिग्री, क्लीनिक, मिडिल, इण्टर, मैकेनिक, ट्रेड, पेंशन, मेडीकल (उपन्यास 'पहाड़ से ऊँचा')

टेलीफोन, वाइपर, विंडस्क्रीन, कर्नल, स्टीयरिंग, प्लेन, बेल्ट, कप, इंडियन, गुड ईवनिंग (उपन्यास 'निशान्त')

अरबी शब्द :

फ़ौज, गरीबी, मेहनत, ओहदा, जुर्म, जज्बा, फुरसत, शक (उपन्यास 'मेजर निराला')

फारसी शब्द:

सलाखें, जाबांज, मंजूर, कामयाबी, ज़मीन, दुश्मन, शायद (उपन्यास 'मेजर निराला')

डॉ. निशंक के समग्र उपन्यास साहित्य में इस प्रकार के शब्दों की भरमार है। अनेक स्थलों पर तो एक भाषा के शब्द से वाक्य का प्रारम्भ और दूसरे भाषायी पर्याय शब्द से उसका समापन होता है। यद्यपि अर्थ-ग्राह्यता बाधित नहीं होती। जैसे –

"यही सोच उसने पहले तो अपने दल की महिलाओं की बैठक बुलाई और फिर उनसे...।"[46]

"इस मीटिंग के समाप्त होने के बाद सुनीता अपने अभियान में जुट गई।"[47]

उपर्युक्त उद्धरणों में से प्रथम उद्धरण में रेखांकित शब्द 'बैठक' प्रयुक्त हुआ है। जबकि प्रसंग का समापन दूसरे उद्धरण में रेखांकित शब्द 'मीटिंग' से हुआ है।

डॉ. निशंक के उपन्यासों की भाषा की विशेषताएँ हैं:-

(i) पात्रानुकूल भाषा:

पात्रों के अनुरूप भाषा की सृष्टि करना सफल कथाकार का गुण होता है और ये गुण डॉ. निशंक में है। केवल पत्रानुकूल भाषा ही नहीं, देश-काल और वातावरण तथा परिवेश के अनुरूप भाषायी प्रयोग कृति को लोकप्रिय बनाती हैं। इसीलिए डॉ. निशंक के उपन्यास लोकप्रिय हैं।

सेना में जिस भाषा का प्रयोग होता है, उसके कतिपय दृष्टांत:

"मेजर अपने साथियों सहित लगातार आगे बढ़ रहा है। थोड़ी-थोड़ी देर बाद नीरवता का सीना चीरती गोलियों की आवाजें सुनाई देतीं, मानों पहाड़ियों का दिल दहल गया हो। कई बार तो गोलियाँ कनपट्टी से होकर गुजरतीं। मेजर अपने जवानों की कुशलता का जायजा लेते, फिर उनका साहस बढ़ाते हुए लगातार आगे बढ़ाते– 'शाबाश जवानों ! बढ़ते रहो, मंजिल करीब है।

तभी पहाड़ियों की दूसरी तरफ से आग का एक भयंकर गोला ठीक उनके सामने आकर फटा। विस्फोट इतना जबरदस्त था कि जमीन तक हिल गयी। तोप से छूटा कोई गोला था यह।

'सूबेदार काशीसिंह।' – मेजर निराला ने फुसफुसाते हुए कहा।

'यस सर।' – फुसफुसाते हुए ही, किन्तु कड़क सवर में सूबेदार काशीसिंह की आवाज आई।

'तुम डास जवानों को लेकर दायीं ओर कवर करो।' – मेजर ने आदेश दिया।

'और सूबेदार जीतसिंह।'

'यस सर।' – सूबेदार जीतसिंह ने भी कड़क लहजे में उत्तर दिया।

'तुम बाई ओर कवर करो। 'मेजर ने उसे भी आदेश दिया।

'किन्तु सर, दुश्मन फ्रंट पर है।' – सूबेदार जीतसिंह ने शंका जाहिर की।

'नहीं सूबेदार, दुश्मन फ्रंट का भ्रम पैदा करके चाल चला रहा है।'

मेजर ने समझाया– 'याद रहे' – मेजर ने पुनः लगभग आदेशात्मक लहजे में कहा– हमें हर कीमत पर उजाला होने से पूर्व चौकी नम्बर 12 से दुश्मन को खदेड़ना है।"[48]

(ii) सांकेतिक भाषा:

भाषायी सौंदर्य के लिए रचनाकार अपनी रचनाओं में कभी-कभी सांकेतिक भाषा प्रयुक्त करता है। डॉ. निशंक ने भी अनेक स्थानों पर ऐसी भाषा प्रयुक्त की है। प्रणय-व्यापार का एक उदाहरण:

"उसके अधरों को छूकर अश्रुधारा बह निकली। जैसे सावन के महीने में किसी बरसाती गधेरे में अचानक बढ़ आयी पानी की धारा। मेजर निराला ने उसके आँसू पोंछे और उसे सीने से लगा लिया।

हवा का तेज झोंका आया। अचानक लालटेन की लौ थरथराने लगी और फिर धीरे-धीरे बुझ गयी।"[49]

(iii) मुहावरेदार भाषा:

डॉ. निशंक ने अपने उपन्यासों की भाषा को मुहावरों से सज्जित किया है। जहाँ आवश्यकता प्रतीत हुई है, वहाँ ये स्वाभाविक रूप से उपस्थित हुए हैं। ये मुहावरे परम्परागत ही हैं। उदाहरण :

- पुत्र अब कंधे से कंधा मिलाकर उसके व्यवसाय में हाथ बंटाएगा।[50]
- जैसा होगा अन्न, वैसा होगा मन।[51]
- बिन गुरु ज्ञान नहीं, बिन धुनी ध्यान नहीं।[52]
- अंधे को क्या चाहिए, बस दो आँखें।[53]
- ऊपर वाला भी कितना अन्यायी है। किसी को छप्पर फाड़कर देता है तो किसी को जीते जी मार देता है।[54]
- यह कोई टेढ़ी खीर नहीं।[55]
- यहाँ जो जीता वही सिकंदर।[56]
- हीरे की कीमत जौहरी ही जानता है।[57]

उपर्युक्त परम्परागत मुहावरों के अतिरिक्त अनेक नये मुहावरे डॉ. निशंक ने स्वयं गढ़े हैं, जो प्रभावी हैं:

- कहीं कुलांचे भरती ख्वाहिशों की खुशनसीबी है तो कहीं लकवा मार गई बदनसीबी भी।[58]

- गुरु सामाजिक ही नहीं है तो हुआ करे विद्वान। उसकी विद्वता किस काम आएगी?[59]

(ख) शैली :

डॉ. श्याम सुंदर दास शैली के विषय में लिखते हैं– "भाषा का मूलाधार शब्द है, जिन्हें उपयुक्त रीति से प्रयुक्त करने के कौशल को ही शैली का मूल तत्व समझना चाहिए। अर्थात किसी लेखक या कवि की शब्द योजना वाक्यांश का प्रयोग, वाक्यों की बनावट और उसकी ध्वनि आदि का नाम शैली है।"[60]

डॉ. प्रतापनारायण टंडन के अनुसार– "कथानक, चरित्र-चित्रण, घटनाएँ, कथोपकतन, मनोवैज्ञानिक सत्य आदि के उपन्यास के ऐसे तत्व है, जिनसे पाठक का परिचय धीरे-धीरे ही बढ़ता है, लेकिन जो चीज उसे उपन्यास को पढ़ने के लिए तुरंत प्रेरित करती है वह उपन्यास की शैली ही है।"[61]

(i) अलंकारिक शैली:

अलंकारों का महत्व यद्यपि काव्य में है। फिर भी भावुक गद्य लेखक अलंकारिक भाषा का प्रयोग कर गद्य की नीरसता को सरस बना देता है। फिर डॉ. निशंक तो मूलतः कवि हैं। उनकी औपन्यासिक भाषा भी काव्य भाषा-सी प्रतीत होती है:

- "बीरा का मुँह बुरांश के फूल की तरह लाल हो गया था।[62]
- "आषाढ़ का महीना चढ़ाव पर था। नदी-नाले पोरकर, तालाब,छीर, गधेरे सभी मानों वेग से ऐसे बह रहे थे, जैसे बारहों महीनों इनमें एसा ही पानी रहता हो। वर्षा रुक-रुककर जारी थी। रात घिरने पर अंधेरा अपनी कालिमा से सब ढक देना चाहता था। बीच-बीच में मेघों की गर्जन में बिजली की चमक वातावरण को और मादक बना देती थी।"[63]

- "भादों का महीना था, बारिश अपने पूरे यौवन पर थी। लेकिन आसमान लाल, पीले, काले बादलों से घिरा ऐसा जान पड़ता था, जैसे होली खेलने वाला कोई मदमस्त नवयुवक रंग बिरंगी फागुनी रंगों से लिपटा हुआ हो।"[64]

(ii) चित्रात्मक शैली :

कतिपय स्थानों पर डॉ. निशंक ने मनमोहक चित्र उकेरे हैं। प्रस्तुत उद्धरण में पहाड़ी गाँव में होने वाले वैवाहिक कार्यक्रम के आयोजन का सुन्दर चित्र अंकित किया गया है :

"रेणु के विवाह की तैयारियों में गाँव के सभी लोग जुटे थे। गाँव के युवा जहाँ बारातियों के रहने-खाने की व्यवस्था में लगे थे, वहीं युवतियाँ और महिलाएँ रोट-अरसे जैसे पहाड़ी पकवान बनाने में जुटी थीं। रंगबिरंगी लड़ियों की कतारों से पूरा घर-आंगन सजाया जा रहा था।

X X X

रेणु नहाने गयी तो बची-खुची हल्दी को लेकर सब आपस में होली, खेलने लगीं। भाभियाँ और देवर, जीजा और सालियाँ सब एक दूसरे को रंगने का अवसर तलाश रहे थे।"[65]

एक और शब्द चित्र, इसी वैवाहिक कार्यक्रम का :

"सारा दिन बारातियों के स्वागत की तैयारियों में बीत गया। कहीं सूजी भूने जाने की खुशबू तो कहीं चटपटी सोंठ बनने की तैयारियाँ, गाँव और आसपास के ही निपुण रसोइए इस काम को कर रहे थे।

ढोल, मशक बीन की मंगल ध्वनि के बीच रात को बारात पहुँची तो सारा गाँव वहीं इकट्ठा हो गया। कुछ बाराती जहाँ अपनी सौम्यता से मन मोह रहे थे तो कुछ उच्छृंखल युवा शराब के नशे में चूर युवतियों के झुण्ड के बीच ताका-झाँकी का प्रयास कर रहे थे।

"बारात के शामियाने में बैठने के बाद, गाँव की कुछ वृद्धाओं ने सुर में सुर मिलाते हुए दूल्हे को गाली देना आरम्भ किया।"[66]

डॉ. निशंक के उपन्यासों में यत्र-तत्र सुन्दर-सुन्दर शब्दचित्र बिखरे पड़े हैं। गाँव की भोर का यह शब्द चित्र बोलता-सा प्रतीत होता है। अत्यन्त सजीव चित्रण :

"भोर में झगझोर कर किसी अतिथि के आने की आहट दे जाता कागा आज न जाने क्यों मुंडेर पर अलसाये बैठा है। नीचे पगलाई-सी चन्दा अपना खूँटा उरवाड़ डालने पर आमादा है। दूर कहीं बिछड़े बछड़े की मर्मांतक पुकार कानों में पड़ती, तो वह और बिलबिला उठती। पीठ से जा चिपकते, पेट के भीतर कहीं गहराई से निकलती– 'अम्माह'... 'अम्माह'... की उसकी ममताभरी चीत्कार जैसे कलेजा चीर जाती।"[67]

डॉ. निशंक एक श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। डॉ. निशंक के उपन्यासों की भाषा हृदयग्राही है। भाषा मनोगत भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम होता है। प्रयोग की दृष्टि से इसे अनेक रूपों में विभक्त किया गया है, जैसे लिखित रूप, मौखिक रूप, राजकीय भाषा, बोलचाल की भाषा, साहित्ययिक भाषा आदि। साहित्यकारों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा साहित्यिक भाषा होती है, जो प्रायः अलंकृत होती है और आम बोल चाल की भाषा से भिन्न होती है।

डॉ. निशंक के उपन्यासों की भाषा साहित्ययिक होते हुए भी आम जन की भाषा है। यह भाषा डॉ. निशंक के उपन्यासों को अन्य उपन्यासकारों से पृथक करती है। संस्कृत की तत्सम शब्दावली, उनके तद्भव रूप, देशज शब्द और आम जन में प्रचलित अंग्रेजी, फ्रेंच, मराठी, तमिल आदि शब्दों के साथ-साथ अरबी-फारसी-उर्दू के शब्दों को उपन्यासकार ने निःसंकोच ग्रहण किया है।

डॉ. निशंक उत्तराखण्ड के स्थापित उपन्यासकार हैं। इन्हें अपने पहाड़ी प्रदेश और पहाड़ी भाषा से अत्यधिक प्यार है। यही कारण है कि इनके उपन्यासों में स्थानीय भाषा के शब्दों का बाहुल्य है। जहाँ-जहाँ ऐसे शब्दों का अर्थ दिया गया है, वे तो सहज ग्राह्य हैं। परन्तु जहाँ ऐसे शब्दों के अर्थ स्पष्ट नहीं हैं वहाँ अर्थग्राह्यता बाधित होती है।

डॉ. निशंक ने अनेक भाषायी एवं शैलीय रूपों से अपने उपन्यासों को सुसज्जित किया है। इनमें पात्रानुकूल भाषा, सांकेतिक भाषा, मुहावरेदार भाषा तथा आलंकारिक शैली,

चित्रात्मक शैली के प्रमुख विधान हैं। डॉ. निशंक ने एक ओर परम्परागत मुहावरों से अपनी औपन्यासिक भाषा को समृद्ध किया है तो दूसरी ओर नये गढ़े हुए मुहावरों के कारण भाषा को नवीन तेवर प्राप्त हुए हैं। डॉ. निशंक की सशक्त औपन्यासिक भाषा शैली के प्रभाव को अंगीकार करने से इंकार नहीं किया जा सकता। उपन्यास-साहित्य से भाषायी एवं शैलीय दुरूहता को समाप्त कर विशिष्ट अंदाज में पृथक भाषायी एवं शैलीय मार्ग का निर्माण करना डॉ. निशंक की विशिष्ट उपलब्धि है।

संदर्भ:

1. भाषा विज्ञान, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ. 11
2. भाषा विज्ञान के सिद्धांत और हिन्दी भाषा, बाबूराम सक्सेना, पृ. 66
3. Out line of Linguistics Malysis, Block and Trager, P. 18
4. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका
5. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 56
6. वही, पृ. 27
7. वही, पृ. 29
8. वही, पृ. 40
9. वही, पृ. 50
10. वही, पृ. 75
11. वही, पृ. 82
12. वही, पृ. 127
13. बीरा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 39
14. वही, पृ. 85
15. पहाड़ से ऊँचा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 14
16. वही, पृ. 18
17. वही, पृ. 17
18. वही, पृ. 6
19. वही, पृ. 21
20. वही, पृ. 61
21. वही, पृ. 60
22. छूट गया पड़ाव, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 22

23. छूट गया पड़ाव, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 130
24. वही, पृ. 119
25. वही, पृ. 30
26. वही, पृ. 43
27. वही, पृ. 25
28. वही, पृ. 30
29. वही, पृ. 55
30. वही, पृ. 22
31. अपना पराया, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 12
32. वही, पृ. 52
33. वही, पृ. 53
34. वही, पृ. 55
35. वही, पृ. 68
36. वही, पृ. 67
37. प्रतिज्ञा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 43
38. वही, पृ. 38
39. वही, पृ. 13
40. पल्लवी, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 36
41. भागोंवाली, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 140
42. ज़िन्दगी रुकती नहीं, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 130
43. वही, पृ. 130
44. प्रतिज्ञा(निवेदन), डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 5
45. छूट गया पड़ाव (अपनी बात), डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 17

46. प्रतिज्ञा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 142
47. वही, पृ. 143
48. मेजर निराला, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 10
49. वही, पृ. 35
50. कृतघ्न, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 10
51. वही, पृ. 87
52. छूट गया पड़ाव, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 39
53. वही, पृ. 49
54. वही, पृ. 54
55. वही, पृ. 61
56. वही, पृ. 94
57. वही, पृ. 126
58. वही, पृ. 45
59. वही, पृ. 65
60. साहित्यालोचन, श्याम सुंदर दास, पृ. 316
61. हिंदी उपन्यास कला, डॉ. प्रतापनारायण टंडन, पृ. 296
62. बीरा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 19
63. पहाड़ से ऊँचा, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 69
64. वही, पृ. 6
65. अपना पराया, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 101
66. वही, पृ. 102
67. पल्लवी, डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पृ. 7

उपसंहार

डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक का जन्म 15 जुलाई,1959 को ग्राम पिनानी, जिला पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखण्ड) में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री परमानन्द पोखरियाल और माता का नाम श्रीमती विश्वंबरी देवी पोखरियाल था। उनकी पत्नी का नाम कुसुमकांता था। उनके तीन सुपुत्रियाँ हैं – आरुषि निशंक, श्रेयसी निशंक और विदुषी निशंक। डॉ. निशंक की प्रारम्भिक शिक्षा पैतृक गाँव पिनानी, जिला पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखण्ड) के राजकीय विद्यालय में हुई थी। गाँव से 8 कि. मी. दूर स्थित जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, दमदेवल, पौड़ी, गढ़वाल से हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1981 में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से इन्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1988 में वहीं से कला स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी। सन् 1990 में हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर से एम. ए. (हिन्दी) की उपाधि भी प्राप्त की। उन्हें हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखण्ड) से पी-एच.डी.एवं डी. लिट्. की मानद उपाधियाँ प्रदान की गईं। उन्हें अनेक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सम्मानों से विभूषित किया जा चुका है। डॉ. निशक का व्यक्तित्व अत्यन्त सहज और सौम्य है।

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। इन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं मे सृजन किया है:

(i) काव्य-संग्रह : डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के सत्रह काव्य-संग्रह और दो (खण्डकाव्य) प्रकाशित हैं – (1) समर्पण (2) नवांकुर (3) मुझे विधाता बनना है (4) तुम भी मेरे साथ चलो (5) देश हम जलने न देंगे (6) जीवन पथ में (7) मातृभूमि के लिए (8) कोई मुश्किल नहीं (9) ए वतन तेरे लिए (10) संघर्ष जारी है (11) सृजन के बीज (12) अंधेरा जा रहा है

(13) भूल पता नहीं (14) मृगतृष्णा: दर्पण अंतर्मन का (15) मैं गंगा बोल रही हूँ (खण्डकाव्य) (16) एम्स में जंग लड़ते हुवे (17) प्रकृति की गोद में माँ की पाठशाला (18) परीक्षा लेती ज़िंदगी (19) प्रतीक्षा (खण्डकाव्य)।

(ii) कहानी- संग्रह : डॉ. निशंक के पंद्रह कहानी संग्रह प्रकाशित हैं – (1) क्या नहीं हो सकता (2) भीड़ साक्षी है (3) बस एक ही इच्छा (4) रोशनी की एक ही किरण (5) खड़े हुवे प्रश्न (6) विपदा जीवित है (7) एक और कहानी (8) मेरे संकल्प (9) मील के पत्थर (10) टूटते दायरे (11) अंतहीन (12) केदारनाथ आपदा की सच्ची कहानियाँ (13) निशंक की सर्वश्रेष्ठ इक्कीस कहानियाँ (14) कथाएँ पहाड़ों की (संयुक्त) (15) रमेश पोखरियाल 'निशंक' की लोकप्रिय कहानियाँ।

(iii) उपन्यास-साहित्य : डॉ. निशंक के ग्यारह उपन्यास प्रकाशित हैं– (1) मेजर निराला (2) बीरा (3) निशान्त (4) पहाड़ से ऊँचा (5) छूट गया पड़ाव (6) पल्लवी (7) अपना पराया (8) प्रतिज्ञा (9) कृतघ्न (10) भागोंवाली (11) ज़िन्दगी रुकती नहीं।

(iv) बाल-साहित्य : डॉ. निशंक की बाल साहित्य की छह कृतियाँ प्रकाशित हैं–
(1) आओ सीखें कहानियों से (2) स्वामी विवेकानन्द की जीवनी (3) कर्मयोगी स्वामी विवेकानन्द (4) शिकागो में स्वामी विवेकानन्द (5) आगे बढ़ो: स्वामी विवेकानन्द
(6) सकारात्मक सोच: स्वामी विवेकानन्द।

(v) व्यक्तित्व विकास/जीवनी : डॉ. निशंक की व्यक्तित्व विकास तथा जीवनी संबंधी आठ कृतियाँ प्रकाशित हैं– (1) सफलता के अचूक मंत्र (2) भाग्य पर नहीं; परिश्रम पर विश्वास करें (3) संसार कायरों के लिए नहीं (स्वामी विवेकानन्द का जीवन प्रबंधन)
(4) सपने जो सोने न दें (डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम के जीवन पर) (5) हिमालय में स्वामी विवेकानन्द (6) युगपुरुष भारतरत्न अटल जी (7) एकात्म मानववाद के प्रणेता पं दीनदयाल उपाध्याय (8) भारतीय लोकतंत्र के पुरोधा पं. दीनदयाल उपाध्याय।

(vi) पर्यटन/संस्कृति/धर्म : डॉ. निशंक की पर्यटन, संस्कृति एवं धर्म संबंधी पाँच कृतियाँ प्रकाशित हैं– (1) धरती का स्वर्ग उत्तराखण्ड (भाग-1) (2) धरती का स्वर्ग उत्तराखण्ड (भाग-2) (3) धरती का स्वर्ग उत्तराखण्ड (भाग-3) (4) भारतीय संस्कृति, सभ्यता और परम्परा (5) विश्व धरोहर गंगा (गंगा एवं उत्तराखण्ड)।

(vii) डायरी/संस्मरण/यात्रा-वृतांत : इन विधाओं से संबंधी डॉ. निशंक की नौ रचनाएँ प्रकाशित हैं– (1) मेरी कथा मेरी व्यथा (शहीद के पत्रों का संकलन) (2) मॉरीशस की स्वर्णिम यात्रा (3) प्रलय के बीच (केदारनाथ यात्रा का सचित्र वर्णन) (4) आपदा के वह भयावह पल (5) एक दिन नेपाल में (6) मेरी विदेशी यात्राएँ (7) हिन्दू संस्कृति का प्राण है इंडोनेशिया (8) मेरी थाईलैंड यात्रा (9) लक्ष्यद्वीप: समुद्र में चमकता मोती।

डॉ. निशंक का प्रथम उपन्यास 'मेजर निराला' है। इसमें मेजर निराला नामक पात्र के द्वारा सैन्य जन जीवन एवं उनकी पत्नी सावित्री के द्वारा एक पत्नी व माँ का धर्म को दर्शाया गया है। इस उपन्यास में भारत और पाकिस्तान युद्ध का वर्णन है। इस विवेच्य उपन्यास में समाज, ग्रामीण जन जीवन, सैनिक जीवन और पर्यावरण के प्रति चिंतन किया गया है। मेजर निराला के माध्यम से फौजी ज़िंदगी, उनके घर से दूर होने पर परिवार में उत्पन्न समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है। जिस प्रकार मेजर निराला ने जग्गू को सहारा देकर पढ़ाया उसी का फल उसके बेटे बबलू को मिला जब वह घर से भाग गया था। बबलू को भी एक दयालु दुकानदार की शरण नसीब हुई, जिससे उसको ज़िंदगी में फिर से सवारने का मौका मिला। इसमें डॉ. निशंक ने मानवता एवं बेसहारा बच्चों को सहारा देने पर बहुत जोर दिया है। इसके साथ मेजर निराला के अपने गाँव के प्रति लगाव को दर्शाते हुए डॉ. निशंक पहाड़ी इलाकों में होती सड़क दुर्घटनाओं, किसानों की दुर्दशा का सजीव वर्णन भी करते हैं।

'बीरा' उपन्यास में सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक, स्त्री जीवन मूल्य, स्त्री समस्या, सम्मान एवं सुरक्षा आदि का बड़े ही मनोयोग ढंग से वर्णन किया गया है। इस उपन्यास में दीपक के पिताजी की मृत्यु सड़क दुर्घटना में हो जाती है।छात्रवृत्ति के सहारे दीपक शहर में कॉलेज के लिए जा पाता है। बीरा, एक अनाथ बालिका अपने मामा के पास रहने वाली दीपक की सहायता से पढ़ाई कर पाती है। ये सब एक चेतना जनता में पैदा करता है कि किस तरह सरकार की योजनाओं के सहारे लोग शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं, अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं । इसमें पहाड़ी इलाकों की अभाव भरी ज़िंदगी को भी मार्मिक ढंग से दर्शाया गया है।

पहाड़ से ऊँचा उपन्यास में रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने मोहन नामक पात्र द्वारा उत्तराखंड तथा भारत के अन्य पिछड़े क्षेत्रों के अभावपूर्ण जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। मोहन के माध्यम से डॉ. निशंक ने अपनी मानव सेवा के मनोभावों को प्रकट किया है। गाँव में चिकित्सा की अच्छी सुविधा न होने के कारण ही मोहन के पिता की मृत्यु हो जाती है। तब मोहन यह प्राण लेता है कि वह डॉक्टर बनेगा। वह डॉक्टर की पढ़ाई पूरी करके डॉक्टर बन जाता है और अपने ही गाँव में एक प्रसव वेदना से पीड़ित गर्भवती महिला की जान बचाता है। इस उपन्यास में निशंक जी ने पहाड़ी जीवन की अन्य कई कथाएँ शामिल की हैं, परंतु गाँव की चिकित्सा की असुविधा को विशेष रूप से केंद्रित करके हर तरह के अभाव तथा असुविधाओं को सफलता पूर्वक दर्शाया है।

'निशान्त' उपन्यास में डॉ. निशंक ने व्यक्ति और समाज के अंदर छिपे हुए कई पहलुओं को उद्घाटित किया है। डॉ. निशंक ने निशान्त एवं मिताली दो संभ्रांत परिवारों की पृष्ठभूमि को उपन्यास का वर्ण्य-विषय बनायी है। मिताली परिस्थितियों से जूझती हुई निरंतर परिवार को प्रगति पथ पर बढ़ाना चहती है। अपने छोटे भाई- बहन को उच्च शिक्षा दिलाना, उसके संघर्षशील एवं जुझारूपन का प्रतीक है। डॉ. निशंक ने निशान्त के चरित्र को सादगी पूर्ण

जीवन शैली की प्रतिमूर्ति के रूप में उभारा है। निर्धन बेसहारा लोगों की मदद करना उसका नैतिक दायित्व दिखाकर डॉ. निशंक ने उदात्त मानवीय मूल्यों की स्थापना की है।

'अपना पराया' उपन्यास में डॉ. निशंक ने भारतीय आदर्श बहू के रूप में लक्ष्मी तथा दहेज के लोभ से भरी सास के रूप में सुरेश की माँ कमला जैसे पात्रों को दर्शाया है। दहेज के खिलाफ जनता में जागरूकता लाने के लिए दहेज विरोधी सुरेश को भी दर्शाया है। उपन्यासकार निशंक ने रूढ़िवादी मानसिकता का चित्रण करके यह स्पष्ट करने की कोशिश की कि किस तरह दहेज के चलते निर्धन घर की बेटी ससुराल में शोषण का शिकार बनती है। इस उपन्यास में राहुल के माध्यम से डॉ. निशंक ने अपना संदेश लोक तक पहुँचाने का काम किया है कि मातृभूमि से बढ़कर कुछ नहीं होता। दहेज के कारण भारतीय समाज में होते अनमेल विवाह को दर्शाने के लिए लक्ष्मी की छोटी बहन अनीता नामक पात्र का भी निर्माण किया और अंत में विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहन देने के लिए डॉ. निशंक ने इस उपन्यास के अंत में दहेज के बिना राहुल की शादी लक्ष्मी की छोटी विधवा बहन अनीता से करा देते हैं। 'अपना पराया' उपन्यास में नारी की विभिन्न समस्याओं को सही रूप में उकेरा गया है। इस उपन्यास में न केवल स्त्री के सामाजिक पक्ष पर बल दिया गया है, बल्कि उसके आधिकारिक मुद्दों पर भी बहस की गयी है।

'पल्लवी' उपन्यास में रमेश पोखरियाल 'निशंक' ध्रुव नामक पात्र के द्वारा यह दर्शाते हैं कि गरीब परिवार से भी एक महत्वाकांक्षी और परिश्रमी युवा जन्म ले सकता है। उपन्यास में पल्लवी नामक अमीर घर की बेटी ध्रुव जैसे गरीब लड़के से आकर्षित होकर ध्रुव की देश सेवा करने का सपना पूरा करने में मदद करती है। ध्रुव के लिए पल्लवी की सी.डी.एस. की तैयारी करने की सलाह, कई पाठकों को आर्मी में भर्ती होने के तरीके से अवगत करता है और जब ध्रुव की आर्मी में भर्ती होने का तार आया तब माँ का मंदिर में प्रसाद चढ़ाना तथा गाँव में सारे लोगों को प्रसाद बाँटना धर्म के प्रति उपन्यासकार निशंक की लोक चेतना के भाव को बहुत ही

स्पष्ट रूप से दर्शाता है। पल्लवी और ध्रुव नवयुवक-युवती होते हुए भी उनका प्रेम पढ़ाई पर असर न होने देना तथा भविष्य के लिए सतर्क रहना वर्तमान पीढ़ी के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण सीख है। ध्रुव को अपनी पढ़ाई के खर्च के लिए ट्यूशन पढ़ाना तथा पल्लवी की सलाह से एक साथ अनेक विद्यार्थियों को ट्यूशन पढ़ाना, ध्रुव जैसे भविष्य के लिए लड़ने वाले विद्यार्थियों में आर्थिक लोक चेतना लाएगा। 'पल्लवी' उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसके कथानक में आदर्श एवं यथार्थ का अनूठा चित्रण किया गया है। एक और जहाँ कथा नायिका पल्लवी और कथा नायक ध्रुव के माध्यम से डॉ. निशंक जी ने उच्चतर जीवन मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति करते हुए आदर्श चरित्रों का निर्माण किया है, वहीं दूसरी ओर कैप्टन किशन की पत्नी बिन्दु और दगाबाज वकील के चरित्रों का निर्माण करके समाज के कड़वे यथार्थ का चित्रण भी बहुत सुंदर ढंग से किया है।

'छूट गया पड़ाव' उपन्यास में आनंद सिंह, सरोज, डॉ. दुग्गल आदि पात्रों के माध्यम से डॉ. निशंक ने सामाजिक समस्याओं; बेरोजगारी, पहाड़ पर रहने वालों का संघर्ष, समर्पण और सहकार की भावना का चित्रण किया। इस उपन्यास की मुख्य पात्र सरोज के द्वारा एक ऐसे चरित्र को दर्शाया गया जो दिखने में साधारण है लेकिन असाधारण व्यक्तित्व का प्रतीक है। वह ऐसी जगह शिक्षिका बनकर जाती है, जहाँ पहले कोई शिक्षक जाना नहीं चाहता था और कोई जाता भी तो बहुत ही जल्द स्थानांतरण करवा लेता था। वह अपने अध्यापन कार्य को सेवा भाव से करती है। उसके समर्पण से बिंगढ़वासी बहुत प्रभावित होते हैं। इस उपन्यास के माध्यम से डॉ. निशंक जनता में उस जागरूकता को लाना चाहते हैं जिसे हर कोई अपने पेशे को एक धर्म तथा उत्तरदायित्व समझ कर पिछड़े लोगों की उन्नति के लिए ही करें। सरोज गाँव वालों की सेवा के लिए अध्यापन का कार्य ही चुनती है क्योंकि डॉ. निशंक इस संदेश को जन-जन तक पहुँचाना चाहते है कि शिक्षा के द्वारा ही समाज की उन्नति हो सकती है।

डॉ. निशंक ने 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में गाँव की– अशिक्षा, बेरोजगारी, भौतिक संसाधन से कटे हुए और नशे आदि जैसी समस्याओं पर प्रकाश डाला है। इस उपन्यास में मानव हृदय में चलने वाली सद्वृत्तियों और असद्वृत्तियों के संघर्ष को दिखाकर स्द्वृत्तियों की विजय का चित्रण किया है। यह उपन्यास समाज के भटकते लोग एवं संवेदना शून्य तथा नैतिक मूल्यों को अहमियत न देने वाले लोगों के लिए प्रेरणा स्रोत है। इस उपन्यास में एक महिला पर दुराचारों को अंजाम देने वाले लोगों के विरुद्ध खड़े होकर लोहा लेने की प्रतिज्ञा की संघर्ष पूर्ण कथा प्रस्तुत की है। भागुली देवी का बेटा वीरू इस उपन्यास में आदर्श पात्र का प्रतीक होता है, जो पढ़-लिखकर भी शहर में न रहकर अपने गाँव मदनपुर में ही निर्वाह करके अपने गाँव और गाँव वालों की तरक्की के लिए खुद को न्योछावर कर देता है। गाँव को शराब के धंधे करने वालों से बचाने में वह अपने प्राण गैंग वालों के हाथ गवा देता है। वीरू की पत्नी सुनीता अपने पति की मौत का बदला लेने तथा वीरू का अधूरा सपना पूरा करने के लिए गाँव की अन्य महिलाओं के साथ मिलकर हत्यारे कुलदीप की हत्या करने में सफल हो जाती है। अंत में, डॉ. निशंक ने नारी सशक्तिकरण को सफलता पूर्वक दर्शाया है।

'कृतघ्न' उपन्यास में डॉ. निशंक ने अंबुज नामक पात्र द्वारा वर्तमान समाज में प्रचलित महिलाओं की विभिन्न समस्याओं को दर्शाते हुए समाज की बेसहारा महिलाओं के लिए जो करना चाहते हैं, डॉ. निशंक ने अंबुज के द्वारा इस उपन्यास में पूरा किया। पूनम नामक पात्र के द्वारा व्यक्ति की अनंत तृष्णा जो मनुष्य में कृतघ्नत्व उत्पन्न करता है उसको बहुत ही खूबी से दर्शाया गया है। पूनम न तो अपने चाचा नरेन के पास संतुष्ट से रही और न, वह अपनी नौकरी से संतुष्ट थी। डॉ. निशंक ने इस उपन्यास में पत्रकारों पर भी करारा व्यंग्य किया है कि किस तरह किसी भी पीड़ित महिला की कहानी को बढ़ा- चढ़ाकर अपने फायदे और प्रसिद्धि के लिए अखबार में छपवाते हैं जिस से उसका समाज में जीना मुश्किल हो जाता है। सुकन्या जैसी पात्र के द्वारा डॉ. निशंक ने एक आदर्श नारी का निर्माण किया जो किसी भी लोभ-लालच के

बिना अंबुज को अदालत में निर्दोष साबित करने के लिए पूरी कोशिश लगा कर सफल हुई। डॉ. निशंक ने इस उपन्यास में स्त्री के स्वाभिमान और उसकी अंतर्मनोदशा का वर्णन मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है।

भाँगोंवाली' उपन्यास में डॉ. निशंक ने 'भाँगोंवाली अम्मा' नामक पात्र, जो स्वर्गवासी शास्त्री जी की पत्नी है, के माध्यम से एक माँ के जीवन द्वंद्व को उद्घाटित किया है, साथ ही परिवार के टूटते रिश्ते और बिखरते विश्वास को भी उजागर किया है। यह उपन्यास उस माँ की करुण कहानी का जीवंत दस्तावेज है, जो अपनी संतान के जीवन को सदा सुखमय बनाने के लिए अपनी प्रत्येक सुख-सुविधा, शौक-शृंगार आदि का गला घोंट देती है। उसके चार-चार बेटे होते हुए भी उसकी अंतिम घड़ी में उन्होंने उसे बहुत ही लाचारी में दम तोड़ने के लिए बेसहाय बनाया। सिर्फ उनका सबसे छोटा बेटा जयदीप उनके अंतिम समय में उनकी सेवा के लिए होता है। युवा वर्ग इस उपन्यास से बहुत बड़ी सीख ले सकता है।

'ज़िन्दगी रुकती नहीं' उपन्यास में डॉ. निशंक केदारनाथ आपदा में अपने प्रियजनों को खोने और घर-परिवार के बिछोहने के बावजूद भी, जिन्होंने हार नहीं मानी, ऐसे जीवट लोगों की जीवटता को समर्पित करते हैं। इस उपन्यास में विक्रम और लक्ष्मी नामक पात्र द्वारा डॉ. निशंक उस दर्दनाक केदारनाथ घटना के बाद वाली धुंधली सी उम्मीद के दीया को दर्शाया जो उस आपदा के बचे लोगों में थी। उपन्यास के अंत में कमल चाचा नामक पात्र ने जो बातें विक्रम और लक्ष्मी को समझाया कि नकारात्मक सोच से ज़िंदगी रुक जाती है और जिजीविषा एवं संवेदनशीलता से ज़िन्दगी कभी रुकती नहीं, उसी पर उपन्यास का कथानक आधारित है। कमल चाचा कहते हैं कि स्व से उठकर सर्व की भावना होना ही सच्ची इंसानियत है। डॉ. निशंक केदारनाथ आपदा को इस उपन्यास का आधार बनाकर वर्तमान पीढ़ी को यह संदेश देना चाहते हैं कि सबसे बुरी घटना में भी हिम्मत नहीं छोड़नी है और सिर्फ स्वयं और अपनों के लिए ही नहीं सम्पूर्ण समाज के हित के लिए ही सदैव कदम उठाया जाना चाहिए।

'लोक' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है। जैसे सामान्य अर्थ, व्यापक अर्थ, लाक्षणिक अर्थ। विद्वानों का एक वर्ग 'लोक' को अंग्रेजी शब्द 'फोक' का पर्याय मानता है। 'फोक' की तुलना में 'लोक' की अर्थ व्याप्ति कहीं अधिक है। लोक उस जन का पर्याय है जो जागरूक, अहंकार विहीन और अपनी धरा के रूप, रंग, गंध और रस से ओतप्रोत, अपनी धरा की ऊर्जा से ऊर्जावान और इस धरा की चेतना से चेतन और जीवंत बना रहता है। भारतीयता की पहचान का वास्तविक स्रोत लोक का ज्ञान ही है। शास्त्र ज्ञान और लोक ज्ञान से ओतप्रोत, लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए, अपनी परम्परागत स्थिति में जो जीता है और अनुभव की रोशनी में अपना स्वतंत्र ज्ञान रखता है, वह लोक है। लोक परिवार, समाज, राज्य, राष्ट्र, भापा, लोकतंत्र, आधुनिकता और प्रगतिशीलता के निर्माण का सबसे बड़ा स्रोत है ।

लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगरों और गाँव में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर के परिष्कृत, रुचि सम्पन्न, सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।

आदि में समाज में उसके सभी सदस्य लोक (फोक) होते हैं और इस शब्द के विस्तृत अर्थ को लें तो सभ्य राष्ट्र की पूरी जनसंख्या को लोक की संज्ञा दी जा सकती है; किंतु सामान्य प्रयोग में पाश्चात्य प्रणाली की सभ्यता में लोक वार्ता (फोक लोर), लोक संगीत (फोक म्यूजिक) आदि शब्दों में लोक का अर्थ संकुचित होकर केवल उन्हीं का ज्ञान कराता है जो नागरीक संस्कृति और टेक्नीकल शिक्षा के प्रवाहों से मुख्यतः परे हैं, जो निरक्षर हैं अथवा जिन्हें मामूली-सा अक्षर ज्ञान है, जो ग्रामीण और गँवार हैं। 'लोक' के स्वरूप को वैदिक साहित्य से लेकर आचार्य भरत तथा भरत के पश्चात् अब तक के विद्वानों ने स्थिर करने का प्रयास किया है। परन्तु तस्वीर अब भी धुँधली है। इसीलिए रामनरेश त्रिपाठी जैसे कवि 'लोक' के प्रकृत रूप को 'ग्राम्य' सम्बोधन के पक्ष में रहे हैं।

चेतना शब्द संस्कृत की 'चित्' धातु में 'युच' और 'टाप्' प्रत्यय (चित्+युच टाप्) से मिलकर बना है। 'चेतना' का अर्थ है- बोध, ज्ञान, विवेक, बुद्धि आदि। यह वह शक्ति है जो ज्ञान का मूलाधार है। इसका बोध अंतर्निरीक्षण के द्वारा ही संभव है। 'चेतना' अंग्रेजी के कॉन्शसनेस (consciousness) के समतुल्य प्रयुक्त होने वाला शब्द है। चेतना मानव के आन्तरिक और बाह्य सभी प्रकार के जीवन चक्रों का बोध करने वाली शक्ति है। चेतना मानव के अंतःकरण की कमजोरियों का अंत करके, उसके जीवन का उत्कर्ष करती है और दूसरों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। चेतना संघर्षोन्मुखी, अमानवीयता का विरोध करने वाली, अपने समूह की रक्षा करने वाली, लोकतंत्र के अंदर प्रवेश कर उसकी बुराइयों को उघाड़ने वाली, लोक हित चाहने वाली, क्रियाशील, परिवर्तनशील और ममय के अनुकूल अभिव्यक्ति चाहने वाली युग धारा है। अतः परिवार, समाज, राष्ट्र के उत्कर्ष के मूल में 'चेतना' का विस्तार ही निहित है।

चेतना उस प्रतिक्रिया को कहा जाता है जो परिस्थिति के ज्ञान से उत्पन्न होती है। चेतना को दूसरे शब्द में 'चेतन्य' कहा जाता है। चेतना वह मानव बल है जो मस्तिष्क से उत्प्रेरित होता है। व्यक्ति की हर प्रतिक्रिया उसकी चेतना पर आधारित होती है। सचेत व्यक्ति की यही विशेषता है कि उसे अपनी चेतना के द्वारा ही किसी व्यवहार, विषयों व वस्तुओं का ज्ञात होता है। बुद्धि की वह स्तर 'चेतना' है जिसके कारण ही व्यक्ति को बाह्य संसार की ओर अनुक्रियाशीलता, अत्यन्त अनुभूति का आवेग, चयन अथवा निर्माण करने की क्षमता होती है। चेतना जीवधारियों में रहने वाला वह तत्व है, जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है। दूसरे शब्दों में हम उसे मनुष्य की क्रियाओं को चलाने वाला तत्व कह सकते हैं। अतः लोक चेतना से तात्पर्य है मूल परम्परागत आयाम की सराहना करना तथा उस ओर ध्यान देना। लोक में जागृति करना।

लोक चेतना के आयाम हैं– सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक। इन आयामों के द्वारा डॉ. निशंक ने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक

विषमताओं पर प्रहार किया है। उन्होंने समाज की बुराइयों को पाठक के सामने लाकर लोक को जागृत करने का प्रयत्न किया है। उनका प्रत्येक उपन्यास लोक चेतना के यथार्थ चित्रण से ओतप्रोत है।

डॉ. निशंक ने भारतीय समाज को समझने के लिए अपनी जन्मभूमि और कर्मभूमि का चयन किया। डॉ. निशंक के उपन्यास पहाड़ी जन जीवन पर केंद्रित होते हुए भी भारतीय समाज को प्रतिबिंबित करते हैं। डॉ. निशंक के लेखन के सम्मुख उनका अपना पहाड़ी समाज है। इस समाज की गतिविधियाँ हैं और इस लोक की हलचल है। उपन्यासों में वर्णित वातावरण के आधार इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि पहाड़ी समाज भले ही पुरुष प्रधान हो, परन्तु महत्व स्त्री का और स्त्री के श्रम तथा संघर्ष का है। पुरुषों के पास कम काम नहीं है। डॉ. निशंक का 'लोक' ग्राम तक सीमित नहीं है। उन्होंने नगरीय जन-जीवन का भी चित्रण किया है, परन्तु इस लोक का जीवन डॉ. निशंक कृत्रिम मानते हैं। इस जीवन में न उन्मुक्त प्राकृतिक परिवेश है, न रिश्तों की गर्माहट, न परस्पर प्यार है, है तो केवल दमघोंटू वातावरण।

डॉ. निशंक उपन्यासकार होने के साथ-साथ एक सफल राजनेता भी हैं। उपन्यास 'ज़िन्दगी रुकती नहीं' के प्रधानजी के माध्यम से डॉ. निशंक ने वर्तमान राजनीति के विद्रूप चेहरे को पाठकों के सम्मुख रखा है। राजनीति के सबसे निचले क्रम अर्थात ग्राम पंचायत के स्तर की राजनीति की धरातलीय वास्तविकता यही है। गाँव का प्रभावशाली व्यक्ति अपने पूर्वजों के समय से चले आ रहे प्रभुत्व को अक्षुण्ण रखने के उद्देश्य से सरपंच या प्रधान का पद जीतता है। पाँच वर्ष बाद उसकी पंचायत यदि आरक्षित हो जाती है, तब वह अपनी बेटी, बहू और यहाँ तक की अपने नौकर-चाकरों में से किसी को चुनाव लड़वाता है ताकि वास्तविक सत्ता उसी के हाथ रहे।

आस्था हमें संस्कारित करती है। आस्था के कारण हम अच्छा करने की प्रेरणा पाते हैं और बुरा कार्य करने से डरते हैं । हमारे पहाड़ में हर मनुष्य के अन्दर श्रद्धा और आस्था कूट-

कूटकर भरी है, इसलिए इसे देवभूमि भी कहा जाता है। करोड़ों हिंदुओं की आस्था के प्रतीक श्री बद्रीनाथ, श्री केदारनाथ, माँ गंगोत्री और माँ यमनोत्री इसी भूमि में हैं। महान है यह भूमि। तभी तो आज विश्व भर के लोग शांति की खोज में यहाँ पर आते हैं। हमारे ऋषि-मुनियों की तपस्थली भी रही है तपोभूमि। हजारों वर्षों पूर्व से हिमालय की कंदराओं में तपस्या और साधना करके विश्व और मानव कल्याण के लिए ऋषियों ने अपना जीवन अर्पित किया है। डॉ. निशंक ने धर्म के दोनों रूपों (लोक धर्म और नागर धर्म) को समन्वित करने का सार्थक प्रयास किया है। एक ओर 'गाँव के लोग सामूहिक रूप से देव पूजा करने और गाँव में सुख समृद्धि है' कहकर वे लोक धर्म के महत्व को प्रतिपादित करते हैं।

डॉ. निशंक के उपन्यासों में अर्थ संबंधी चेतना सर्वत्र है। 'भागोंवाली' उपन्यास के शास्त्रीजी का चेतना के स्तर पर होरी से साम्य है। शास्त्री जी भी अपने भाइयों को धोखा नहीं देना चाहिए। डॉ. निशंक की यही आदर्शवादी चेतना उनके समस्त उपन्यासों में स्थापित है। यह आर्थिक आदर्श चेतना ग्रामों के अतिरिक्त अन्यत्र हो ही नहीं सकती।

संस्कृति का दायरा अत्यन्त विशाल है। व्यक्ति की सोच, विचार, खान-पान, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, संस्कार, धर्म, अध्यात्म, ज्योतिष, इतिहास, पर्व, त्यौहार, व्रत, मेले, उत्सवादि सब कुछ संस्कृति में समाहित हैं। यहाँ तक कि प्रातः काल उठने से लेकर सोने के समय तक के व्यक्ति की समस्त गतिविधियाँ संस्कृति के अंतर्गत आ जाती हैं। उत्तराखण्ड उत्सव प्रेमी राज्य है। लोक देवताओं के स्थानों पर मेलों का आयोजन सामान्यतः होता है। इस परम्परा का निर्वाह लोक में पीढ़ी दर पीढ़ी होता है।

डॉ. निशंक के उपन्यासों के कथानक की धुरी में लोक चेतना के विविध आयामों का प्रवाह है– निर्धन, दलित, पीड़ित, असहाय, दिव्यांग, नारी के प्रति सद्भावना आदि। उन्होंने अपने उपन्यासों में पहाड़ी जनजीवन के प्रामाणिक चित्रों को प्रस्तुत किया है। उन्होंने लोक जीवन की समस्याओं, वेदनाओं, जीवन यापन की कठिनाइयों, विडंबनाओं और पीड़ाओं को अपने

अनुभवों से महसूम ही नहीं किया, बल्कि विभिन्न पात्रों के द्वारा अभिव्यक्ति भी प्रदान की है। उनके उपन्यासों में पहाड़ी जनजीवन के अभावों का यथार्थ चित्रण है।

लोक का स्वरूप सदा स्थिर नहीं रहता। इसमें परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन के अनुरूप लोक चेतना भी परिवर्तित होती रहती है। उपन्यासकार डॉ. निशंक परिवर्तन के पक्षधर हैं। परिवर्तन यदि पुरुष के जीवन में है तो स्त्री के जीवन में भी होना चाहिए। यही कारण है कि डॉ. निशंक के सभी औपन्यासिक नारी पात्रों के भीतर परिवर्तन की एक तड़प है। यह तड़प पल्लवी (पल्लवी), बीरा (बीरा), सरोज (छूट गया पड़ाव), लक्ष्मी (जिन्दगी रुकती नहीं), लक्ष्मी (अपना पराया), अम्मा (भागोंवाली), मिताली (निशान्त), सुकन्या (कृतघ्न), सुनीता (प्रतिज्ञा) तथा सावित्री (मेजर निराला) इन सभी स्त्री पात्रों में परिलक्षित होती है। 'पल्लवी' उपन्यास में जहाँ बिन्दु पति की मृत्यु के पश्चात अपने सास-ससुर की उपेक्षा करती है और वकील साहब से विवाह कर धोखा खाती है, वहीं पल्लवी दूसरा विवाह न कर अपना सारा जीवन ग्राम की सेवा में समर्पित करती है।

यह सबसे बड़ा सामाजिक परिवर्तन है जिस ओर डॉ. निशंक संकेत कर रहे हैं। दहेज प्रथा हमारे समाज का कलंक रहा है और अभिशाप भी न्यूनाधिक यह कलंक और अभिशाप अब भी चल रहा है। इस दहेज प्रथा ने हजारों-लाखों युवतियों- निरपराध युवतियों को असमय काल के गाल में पहुँचाया है। बीरा के चरित्र के द्वारा डॉ. निशंक ने युवतियों को एक नयी ऊर्जा प्रदान की है और यह ऊर्जा है स्वलम्बन की, समाज सेवा की।

राजनीति को कभी जनता की सेवा का माध्यम माना जाता था। निशंक की आदर्श परिकल्पना उपन्यास 'ज़िन्दगी रुकती नहीं' के 'प्रधान जी' के रूप में व्यक्त हुई है। इसके विपरीत अधिकांश नेता राजनीतिक पद पाते ही गर्व से चूर हो जाते हैं। पद पाने के पूर्व तक चुनाव जीतने के लिए 'जनता की सेवा करने के लिए सेवक' बनते हैं। फिर जनता को अपने

सहज कार्यों को कराने के लिए इनसे 'विनती' करनी पड़ती है–'सेवक' से मालिक (जनता) विनती करता है। वर्तमान राजनीति का कड़वा सच यही है।

धर्म का स्वरूप भी परिवर्तनशील रहा है, किन्तु केवल बाह्य रूप ही । "धारयेति इति धर्मः" के अनुरूप जो तत्व धारण करने योग्य हैं, वे तो शाश्वत हैं, अपरिवर्तनीय हैं । इन तत्वों पर देश-काल-वातावरण किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ता और इसका आधार है आस्था और श्रद्धा। इसी श्रद्धा के धारण करने के कारण ही डॉ. निशंक के तमाम औपन्यासिक पात्र श्रेष्ठ कार्य और मानवीय चेष्टाएँ करने हेतु तत्पर रहते हैं और आदर्शों की स्थापना करने हेतु प्रयत्न करते रहते हैं। 'मेजर निराला' का निराला, 'बीरा' का दीपक, 'छूट गया पड़ाव' की सरोज, 'पहाड़ से ऊँचा' का मोहन और गीता, 'पल्लवी' का ध्रुव और पल्लवी, 'निशान्त' का निशान्त, 'भागोंवाली' के शास्त्री जी, 'प्रतिज्ञा' की सुनीता, 'अपना-पराया' के पांडे जी और राहुल, 'कृतघ्न' का अम्बुज तथा 'ज़िन्दगी रुकती नहीं' के विक्रम और कमल ऐसे पात्र हैं जो धर्म के आदर्श रूप की स्थापना के लिए कटिबद्ध हैं और उसके लिए पौरुष करते हैं।

परिवर्तित समय में एक और क्रांतिकारी कार्य परिलक्षित हुआ । पहले नारी शक्ति का कार्य घर की चारदीवारी तक था। अधिक हुआ तो कृषि कार्यों के लिए खेतों तक अपना योगदान करती थीं, घास और लकड़ी लाती थीं तथा पशु उत्पाद–दूध निकालना, दूध से छाछ, दही, घी मक्खन आदि निकालने में ये सहयोग करती थीं। परन्तु लड़कियाँ अब शिक्षा प्राप्त कर सरकारी नौकरी कर रही हैं, निजी नौकरी कर रही हैं और परिवार को आर्थिक दृढ़ता प्रदान कर रही हैं। इतना ही नहीं, डॉ. निशंक अपने उपन्यासों के स्त्री पात्रों को 'बेचारगी' से बाहर निकालते हैं और उन्हें आर्थिक स्वावलम्बन प्रदान करते हैं। 'छूट गया पड़ाव' की नायिका सरोज, सरकारी शिक्षिका है और दुर्गम पहाड़ी ग्राम-बिनगढ़ में नौकरी करती है। 'पल्लवी' उपन्यास की नायिका अपने सैनिक पति- ध्रुव के शहीद होने पर स्वयं ही फौज में भरती होती है और अधिकारी बनती है।

संस्कृति अपरिवर्तनशील होती है। तथापि परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है। परिवर्तन संस्कृति में भी परिलक्षित होता है। भारतीय संस्कृति में तो परिवर्तन परिलक्षित होता ही है, लोक संस्कृति में भी परिवर्तन परिलक्षित होता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अति विकसित रूप का प्रभाव लोक संस्कृति पर भी पड़ा है और परिवर्तन उसमें भी हुआ है। बाजारवाद की गिरफ्त में लोक संस्कृति भी आ चुकी है। पश्चिमी सभ्यता और आधुनिकता का लोक पर प्रभाव पड़ा है। इन परिवर्तित हो रहे सांस्कृतिक प्रतिमानों के प्रति उपन्यासकार डॉ. निशंक का दृष्टिकोण स्वस्थ है। 'पल्लवी' उपन्यास की नायिका 'पल्लवी' के मिलिट्री अफसर बनकर गाँव लौटने पर समूचा गाँव आनन्दित होकर ढोल नगाड़ों एवं डी.जे. के दमघोंटू कानफाड़ संगीत की अभिव्यक्ति के द्वारा खुशी की अभिव्यक्ति करता है।

लोक में जब परिवर्तन होते हैं तो समाज के प्रत्येक अंग में यह परिलक्षित होता है। विवाह संस्कार भारतीय संस्कृति का एक पावन अंग है। समाज का आकार-प्रकार प्रायः एक-सा नहीं रहता। प्रत्येक सामाजिक संरचना परिवर्तन के अधीन है। पहाड़ी जीवन में लोक को डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने यथावत शब्द तो दिये ही हैं, उनमें हो रहे परिवर्तनों को भी उपन्यासकार ने पढ़ा है, समझा है और विश्लेषित किया है।

रचनाकार जो सृजन करता है, भाषा उसे प्रदर्शित करने का माध्यम होती है। भाषा प्रत्येक रचनाकार की अलग-अलग होती है। यह शैली रचनाकार के व्यक्तित्व की परिचायक भी होती है। डॉ. निशंक ने तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज, शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है। उन्होंने मुहावरे और लोकोक्ति का भी प्रयोग किया है, जिससे भाषा रोचक होने के साथ-साथ सजीव भी हो उठी है। अलंकारों के प्रयोग से उनकी भाषा में मनोरमता आई है। उनके उपन्यासों में पात्रानुकूल, सांकेतिक तथा आलंकारिक भाषा का प्रयोग हुआ है।

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के अधिकतर उपन्यास ग्राम्य जीवन पर केंद्रित हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज के समस्त जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने अपने हर

उपन्यास के पात्रों को निराशा से हौसला देकर फिर से आत्मविश्वास के साथ समाज को सुधारने उठ-खड़ा होते प्रस्तुत किया है। सामान्यतः भाषा को वैचारिक आदान प्रदान का माध्यम कहा जा सकता है। भाषा आंतरिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। इतना ही नहीं, वह हमारे अन्तर के निर्माण विकास, हमारी अस्मिता तथा सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान का भी साधन होती है। भाषा के अभाव में मनुष्य अपूर्ण और पशुवत् होता है।

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने अपने सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में समुचित भाषा का प्रयोग किया है। डॉ. निशंक को अपनी लोक भाषा से हार्दिक प्यार है । डॉ. निशंक ने संग्रहीत लोकभाषा के मात्र उन शब्दों को ग्रहण किया गया है, जिनके अर्थ उनके साथ नहीं दिये गये हैं। इनके अतिरिक्त सैकड़ों शब्द ऐसे प्रयुक्त हुए हैं, जो लोकभाषा –गढ़वाली के हैं। लोक संस्कृति और लोक भाषा का प्रभाव डॉ. निशंक के समस्त उपन्यासों में परिलक्षित होता है।

डॉ. निशंक को हिन्दी के विशुद्ध रूप के प्रति कोई आग्रह नहीं है। जो भाषा रूप सहज है और सर्व स्वीकार्य है, उसी का प्रयोग करने के वे पक्षधर हैं। इनके विचारों के अनुरूप ही डॉ. निशंक की औपन्यासिक भाषा– सहज, सरल और बोलचाल' की है।

प्रत्येक उपन्यासकार की अपनी अलग शैली होती है। जिसकी सहारे कथा को कथावस्तु में बदल दिया जाता है। उपन्यासकार डॉ. निशंक की भी अपनी शैली है। उसी शैली की सहायता से उन्होंने अपने उपन्यासों को श्रेष्ठता प्रदान की है। भाषा के माध्यम से साहित्यकार अपने विचारों को शब्द रूप देता है तो शैली की सहायता से उन विचारों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। परिवेश का भी उपन्यास के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। कथा का विकास किसी न किसी परिवेश में होता है। डॉ. निशंक की उपन्यासों में प्रयुक्त प्रमुख शैलियाँ हैं– आलंकारिक, चित्रात्मक आदि।

शोध-प्रबंध के निष्कर्ष बिन्दु

1. विद्वान ग्राम्य संस्कृति से लोक चेतना का अर्थ ग्रहण करते हैं।
2. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने अपने उपन्यासों में जिस लोक चेतना की बात की है, उसका अभिप्रेत यही ग्राम्य संस्कृति है।
3. डॉ. निशंक लोक चेतना के अंतर्गत उत्तराखण्ड के पहाड़ी ग्रामों का यथार्थ चित्रण करते हैं। इन्हें उसके स्वस्थ और प्राकृतिक परिवेश से लगाव है।
4. डॉ. निशंक अपने उपन्यासों के माध्यम से पहाड़ी ग्रामों की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तंत्र की व्याप्ति और उसकी संचालन-प्रक्रिया को प्रस्तुत किया है।
5. डॉ. निशंक के उपन्यास-साहित्य में अभिव्यक्त लोक चेतना वस्तुतः पहाड़ी अंचल की ही लोक चेतना नहीं है, अपितु समूचे देश की लोक चेतना की परिचायक है।
6. समय परिवर्तनशील है, तदनुसार परिवर्तन लोक में भी हुआ है। डॉ. निशंक के उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का सजीव वर्णन है।
7. डॉ. निशंक की औपन्यासिक भाषा बोधगम्य और पात्रानुकूल होते हुए, परम्परागत मुहावरों से सुसज्जित है। उनके द्वारा गढ़े गये नवीन मुहावरे भाषा की सम्प्रेषण शक्ति की वर्धक है।
8. डॉ. निशंक के उपन्यासों की लेखनगत प्रमुख शैलियाँ हैं– चित्रात्मक, आलंकारिक आदि।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ :

1. रमेश पोखरियाल 'निशंक', मेजर निराला, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
2. रमेश पोखरियाल 'निशंक', बीरा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
3. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पहाड़ में ऊंचा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
4. रमेश पोखरियाल 'निशंक', निशान्त, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2008
5. रमेश पोखरियाल 'निशंक', अपना पराया, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
6. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पल्लवी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
7. रमेश पोखरियाल 'निशंक', छूट गया पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
8. रमेश पोखरियाल 'निशंक', प्रतिज्ञा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2014
9. रमेश पोखरियाल 'निशंक', कृतघ्न, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2015
10. रमेश पोखरियाल 'निशंक', भागोंवाली, प्रभात पकाशन, दिल्ली, 2015
11. रमेश पोखरियाल 'निशंक', जिन्दगी रुकती नहीं, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021

सहायक ग्रंथः

1. अभिमन्यु सिंह, लोक साहित्य सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रतिमान, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021
2. कपिलदेव पांवर, निशंक के साहित्य में लोक तत्व, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022
3. कुंदन उप्रेती, लोक साहित्य के प्रतिमान, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1971

4. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1957
5. कृष्णदेव उपाध्याय, भारतीय लोक विश्वास, हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद, 1991
6. कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोक संस्कृति, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1989
7. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014
8. गोविंद चातक, संस्कृति- समस्या और संभावना, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
9. गोपाल शर्मा, निशंक-एक अंतरंग पाठ, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021
10. गोविंद चातक, भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ: मध्य हिमालय, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
11. गणपति चंद्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (भाग 1, भाग 2), लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2015
12. डी. डी. शर्मा, उत्तराखण्ड का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी, 2017
13. दानबहादुर पाठक एवं डॉ. मनोहरगोपाल भार्गव, भाषा विज्ञान, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ, 2015
14. दिनकर जोशी, भारतीय संस्कृति के सृजन, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 2022
15. देवीसिंह पोखरिया, उत्तराखण्ड: लोक संस्कृति, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 2009
16. नगेन्द्र ध्यानी, डॉ. निशंक की सृजन यात्रा, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2017
17. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2013
18. नीलम सराफ़, हिंदी उपन्यास: सामाजिक समस्याएँ, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 2022
19. पंकज विष्ट, धर्म: प्रासंगिकता के सवाल, समयांतर प्रकाशन, दिल्ली, 2006

20. परशुराम शुक्ल 'विरही', लोक संस्कृति: अवधारणा और तत्व, म.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2011
21. प्रवेश कुमार, लोक साहित्य, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021
22. प्रेम सिंह, भ्रष्टाचार: विरोध, विभ्रम और यथार्थ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
23. बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012
24. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
25. बिहारी लाल जालंधरी, उत्तराखंडी भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन, देवभूमि प्रकाशन, देहरादून, 2012
26. भारत यायावर (सं), हिंदी भाषा (महावीर प्रसाद द्विवेदी), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
27. मयंक मुरारी, लोक जीवन पहचान, परंपरा और प्रतिमान, प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, महाराष्ट्र, 2021
28. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', कथाकार निशंक के उपन्यासों में जीवन-मूल्य, डायमंड बुक्स, दिल्ली, 2017
29. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', डॉ. निशंक के काव्य में इन्द्रधनुषी चिंतन, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2019
30. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', डॉ. निशंक के उपन्यासों में जीवन-दर्शन, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2019
31. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', डॉ. निशंक की कहानियों में मानवीय संवेदना, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2019

32. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में जीवन मूल्य, विनसर पब्लिसिंग कम्पनी, देहरादून, 2009
33. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', डॉ. निशंक की रचनाधर्मिता, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2021
34. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' और राष्ट्रीय शिक्षा नीति, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2022
35. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण' एवं बेचैन कण्डियाल, हिमवंत का राष्ट्रीय कवि: डॉ. निशंक, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2021
36. रवींद्र भ्रमर, हिंदी साहित्य में लोक तत्व, भारत साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1965
37. राघव प्रकाश, शैली विज्ञान और पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्यशास्त्र, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1983
38. राजमणि शर्मा, आधुनिक भाषा विज्ञान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
39. रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006
40. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
41. रामविलास शर्मा, लोक जीवन और साहित्य, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1955
42. रैल्फ फोक्स, उपन्यास और लोक जीवन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 1957
43. रमा, देश प्रेम, प्रकृति और पहाड़, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020
44. रमेश पोखरियाल 'निशंक', जीने का नाम ज़िन्दगी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021
45. रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015

46. लखन लाल खरे, लोकभाषा और लोक साहित्य पर वैश्वीकरण का प्रभाव, शासकीय महाविद्यालय, कोलारस (म. प्र.), 2009
47. विवेक शंकर, हिंदी साहित्य, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2016
48. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृथ्वीपुत्र, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, 1949
49. विद्या चौहान, लोक साहित्य, सरस्वती प्रकाशन, कानपुर, 2020
50. शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य: युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1972
51. शरर लाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, हिंदुस्तानी एकाडेमी, इलाहाबाद, 2015
52. शशिभूषण शीतांशु, शैली और शैली विश्लेषण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
53. श्याम सुंदर दुबे, लोक परम्परा पहचान और प्रवाह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2003
54. श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1954
55. श्रीराम शर्मा, लोक साहित्य सिद्धांत और प्रयोग, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1992
56. सुरेश गौतम, भारतीय लोक साहित्य कोश, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
57. सत्येंद्र, लोक साहित्य विज्ञान, शिवलाल एंड कम्पनी, आगरा, 1971
58. त्रिभुवन सिंह, हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, वाराणसी, 2014

कोशः

1. मानक हिन्दी कोश, (सं) रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1978
2. संस्कृत-हिन्दी कोश, बामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स, दिल्ली, 1989

3. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1, 2), (सं.) धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी, 2000
4. ज्ञानशब्द कोश, (सं) मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 1986

पत्रिकाएँ:

1. शोध सरिता, सं. विनय कुमार शर्मा, अंक 36, अक्टूबर-दिसम्बर, 2022
2. समसामयिक सृजन, संपा. डॉ. महेन्द्र प्रजापति, अंक: 1, जनवरी-मार्च, 2002
3. संकल्य, संपा. डॉ. गोरख नाथ तिवारी, अंक: 2, अप्रैल-जून, 2024
4. द्विभाषी राष्ट्रसेवक, संपा. प्रो. मोहन, अंक:2, मई, 2024

प्रथम अध्याय

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(क) डॉ. निशंक का व्यक्तित्व

(ख) डॉ. निशंक का कृतित्व

द्वितीय अध्याय

लोक और लोक चेतना : स्वरूप विवेचन

(क) लोक : अर्थ, परिभाषा और स्वरूप

(ख) लोक चेतना : अवधारणा एवं आयाम

तृतीय अध्याय

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक

चेतना : विविध आयाम

(क) सामाजिक चेतना (ख)राजनीतिक चेतना

(ग) धार्मिक चेतना (घ) आर्थिक चेतना

(ङ) सांस्कृतिक चेतना

चतुर्थ अध्याय

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक :

परिवर्तित स्वरूप

(क) सामाजिक परिवर्तन (ख) राजनीतिक परिवर्तन

(ग) धार्मिक परिवर्तन (घ) आर्थिक परिवर्तन

(ङ) सांस्कृतिक परिवर्तन

पंचम अध्याय

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों की भाषा-शैली

(क) भाषा

(ख) शैली

उपसंहार

संदर्भ ग्रंथ-सूची:

शोधार्थी का जीवन-वृत्त

1. नाम : मेरी आर. ललरिनमुआनपुई
2. पिता का नाम : आर. रौलियाना
3. माता का नाम : एफ. ह्मिङथनमोई
4. पता : सेलिङ, आइजॉल – 796161 (मिज़ोरम)
5. जन्म तिथि : 05-09-1986
6. शैक्षणिक योग्यता : एम. ए. (हिंदी)
7. मोबाइल : 8575231320
8. ईमेल : lovelovemary6@gmail.com
9. प्रकाशन :

(क) मेरी आर. ललरिनमुआनपुई एवं सीनियर प्रो. सुशील कुमार शर्मा, रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यास-साहित्य का मूल्यांकन, संकल्य, अंक: 2, अप्रैल-जून, 2024

(ख) मेरी आर. ललरिनमुआनपुई एवं सीनियर प्रो. सुशील कुमार शर्मा, जय जवान जय किसान की प्रतिध्वनि उपन्यास मेजर निराला, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, अंक: 2, मई, 2024

10. संगोष्ठी में पत्र वाचन:

(क) जय जवान जय किसान की प्रतिध्वनि: उपन्यास 'मेजर निराला', आयोजक: हिमालय विरासत ट्रस्ट, देहरादून, उत्तराखण्ड एवं स्याही ब्लू बुक्स, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान, 01-02 मई, 2023

(ख) रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों मे प्रकृति-वर्णन, आयोजक: मानविकी एवं भाषा संकाय, मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल, मिज़ोरम, 27-29 फरवरी 2024

मेरी आर. ललरिनमुआनपुई

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम	: मेरी आर. ललरिनमुआनपुई
शिक्षा	: पी-एच.डी.
विभाग	: हिंदी
शोध-प्रबंध का शीर्षक	: डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक चेतना
प्रवेश शुल्क के भुगतान की तिथि	: 25. 08. 2021
शोध प्रस्ताव की संतुस्ति:	
1. विभागीय शोध समिति की तिथि	: 06-04-2022
2. बी.ओ.एस. की तिथि	: 24-05-2022
3. स्कूल बोर्ड की तिथि	: 10-06-2022
मिज़ोरम विश्वविद्यालय पंजीयन संख्या	: 1906479
पी-एच.डी. पंजीयन संख्या	: MZU/Ph.D./1805 of 25.08.2021
समयावधि विस्तार का पत्र संख्या	: N/A

(प्रो. सुशील कुमार शर्मा)
अध्यक्ष, हिंदी-विभाग
मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल

प्राक्कथन

साहित्य की विविध विधाओं में चाहे पद्य हो या गद्य सब का अपना महत्व है। साहित्य की अपनी भाषा होती है, अपनी शैली होती है, जो सामान्य बोलचाल की भाषा से सर्वथा पृथक होती है। पद्य यदि सरल है सहज है तो वह विचाराभिव्यक्ति में सक्षम होता है। गद्य के विभिन्न घटकों के संबंध में भी यही बात सत्य प्रतीत होती है। गद्य के अंतर्गत कथा साहित्य का विशिष्ट स्थान है। भारत देश में कहानियों का प्रचलन लोक कथाओं तथा लोक गाथाओं के रूप में प्रचलित रहा है। राज्य-रानी, देवी-देवता और भूत-प्रेतों से विकसित होकर ये कथाएँ-गाथाएँ अब तक की यात्रा सम्पन्न कर सकी हैं। परन्तु इनमें उपन्यास सर्वथा नवीन विधा है। विद्वानों के मतानुसार हिन्दी में उपन्यास का विकास अँग्रेजी से बंगला भाषा में और फिर बंगला से हिन्दी में अनुवाद के रूप में हुआ। प्रथम उपन्यास 'भाग्यवती' अथवा 'परीक्षा गुरु' से लेकर अद्यतन सहस्रों उपन्यासकारों ने सहस्राधिक उपन्यास भिन्न-भिन्न शैलियों में लिखे। इन उपन्यासों में मानव की विभिन्न अन्तर-बाह्य गतिविधियों को चित्रित किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का विषय है –**"डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक चेतना।"** प्रस्तुत शोध-प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है।

शोध-प्रबंध का प्रथम अध्याय –**"डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व"** है। इसको दो उप अध्यायों में विभाजित किया है। प्रथम उप अध्याय –**'व्यक्तित्व'** है। इसके अंतर्गत डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के जीवन का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय उप-अध्याय –**'कृतित्व'** है। इसके अंतर्गत डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के समग्र साहित्य पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय **–"लोक और लोक चेतना : स्वरूप विवेचन"** है। इसको दो उप-अध्यायों में बाँटा गया है। प्रथम उप-अध्याय – **'लोक : अर्थ, परिभाषा और स्वरूप'** है। इसके अंतर्गत लोक के स्वरूप का विवेचन किया गया है। द्वितीय उप-अध्याय **–'लोक चेतना : अवधारणा एवं आयाम'** है। इसके अंतर्गत लोक चेतना की अवधारणा एवं आयामों की विवेचना की गई है।

तृतीय अध्याय **–"डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक चेतना : विविध आयाम"** है। इसको पाँच उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम उप-अध्याय- **'सामाजिक चेतना'** के अंतर्गत समाज की विभित्र विद्रुपताओं को विश्लेषित किया गया है। द्वितीय उप-अध्याय- **'राजनीतिक चेतना'** के अंतर्गत राजनीति के विभिन्न स्तरों की चेतना का विवेचन किया गया है। तृतीय उप-अध्याय–**'धार्मिक चेतना'** के अंतर्गत धर्म के विभिन्न अंधविश्वासों, रूढ़ियों आदि को विवेचित किया गया है। चतुर्थ उप-अध्याय–**'आर्थिक चेतना'** है। इसके अंतर्गत सभी वर्गों की आर्थिक समस्याओं को उद्घाटित किया गया है। पंचम उप-अध्याय–**'सांस्कृतिक चेतना'** के अंतर्गत सांस्कृतिक चेतना को विवेचित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय–**"डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक : परिवर्तित स्वरूप"** है। इसको पाँच उप अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम उप-अध्याय–**'सामाजिक परिवर्तन'** के अंतर्गत समाज में आए विभिन्न परिवर्तनों को विवेचित किया गया है। द्वितीय उप-अध्याय–**'राजनीतिक परिवर्तन'** के अंतर्गत विभिन्न राजनीतिक बदलावों का विवेचन किया गया है। तृतीय उप-अध्याय–**'धार्मिक परिवर्तन'** के अंतर्गत धार्मिक क्षेत्र में आए परिवर्तनों को विश्लेषित किया गया है। चतुर्थ उप-अध्याय–**'आर्थिक परिवर्तन'** के अंतर्गत

आर्थिक क्षेत्र में आए परिवर्तनों की विवेचना की गई है। पंचम उप-अध्याय – **'सांस्कृतिक परिवर्तन'** के अंतर्गत सांस्कृतिक स्तर पर आए परिवर्तनों को उद्घाटित किया गया है।

पंचम अध्याय - **"डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों की भाषा-शैली"**है । इसको दो उप-अध्यायों में नियोजित किया गया है। प्रथम उप-अध्याय- **'भाषा'** के अंतर्गत भाषा का अर्थ, परिभाषा एवं डॉ. निशंक के उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय उप-अध्याय –**'शैली'** के अंतर्गत शैली के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए निशंक के उपन्यासों की शैली को विवेचित किया गया है।

उपसंहार के अंतर्गत उपर्युक्त अध्यायों से प्राप्त निष्कर्षों का समाहार एवं समाकलन किया गया है। शोध-प्रबंध को पूर्णता प्रदान करने में जिन ग्रंथों की सहायता ली गयी है, उनकी सूची दी गयी है।

हम सांसारिक प्राणी हैं और संसार में रह कर अपने कार्य-व्यापार संचालित करते हैं और सम्पादित करते हैं। ये सारे कार्य बिना ईश्वर की कृपा के सम्पन्न नहीं हो सकते, सफल नहीं हो सकते। मैं समझती हूँ, मेरे इस कार्य को पूर्णता प्रदान करने में उसी परम सत्ता के पुत्र, प्रभु ईसा मसीह की असीम कृपा है। उसकी कृपा के लिए मैं उस परमपिता को हृदय की गहराइयों से धन्यवाद देती हूँ।

हमारी भारतीय संस्कृति में गुरु का सर्वोपरि और महत्व पूर्ण स्थान है। कबीरदास कहते हैं कि गुरु और ईश्वर दोनों समान रूप से खड़े हैं। शिष्य को यह दुविधा है कि सर्वप्रथम आदर किसे दूँ? तो स्वयं ईश्वर ने ही बता दिया कि मुझसे पहले अपने गुरु को सम्मान दो, उन्हें पहले प्रणाम करो:

"गुरु गोविंद दोऊ खड़े, का के लागूँ पायँ।

बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय।।"

मेरे गुरुवर सीनियर प्रोफ़ेसर सुशील कुमार शर्मा ऐसे ही ईश्वरीय गुणों की प्रतिमूर्ति हैं। उनका सहज और सरल रूप प्रणम्य है। उनके कुशल निर्देशन और आशीर्वाद ने ही मेरे इस महत कार्य को अपने लक्ष्य तक पहुँचाया। मैं अपने गुरुवर सीनियर प्रोफ़ेसर सुशील कुमार शर्मा के प्रति नतमस्तक होकर आभार व्यक्त करती हूँ।

विभाग के सभी शिक्षकों – प्रो. संजय कुमार, डॉ. सुषमा कुमारी, डॉ. अमिष वर्मा, डॉ. अखिलेश कुमार शर्मा के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। मातृऋण और पितृऋण से संसार में कोई उऋण नहीं हो सकता। प्रत्येक माता-पिता अपनी संतान की प्रगति के स्वप्न देखता है। मेरी वात्सल्यमयी माता– श्रीमती एफ. ह्मिङथनमोई और स्नेहवर्षण करने वाले पिता– श्री आर. रौलियाना अत्यन्त प्रसन्न हैं कि उनकी सुपुत्री पी-एच. डी. कर डॉक्टर बनने जा रही है। मैं अपने माता-पिता के त्याग और तपस्या के प्रति विनत हूँ। मुझे उनका आशीष ऐसे ही प्राप्त होता रहे। अपनी छोटी बहन ललरमपारी रेनथ्लैइ की भी आभारी हूँ, जिसने मुझे सदैव प्रोत्साहित किया। मेरे विद्यालय की प्रधानाध्यापिका श्रीमती ह्मिङथनजुआली के सहयोग के लिए मैं उनका आत्मिक आभार प्रकट करती हूँ।

इन सब के अतिरिक्त मेरे शोध कार्य में जिन जिन महानुभावों ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग प्रदान किया है, उन सबके प्रति मैं हृदय की अतल गहराइयों से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। जिन ग्रंथों को मैंने संदर्भ के लिए प्रयुक्त किया है, उनके लेखकों और प्रकाशकों के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

इस शोध-प्रबंध में जो भी श्रेष्ठ बन पड़ा है, उसका सम्पूर्ण श्रेय मेरे मार्ग दर्शक गुरुदेव पूज्य सीनियर प्रोफ़ेसर सुशील कुमार शर्मा को है और जो भी न्यूनताएँ हैं, वे मेरे प्रमाद और अज्ञानता के कारण हैं।

मेरी आर. ललरिनमुआनपुई

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक चेतना

DR. RAMESH POKHARIYAL 'NISHANK' KE UPANYASON MEIN LOK CHETANA

(मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल के हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी

(पी-एच. डी.) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध का सारांश)

AN ABSTRACT SUBMITTED IN PARTIAL FULFILLMENT OF THE REQUIREMENTS FOR THE DEGREE OF DOCTOR OF PHILOSOPHY

मेरी आर. ललरिनमुआनपुई

MARY R. LALRINMUANPUII

MZU REGN.NO: 1906479
Ph.D. REGN. NO.: MZU/Ph.D./1805 of 25.08.2021

हिंदी-विभाग

मानविकी एवं भाषा संकाय

DEPARTMENT OF HINDI
SCHOOL OF HUMANITIES AND LANGUAGES

फरवरी , 2025

FEBRUARY, 2025

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक चेतना

DR. RAMESH POKHARIYAL 'NISHANK' KE UPANYASON MEIN LOK CHETANA

अनुसंधित्सु

मेरी आर. ललरिनमुआनपुई

हिंदी-विभाग

BY

MARY R. LALRINMUANPUII

DEPARTMENT OF HINDI

शोध-निर्देशक

वरिष्ठ आचार्य सुशील कुमार शर्मा

SUPERVISOR

SENIOR PROFESSOR SUSHIL KUMAR SHARMA

मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल के मानविकी एवं भाषा संकाय के अंतर्गत हिंदी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (पी-एच. डी.) की उपाधि के लिए अपेक्षित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध का सारांश

Submitted
In partial fulfillment of the requirement of the Degree of Doctor of Philosophy in Hindi of Mizoram University, Aizawl.

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन :

प्रथम अध्याय: डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(क) डॉ. निशंक का व्यक्तित्व
(ख) डॉ. निशंक का कृतित्व

द्वितीय अध्याय: लोक और लोक चेतना : स्वरूप विवेचन

(क) लोक : अर्थ, परिभाषा और स्वरूप

(ख) लोक चेतना : अवधारणा एवं आयाम

तृतीय अध्याय: डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक चेतना : विविध आयाम

(क) सामाजिक चेतना (ख) राजनीतिक चेतना

(ग) धार्मिक चेतना (घ) आर्थिक चेतना

(ङ) सांस्कृतिक चेतना

चतुर्थ अध्याय: डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक : परिवर्तित स्वरूप

(क) सामाजिक परिवर्तन (ख) राजनीतिक परिवर्तन

(ग) धार्मिक परिवर्तन (घ) आर्थिक परिवर्तन

(ङ) सांस्कृतिक परिवर्तन

पंचम अध्याय: डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों की भाषा-शैली

(क) भाषा

(ख) शैली

उपसंहार:

संदर्भ ग्रंथ-सूची:

शोध-प्रबंध का सारांश

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक चेतना

साहित्य की विविध विधाओं में चाहे पद्य हो या गद्य सब का अपना महत्व है। साहित्य की अपनी भाषा होती है, अपनी शैली होती है, जो सामान्य बोलचाल की भाषा से सर्वथा पृथक होती है। पद्य यदि सरल है सहज है तो वह विचाराभिव्यक्ति में सक्षम होता है। गद्य के विभिन्न घटकों के संबंध में भी यही बात सत्य प्रतीत होती है। गद्य के अंतर्गत कथा साहित्य का विशिष्ट स्थान है। भारत देश में कहानियों का प्रचलन लोक कथाओं तथा लोक गाथाओं के रूप में प्रचलित रहा है। राजा-रानी, देवी-देवता और भूत-प्रेतों से विकसित होकर ये कथाएँ-गाथाएँ अब तक की यात्रा सम्पन्न कर सकी हैं। परन्तु इनमें उपन्यास सर्वथा नवीन विधा है। विद्वानों के मतानुसार हिन्दी में उपन्यास का विकास अँग्रेजी से बंगला भाषा में और फिर बंगला से हिन्दी में अनुवाद के रूप में हुआ। प्रथम उपन्यास 'भाग्यवती' अथवा 'परीक्षा गुरु' से लेकर अद्यतन सहस्रों उपन्यासकारों ने सहस्राधिक उपन्यास भिन्न-भिन्न शैलियों में लिखे। इन उपन्यासों में मानव की विभिन्न अन्तर-बाह्य गतिविधियों को चित्रित किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का विषय है –**"डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक चेतना।"** प्रस्तुत शोध-प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है।

शोध-प्रबंध का प्रथम अध्याय –**"डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' : व्यक्तित्व एवं कृतित्व"** है। इस अध्याय को दो उप अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम उप अध्याय – **"व्यक्तित्व"** है। इस उप-अध्याय में डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के जीवन का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक का जन्म 15 जुलाई,1959 को

ग्राम पिनानी, जिला पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखण्ड) में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री परमानन्द पोखरियाल और माता का नाम श्रीमती विश्वंबरी देवी पोखरियाल था। उनकी पत्नी का नाम कुसुमकांता था। उनके तीन सुपुत्रियाँ हैं – आरुषि निशंक, श्रेयसी निशंक और विदुषी निशंक। डॉ. निशंक की प्रारम्भिक शिक्षा पैतृक गाँव पिनानी, जिला पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखण्ड) के राजकीय विद्यालय में हुई थी। गाँव से 8 कि. मी. दूर स्थित जनता उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, दमदेवल, पौड़ी, गढ़वाल से हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1981 में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से इन्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1988 में वहीं से कला स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी। सन् 1990 में हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर से एम. ए. (हिन्दी) की उपाधि भी प्राप्त की। उन्हें हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखण्ड) से पी-एच.डी.एवं डी. लिट्. की मानद उपाधियाँ प्रदान की गईं। उन्हें अनेक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सम्मानों से विभूषित किया जा चुका है। डॉ. निशक का व्यक्तित्व अत्यन्त सहज और सौम्य है।

द्वितीय उप-अध्याय –**"कृतित्व"** है। इस उप-अध्याय में डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के रचना-संसार पर प्रकाश डाला गया है। डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। इन्होंने अब तक साहित्य की विभिन्न विधाओं मे सृजन किया है:

(i) काव्य-संग्रह:

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के सत्रह काव्य-संग्रह और दो (खण्डकाव्य) प्रकाशित हैं:

(1) समर्पण (2) नवांकुर (3) मुझे विधाता बनना है (4) तुम भी मेरे साथ चलो (5) देश हम जलने न देंगे (6) जीवन पथ में (7) मातृभूमि के लिए (8) कोई मुश्किल नहीं (9) ए वतन तेरे लिए (10) संघर्ष जारी है (11) सृजन के बीज (12) अंधेरा जा रहा है (13) भूल पता नहीं (14) मृगतृष्णा: दर्पण अंतर्मन का (15) मैं गंगा बोल रही हूँ (खण्डकाव्य) (16)

एम्स में जंग लड़ते हुवे (17) प्रकृति की गोद में माँ की पाठशाला (18) परीक्षा लेती ज़िंदगी (19) प्रतीक्षा (खण्डकाव्य)।

(ii) कहानी- संग्रह:

डॉ. निशंक के पंद्रह कहानी संग्रह प्रकाशित हैं:

(1) क्या नहीं हो सकता (2) भीड़ साक्षी है (3) बस एक ही इच्छा (4) रोशनी की एक ही किरण (5) खड़े हुवे प्रश्न (6) विपदा जीवित है (7) एक और कहानी (8) मेरे संकल्प (9) मील के पत्थर (10) टूटते दायरे (11) अंतहीन (12) केदारनाथ आपदा की सच्ची कहानियाँ (13) निशंक की सर्वश्रेष्ठ इक्कीस कहानियाँ (14) कथाएँ पहाड़ों की (संयुक्त) (15) रमेश पोखरियाल 'निशंक' की लोकप्रिय कहानियाँ।

(iii) उपन्यास-साहित्य:

डॉ. निशंक के ग्यारह उपन्यास प्रकाशित हैं:

(1) मेजर निराला (2) बीरा (3) निशान्त (4) पहाड़ से ऊँचा (5) छूट गया पड़ाव (6) पल्लवी (7) अपना पराया (8) प्रतिज्ञा (9) कृतघ्न (10) भागोंवाली (11) ज़िन्दगी रुकती नहीं।

(iv) बाल-साहित्य:

डॉ. निशंक की बाल साहित्य की छह कृतियाँ प्रकाशित हैं:

(1) आओ सीखें कहानियों से (2) स्वामी विवेकानन्द की जीवनी (3) कर्मयोगी स्वामी विवेकानन्द (4) शिकागो में स्वामी विवेकानन्द (5) आगे बढ़ो: स्वामी विवेकानन्द (6) सकारात्मक सोच: स्वामी विवेकानन्द।

(v) व्यक्तित्व विकास/जीवनी:

डॉ. निशंक की व्यक्तित्व विकास तथा जीवनी संबंधी आठ कृतियाँ प्रकाशित हैं:

(1) सफलता के अचूक मंत्र (2) भाग्य पर नहीं; परिश्रम पर विश्वास करें (3) संसार कायरों के लिए नहीं (स्वामी विवेकानन्द का जीवन प्रबंधन)

(4) सपने जो सोने न दें (डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम के जीवन पर) (5) हिमालय में स्वामी विवेकानन्द (6) युगपुरुष भारतरत्न अटल जी (7) एकात्म मानववाद के प्रणेता पं दीनदयाल उपाध्याय (8) भारतीय लोकतंत्र के पुरोधा पं. दीनदयाल उपाध्याय।

(vi) पर्यटन/संस्कृति/धर्म:

डॉ. निशंक की पर्यटन, संस्कृति एवं धर्म संबंधी पाँच कृतियाँ प्रकाशित हैं:

(1) धरती का स्वर्ग उत्तराखण्ड (भाग-1) (2) धरती का स्वर्ग उत्तराखण्ड (भाग-2) (3) धरती का स्वर्ग उत्तराखण्ड (भाग-3) (4) भारतीय संस्कृति, सभ्यता और परम्परा (5) विश्व धरोहर गंगा (गंगा एवं उत्तराखण्ड)।

(vii) डायरी/संस्मरण/यात्रा-वृतांत:

इन विधाओं से संबंधी डॉ. निशंक की नौ रचनाएँ प्रकाशित हैं:

(1) मेरी कथा मेरी व्यथा (शहीद के पत्रों का संकलन) (2) मॉरीशस की स्वर्णिम यात्रा (3) प्रलय के बीच (केदारनाथ यात्रा का सचित्र वर्णन) (4) आपदा के वह भयावह पल (5) एक दिन नेपाल में (6) मेरी विदेशी यात्राएँ (7) हिन्दू संस्कृति का प्राण है इंडोनेशिया (8) मेरी थाईलैंड यात्रा (9) लक्ष्यद्वीप: समुद्र में चमकता मोती।

डॉ. निशंक का प्रथम उपन्यास 'मेजर निराला' है। इसमें मेजर निराला नामक पात्र के द्वारा सैन्य जन जीवन एवं उनकी पत्नी सावित्री के द्वारा एक पत्नी व माँ का धर्म को दर्शाया गया है। इस उपन्यास में भारत और पाकिस्तान युद्ध का वर्णन है। इस विवेच्य उपन्यास में समाज, ग्रामीण जन जीवन, सैनिक जीवन और पर्यावरण के प्रति चिंतन किया गया है। मेजर निराला के माध्यम से फौजी ज़िंदगी, उनके घर से दूर होने पर परिवार में उत्पन्न समस्याओं

का यथार्थ चित्रण किया गया है। जिस प्रकार मेजर निराला ने जग्गू को सहारा देकर पढ़ाया उसी का फल उसके बेटे बबलू को मिला जब वह घर से भाग गया था। बबलू को भी एक दयालु दुकानदार की शरण नसीब हुई, जिससे उसको ज़िंदगी में फिर से सवारने का मौका मिला। इसमें डॉ. निशंक ने मानवता एवं बेसहारा बच्चों को सहारा देने पर बहुत जोर दिया है। इसके साथ मेजर निराला के अपने गाँव के प्रति लगाव को दर्शाते हुए डॉ. निशंक पहाड़ी इलाकों में होती सड़क दुर्घटनाओं, किसानों की दुर्दशा का सजीव वर्णन भी करते हैं।

'बीरा' उपन्यास में सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक, स्त्री जीवन मूल्य, स्त्री समस्या, सम्मान एवं सुरक्षा आदि का बड़े ही मनोयोग ढंग से वर्णन किया गया है। इस उपन्यास में दीपक के पिताजी की मृत्यु सड़क दुर्घटना में हो जाती है।छात्रवृत्ति के सहारे दीपक शहर में कॉलेज के लिए जा पाता है। बीरा, एक अनाथ बालिका अपने मामा के पास रहने वाली दीपक की सहायता से पढ़ाई कर पाती है। ये सब एक चेतना जनता में पैदा करता है कि किस तरह सरकार की योजनाओं के सहारे लोग शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं, अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं। इसमें पहाड़ी इलाकों की अभाव भरी ज़िंदगी को भी मार्मिक ढंग से दर्शाया गया है।

पहाड़ से ऊँचा उपन्यास में रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने मोहन नामक पात्र द्वारा उत्तराखंड तथा भारत के अन्य पिछड़े क्षेत्रों के अभावपूर्ण जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। मोहन के माध्यम से डॉ. निशंक ने अपनी मानव सेवा के मनोभावों को प्रकट किया है। गाँव में चिकित्सा की अच्छी सुविधा न होने के कारण ही मोहन के पिता की मृत्यु हो जाती है। तब मोहन यह प्राण लेता है कि वह डॉक्टर बनेगा। वह डॉक्टर की पढ़ाई पूरी करके डॉक्टर बन जाता है और अपने ही गाँव में एक प्रसव वेदना से पीड़ित गर्भवती महिला की जान बचाता है। इस उपन्यास में निशंक जी ने पहाड़ी जीवन की अन्य कई कथाएँ शामिल की हैं, परंतु गाँव की

चिकित्सा की असुविधा को विशेष रूप से केंद्रित करके हर तरह के अभाव तथा असुविधाओं को सफलता पूर्वक दर्शाया है।

'निशान्त' उपन्यास में डॉ. निशंक ने व्यक्ति और समाज के अंदर छिपे हुए कई पहलुओं को उद्घाटित किया है। डॉ. निशंक ने निशान्त एवं मिताली दो संभ्रांत परिवारों की पृष्ठभूमि को उपन्यास का वर्ण्य-विषय बनायी है। मिताली परिस्थितियों से जूझती हुई निरंतर परिवार को प्रगति पथ पर बढ़ाना चहती है। अपने छोटे भाई- बहन को उच्च शिक्षा दिलाना, उसके संघर्षशील एवं जुझारूपन का प्रतीक है। डॉ. निशंक ने निशान्त के चरित्र को सादगी पूर्ण जीवन शैली की प्रतिमूर्ति के रूप में उभारा है। निर्धन बेसहारा लोगों की मदद करना उसका नैतिक दायित्व दिखाकर डॉ. निशंक ने उदात्त मानवीय मूल्यों की स्थापना की है।

'अपना पराया' उपन्यास में डॉ. निशंक ने भारतीय आदर्श बहू के रूप में लक्ष्मी तथा दहेज के लोभ से भरी सास के रूप में सुरेश की माँ कमला जैसे पात्रों को दर्शाया है। दहेज के खिलाफ जनता में जागरूकता लाने के लिए दहेज विरोधी सुरेश को भी दर्शाया है। उपन्यासकार निशंक ने रूढ़िवादी मानसिकता का चित्रण करके यह स्पष्ट करने की कोशिश की कि किस तरह दहेज के चलते निर्धन घर की बेटी ससुराल में शोषण का शिकार बनती है। इस उपन्यास में राहुल के माध्यम से डॉ. निशंक ने अपना संदेश लोक तक पहुँचाने का काम किया है कि मातृभूमि से बढ़कर कुछ नहीं होता। दहेज के कारण भारतीय समाज में होते अनमेल विवाह को दर्शाने के लिए लक्ष्मी की छोटी बहन अनीता नामक पात्र का भी निर्माण किया और अंत में विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहन देने के लिए डॉ. निशंक ने इस उपन्यास के अंत में दहेज के बिना राहुल की शादी लक्ष्मी की छोटी विधवा बहन अनीता से करा देते हैं। 'अपना पराया' उपन्यास में नारी की विभिन्न समस्याओं को सही रूप में उकेरा गया है। इस उपन्यास में न केवल स्त्री के सामाजिक पक्ष पर बल दिया गया है, बल्कि उसके आधिकारिक मुद्दों पर भी बहस की गयी है।

'पल्लवी' उपन्यास में रमेश पोखरियाल 'निशंक' ध्रुव नामक पात्र के द्वारा यह दर्शाते हैं कि गरीब परिवार से भी एक महत्वाकांक्षी और परिश्रमी युवा जन्म ले सकता है। उपन्यास में पल्लवी नामक अमीर घर की बेटी ध्रुव जैसे गरीब लड़के से आकर्षित होकर ध्रुव की देश सेवा करने का सपना पूरा करने में मदद करती है। ध्रुव के लिए पल्लवी की सी.डी.एस. की तैयारी करने की सलाह, कई पाठकों को आर्मी में भर्ती होने के तरीके से अवगत करता है और जब ध्रुव की आर्मी में भर्ती होने का तार आया तब माँ का मंदिर में प्रसाद चढ़ाना तथा गाँव में सारे लोगों को प्रसाद बाँटना धर्म के प्रति उपन्यासकार निशंक की लोक चेतना के भाव को बहुत ही स्पष्ट रूप से दर्शाता है। पल्लवी और ध्रुव नवयुवक-युवती होते हुए भी उनका प्रेम पढ़ाई पर असर न होने देना तथा भविष्य के लिए सतर्क रहना वर्तमान पीढ़ी के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण सीख है। ध्रुव को अपनी पढ़ाई के खर्च के लिए ट्यूशन पढ़ाना तथा पल्लवी की सलाह से एक साथ अनेक विद्यार्थियों को ट्यूशन पढ़ाना, ध्रुव जैसे भविष्य के लिए लड़ने वाले विद्यार्थियों में आर्थिक लोक चेतना लाएगा। 'पल्लवी' उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसके कथानक में आदर्श एवं यथार्थ का अनूठा चित्रण किया गया है। एक और जहाँ कथा नायिका पल्लवी और कथा नायक ध्रुव के माध्यम से डॉ. निशंक जी ने उच्चतर जीवन मूल्यों की सशक्त अभिव्यक्ति करते हुए आदर्श चरित्रों का निर्माण किया है, वहीं दूसरी ओर कैप्टन किशन की पत्नी बिन्दु और दगाबाज वकील के चरित्रों का निर्माण करके समाज के कड़वे यथार्थ का चित्रण भी बहुत सुंदर ढंग से किया है।

'छूट गया पड़ाव' उपन्यास में आनंद सिंह, सरोज, डॉ. दुग्गल आदि पात्रों के माध्यम से डॉ. निशंक ने सामाजिक समस्याओं; बेरोजगारी, पहाड़ पर रहने वालों का संघर्ष, समर्पण और सहकार की भावना का चित्रण किया। इस उपन्यास की मुख्य पात्र सरोज के द्वारा एक ऐसे चरित्र को दर्शाया गया जो दिखने में साधारण है लेकिन असाधारण व्यक्तित्व का प्रतीक है। वह ऐसी जगह शिक्षिका बनकर जाती है, जहाँ पहले कोई शिक्षक जाना नहीं चाहता था और कोई जाता भी तो बहुत ही जल्द स्थानांतरण करवा लेता था। वह अपने अध्यापन कार्य को सेवा

भाव से करती है। उसके समर्पण से बिंगढ़वासी बहुत प्रभावित होते हैं। इस उपन्यास के माध्यम से डॉ. निशंक जनता में उस जागरूकता को लाना चाहते हैं जिसे हर कोई अपने पेशे को एक धर्म तथा उत्तरदायित्व समझ कर पिछड़े लोगों की उन्नति के लिए ही करें। सरोज गाँव वालों की सेवा के लिए अध्यापन का कार्य ही चुनती है क्योंकि डॉ. निशंक इस संदेश को जन-जन तक पहुँचाना चाहते है कि शिक्षा के द्वारा ही समाज की उन्नति हो सकती है।

डॉ. निशंक ने 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में गाँव की– अशिक्षा, बेरोजगारी, भौतिक संसाधन से कटे हुए और नशे आदि जैसी समस्याओं पर प्रकाश डाला है। इस उपन्यास में मानव हृदय में चलने वाली सद्वृत्तियों और असद्वृत्तियों के संघर्ष को दिखाकर स्द्वृत्तियों की विजय का चित्रण किया है। यह उपन्यास समाज के भटकते लोग एवं संवेदना शून्य तथा नैतिक मूल्यों को अहमियत न देने वाले लोगों के लिए प्रेरणा स्रोत है। इस उपन्यास में एक महिला पर दुराचारों को अंजाम देने वाले लोगों के विरुद्ध खड़े होकर लोहा लेने की प्रतिज्ञा की संघर्ष पूर्ण कथा प्रस्तुत की है। भागुली देवी का बेटा वीरू इस उपन्यास में आदर्श पात्र का प्रतीक होता है, जो पढ़-लिखकर भी शहर में न रहकर अपने गाँव मदनपुर में ही निर्वाह करके अपने गाँव और गाँव वालों की तरक्की के लिए खुद को न्योछावर कर देता है। गाँव को शराब के धंधे करने वालों से बचाने में वह अपने प्राण गैंग वालों के हाथ गवा देता है। वीरू की पत्नी सुनीता अपने पति की मौत का बदला लेने तथा वीरू का अधूरा सपना पूरा करने के लिए गाँव की अन्य महिलाओं के साथ मिलकर हत्यारे कुलदीप की हत्या करने में सफल हो जाती है। अंत में, डॉ. निशंक ने नारी सशक्तिकरण को सफलता पूर्वक दर्शाया है।

'कृतघ्न' उपन्यास में डॉ. निशंक ने अंबुज नामक पात्र द्वारा वर्तमान समाज में प्रचलित महिलाओं की विभिन्न समस्याओं को दर्शाते हुए समाज की बेसहारा महिलाओं के लिए जो करना चाहते हैं, डॉ. निशंक ने अंबुज के द्वारा इस उपन्यास में पूरा किया। पूनम नामक पात्र के द्वारा व्यक्ति की अनंत तृष्णा जो मनुष्य में कृतघ्नत्व उत्पन्न करता है उसको बहुत ही खूबी से

दर्शाया गया है। पूनम न तो अपने चाचा नरेन के पास संतुष्ट से रही और न, वह अपनी नौकरी से संतुष्ट थी। डॉ. निशंक ने इस उपन्यास में पत्रकारों पर भी करारा व्यंग्य किया है कि किस तरह किसी भी पीड़ित महिला की कहानी को बढ़ा-चढ़ाकर अपने फायदे और प्रसिद्धि के लिए अखबार में छपवाते हैं जिस से उसका समाज में जीना मुश्किल हो जाता है। सुकन्या जैसी पात्र के द्वारा डॉ. निशंक ने एक आदर्श नारी का निर्माण किया जो किसी भी लोभ-लालच के बिना अंबुज को अदालत में निर्दोष साबित करने के लिए पूरी कोशिश लगा कर सफल हुई। डॉ. निशंक ने इस उपन्यास में स्त्री के स्वाभिमान और उसकी अंतर्मनोदशा का वर्णन मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है।

भाँगोंवाली' उपन्यास में डॉ. निशंक ने 'भाँगोंवाली अम्मा' नामक पात्र, जो स्वर्गवासी शास्त्री जी की पत्नी है, के माध्यम से एक माँ के जीवन द्वंद्व को उद्घाटित किया है, साथ ही परिवार के टूटते रिश्ते और बिखरते विश्वास को भी उजागर किया है। यह उपन्यास उस माँ की करुण कहानी का जीवंत दस्तावेज है, जो अपनी संतान के जीवन को सदा सुखमय बनाने के लिए अपनी प्रत्येक सुख-सुविधा, शौक-शृंगार आदि का गला घोंट देती है। उसके चार-चार बेटे होते हुए भी उसकी अंतिम घड़ी में उन्होंने उसे बहुत ही लाचारी में दम तोड़ने के लिए बेसहाय बनाया। सिर्फ उनका सबसे छोटा बेटा जयदीप उनके अंतिम समय में उनकी सेवा के लिए होता है। युवा वर्ग इस उपन्यास से बहुत बड़ी सीख ले सकता है।

'ज़िन्दगी रुकती नहीं' उपन्यास में डॉ. निशंक केदारनाथ आपदा में अपने प्रियजनों को खोने और घर-परिवार के बिछोहने के बावजूद भी, जिन्होंने हार नहीं मानी, ऐसे जीवट लोगों की जीवटता को समर्पित करते हैं। इस उपन्यास में विक्रम और लक्ष्मी नामक पात्र द्वारा डॉ. निशंक उस दर्दनाक केदारनाथ घटना के बाद वाली धुंधली सी उम्मीद के दीया को दर्शाया जो उस आपदा के बचे लोगों में थी। उपन्यास के अंत में कमल चाचा नामक पात्र ने जो बातें विक्रम और लक्ष्मी को समझाया कि नकारात्मक सोच से ज़िंदगी रुक जाती है और जिजीविषा

एवं संवेदनशीलता से ज़िन्दगी कभी रुकती नहीं, उसी पर उपन्यास का कथानक आधारित है। कमल चाचा कहते हैं कि स्व से उठकर सर्व की भावना होना ही सच्ची इंसानियत है। डॉ. निशंक केदारनाथ आपदा को इस उपन्यास का आधार बनाकर वर्तमान पीढ़ी को यह संदेश देना चाहते हैं कि सबसे बुरी घटना में भी हिम्मत नहीं छोड़नी है और सिर्फ स्वयं और अपनों के लिए ही नहीं सम्पूर्ण समाज के हित के लिए ही सदैव कदम उठाया जाना चाहिए।

द्वितीय अध्याय **–"लोक और लोक चेतना : स्वरूप विवेचन"** है। इस अध्याय को दो उप-अध्यायों में बाँटा गया है। प्रथम उप-अध्याय **–"लोक : अर्थ, परिभाषा और स्वरूप"** है। इसके अंतर्गत लोक का अर्थ, परिभाषा और स्वरूप का विवेचन किया गया है। 'लोक' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है। जैसे सामान्य अर्थ, व्यापक अर्थ, लाक्षणिक अर्थ। विद्वानों का एक वर्ग 'लोक' को अंग्रेजी शब्द 'फोक' का पर्याय मानता है। 'फोक' की तुलना में 'लोक' की अर्थ व्याप्ति कहीं अधिक है। लोक उस जन का पर्याय है जो जागरूक, अहंकार विहीन और अपनी धरा के रूप, रंग, गंध और रस से ओतप्रोत, अपनी धरा की ऊर्जा से ऊर्जावान और इस धरा की चेतना से चेतन और जीवंत बना रहता है। भारतीयता की पहचान का वास्तविक स्रोत लोक का ज्ञान ही है। शास्त्र ज्ञान और लोक ज्ञान से ओतप्रोत, लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए, अपनी परम्परागत स्थिति में जो जीता है और अनुभव की रोशनी में अपना स्वतंत्र ज्ञान रखता है, वह लोक है। लोक परिवार, समाज, राज्य, राष्ट्र, भाषा, लोकतंत्र, आधुनिकता और प्रगतिशीलता के निर्माण का सबसे बड़ा स्रोत है ।

लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगरों और गाँव में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर के परिष्कृत, रुचि सम्पन्न, सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।

आदि में समाज में उसके सभी सदस्य लोक (फोक) होते हैं और इस शब्द के विस्तृत अर्थ को लें तो सभ्य राष्ट्र की पूरी जनसंख्या को लोक की संज्ञा दी जा सकती है; किंतु सामान्य प्रयोग में पाश्चात्य प्रणाली की सभ्यता में लोक वार्ता (फोक लोर), लोक संगीत (फोक म्यूजिक) आदि शब्दों में लोक का अर्थ संकुचित होकर केवल उन्हीं का ज्ञान कराता है जो नागरीक संस्कृति और टेक्नीकल शिक्षा के प्रवाहों से मुख्यतः परे हैं, जो निरक्षर हैं अथवा जिन्हें मामूली-सा अक्षर ज्ञान है, जो ग्रामीण और गँवार हैं। 'लोक' के स्वरूप को वैदिक साहित्य से लेकर आचार्य भरत तथा भरत के पश्चात् अब तक के विद्वानों ने स्थिर करने का प्रयास किया है। परन्तु तस्वीर अब भी धुँधली है। इसीलिए रामनरेश त्रिपाठी जैसे कवि 'लोक' के प्रकृत रूप को 'ग्राम्य' सम्बोधन के पक्ष में रहे हैं।

द्वितीय उप-अध्याय **–"लोक चेतना : अवधारणा एवं आयाम"** है। इसके अंतर्गत लोक चेतना की अवधारणा एवं आयामों का विवेचन किया गया है। चेतना शब्द संस्कृत की 'चित्' धातु में 'युच' और 'टाप्' प्रत्यय (चित्+युच टाप्) से मिलकर बना है। 'चेतना' का अर्थ है- बोध, ज्ञान, विवेक, बुद्धि आदि। यह वह शक्ति है जो ज्ञान का मूलाधार है। इसका बोध अंतर्निरीक्षण के द्वारा ही संभव है। 'चेतना' अंग्रेजी के कॉन्शसनेस (consciousness) के समतुल्य प्रयुक्त होने वाला शब्द है। चेतना मानव के आन्तरिक और बाह्य सभी प्रकार के जीवन चक्रों का बोध करने वाली शक्ति है। चेतना मानव के अंतःकरण की कमजोरियों का अंत करके, उसके जीवन का उत्कर्ष करती है और दूसरों के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। चेतना संघर्षोन्मुखी, अमानवीयता का विरोध करने वाली, अपने समूह की रक्षा करने वाली, लोकतंत्र के अंदर प्रवेश कर उसकी बुराइयों को उघाड़ने वाली, लोक हित चाहने वाली, क्रियाशील, परिवर्तनशील और ममय के अनुकूल अभिव्यक्ति चाहने वाली युग धारा है। अतः परिवार, समाज, राष्ट्र के उत्कर्ष के मूल में 'चेतना' का विस्तार ही निहित है।

चेतना उस प्रतिक्रिया को कहा जाता है जो परिस्थिति के ज्ञान से उत्पन्न होती है। चेतना को दूसरे शब्द में 'चेतन्य' कहा जाता है। चेतना वह मानव बल है जो मस्तिष्क से उत्प्रेरित होता है। व्यक्ति की हर प्रतिक्रिया उसकी चेतना पर आधारित होती है। सचेत व्यक्ति की यही विशेषता है कि उसे अपनी चेतना के द्वारा ही किसी व्यवहार, विषयों व वस्तुओं का ज्ञात होता है। बुद्धि की वह स्तर 'चेतना' है जिसके कारण ही व्यक्ति को बाह्य संसार की ओर अनुक्रियाशीलता, अत्यन्त अनुभूति का आवेग, चयन अथवा निर्माण करने की क्षमता होती है। चेतना जीवधारियों में रहने वाला वह तत्व है, जो उन्हें निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है। दूसरे शब्दों में हम उसे मनुष्य की क्रियाओं को चलाने वाला तत्व कह सकते हैं। अतः लोक चेतना से तात्पर्य है मूल परम्परागत आयाम की सराहना करना तथा उस ओर ध्यान देना।

तृतीय अध्याय –**"डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक चेतना : विविध आयाम"** है। इस अध्याय को पाँच उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है।

लोक चेतना के आयाम हैं– सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक। इन आयामों के द्वारा डॉ. निशंक ने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विषमताओं पर प्रहार किया है। उन्होंने समाज की बुराइयों को पाठक के सामने लाकर लोक को जागृत करने का प्रयत्न किया है। उनका प्रत्येक उपन्यास लोक चेतना के यथार्थ चित्रण से ओतप्रोत है।

प्रथम उप-अध्याय- **"सामाजिक चेतना"** है। इसके अंतर्गत समाज की विभित्र विद्रुपताओं को विश्लेषित किया गया है। डॉ. निशंक ने भारतीय समाज को समझने के लिए अपनी जन्मभूमि और कर्मभूमि का चयन किया। डॉ. निशंक के उपन्यास पहाड़ी जन जीवन पर केंद्रित होते हुए भी भारतीय समाज को प्रतिबिंबित करते हैं। डॉ. निशंक के लेखन के सम्मुख उनका अपना पहाड़ी समाज है। इस समाज की गतिविधियाँ हैं और इस लोक की हलचल है। उपन्यासों में वर्णित वातावरण के आधार इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि पहाड़ी

समाज भले ही पुरुष प्रधान हो, परन्तु महत्व स्त्री का और स्त्री के श्रम तथा संघर्ष का है। पुरुषों के पास कम काम नहीं है। डॉ. निशंक का 'लोक' ग्राम तक सीमित नहीं है। उन्होंने नगरीय जन-जीवन का भी चित्रण किया है, परन्तु इस लोक का जीवन डॉ. निशंक कृत्रिम मानते हैं। इस जीवन में न उन्मुक्त प्राकृतिक परिवेश है, न रिश्तों की गर्माहट, न परस्पर प्यार है, है तो केवल दमघोंटू वातावरण।

द्वितीय उप-अध्याय- **"राजनीतिक चेतना"** है। इसके अंतर्गत राजनीति के विभिन्न स्तरों की चेतना का विवेचन किया गया है। डॉ. निशंक उपन्यासकार होने के साथ-साथ एक सफल राजनेता भी हैं। उपन्यास 'ज़िन्दगी रुकती नहीं' के प्रधानजी के माध्यम से डॉ. निशंक ने वर्तमान राजनीति के विद्रूप चेहरे को पाठकों के सम्मुख रखा है। राजनीति के सबसे निचले क्रम अर्थात ग्राम पंचायत के स्तर की राजनीति की धरातलीय वास्तविकता यही है। गाँव का प्रभावशाली व्यक्ति अपने पूर्वजों के समय से चले आ रहे प्रभुत्व को अक्षुण्ण रखने के उद्देश्य से सरपंच या प्रधान का पद जीतता है। पाँच वर्ष बाद उसकी पंचायत यदि आरक्षित हो जाती है, तब वह अपनी बेटी, बहू और यहाँ तक की अपने नौकर-चाकरों में से किसी को चुनाव लड़वाता है ताकि वास्तविक सत्ता उसी के हाथ रहे।

तृतीय उप-अध्याय–**"धार्मिक चेतना"** है। इसके अंतर्गत धर्म के विभिन्न अंधविश्वासों, रूढ़ियों आदि को विवेचित किया गया है। आस्था हमें संस्कारित करती है। आस्था के कारण हम अच्छा करने की प्रेरणा पाते हैं और बुरा कार्य करने से डरते हैं । हमारे पहाड़ में हर मनुष्य के अन्दर श्रद्धा और आस्था कूट-कूटकर भरी है, इसलिए इसे देवभूमि भी कहा जाता है। करोड़ों हिंदुओं की आस्था के प्रतीक श्री बद्रीनाथ, श्री केदारनाथ, माँ गंगोत्री और माँ यमनोत्री इसी भूमि में हैं। महान है यह भूमि। तभी तो आज विश्व भर के लोग शांति की खोज में यहाँ पर आते हैं। हमारे ऋषि-मुनियों की तपस्थली भी रही है तपोभूमि। हजारों वर्षों पूर्व से हिमालय की कंदराओं में तपस्या और साधना करके विश्व और मानव कल्याण के लिए ऋषियों ने अपना जीवन अर्पित किया है। डॉ. निशंक ने धर्म के दोनों रूपों (लोक धर्म और

नागर धर्म) को समन्वित करने का सार्थक प्रयास किया है। एक ओर 'गाँव के लोग सामूहिक रूप से देव पूजा करने और गाँव में सुख समृद्धि है' कहकर वे लोक धर्म के महत्व को प्रतिपादित करते हैं।

चतुर्थ उप-अध्याय–**"आर्थिक चेतना"** है। इसके अंतर्गत सभी वर्गों की आर्थिक समस्याओं को उद्घाटित किया गया है। डॉ. निशंक के उपन्यासों में अर्थ संबंधी चेतना सर्वत्र है। 'भागोंवाली' उपन्यास के शास्त्रीजी का चेतना के स्तर पर होरी से साम्य है। शास्त्री जी भी अपने भाइयों को धोखा नहीं देना चाहिए। डॉ. निशंक की यही आदर्शवादी चेतना उनके समस्त उपन्यासों में स्थापित है। यह आर्थिक आदर्श चेतना ग्रामों के अतिरिक्त अन्यत्र हो ही नहीं सकती।

पंचम उप-अध्याय–**"सांस्कृतिक चेतना"** है। इसके अंतर्गत सांस्कृतिक चेतना को विवेचित किया गया है। संस्कृति का दायरा अत्यन्त विशाल है। व्यक्ति की सोच, विचार, खान-पान, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, संस्कार, धर्म, अध्यात्म, ज्योतिष, इतिहास, पर्व, त्यौहार, व्रत, मेले, उत्सवादि सब कुछ संस्कृति में समाहित हैं। यहाँ तक कि प्रातः काल उठने से लेकर सोने के समय तक के व्यक्ति की समस्त गतिविधियाँ संस्कृति के अंतर्गत आ जाती हैं। उत्तराखण्ड उत्सव प्रेमी राज्य है। लोक देवताओं के स्थानों पर मेलों का आयोजन सामान्यतः होता है। इस परम्परा का निर्वाह लोक में पीढ़ी दर पीढ़ी होता है।

डॉ. निशंक के उपन्यासों के कथानक की धुरी में लोक चेतना के विविध आयामों का प्रवाह है– निर्धन, दलित, पीड़ित, असहाय, दिव्यांग, नारी के प्रति सद्भावना आदि। उन्होंने अपने उपन्यासों में पहाड़ी जनजीवन के प्रामाणिक चित्रों को प्रस्तुत किया है। उन्होंने लोक जीवन की समस्याओं, वेदनाओं, जीवन यापन की कठिनाइयों, विडंबनाओं और पीड़ाओं को अपने

अनुभवों से महसूम ही नहीं किया, बल्कि विभिन्न पात्रों के द्वारा अभिव्यक्ति भी प्रदान की है। उनके उपन्यासों में पहाड़ी जनजीवन के अभावों का यथार्थ चित्रण है।

चतुर्थ अध्याय–**"डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में लोक : परिवर्तित स्वरूप"** है। लोक का स्वरूप सदा स्थिर नहीं रहता। इसमें परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन के अनुरूप लोक चेतना भी परिवर्तित होती रहती है। उपन्यासकार डॉ. निशंक परिवर्तन के पक्षधर हैं। परिवर्तन यदि पुरुष के जीवन में है तो स्त्री के जीवन में भी होना चाहिए। यही कारण है कि डॉ. निशंक के सभी औपन्यासिक नारी पात्रों के भीतर परिवर्तन की एक तड़प है। यह तड़प पल्लवी (पल्लवी), बीरा (बीरा), सरोज (छूट गया पड़ाव), लक्ष्मी (जिन्दगी रुकती नहीं), लक्ष्मी (अपना पराया), अम्मा (भागोंवाली), मिताली (निशान्त), सुकन्या (कृतघ्न), सुनीता (प्रतिज्ञा) तथा सावित्री (मेजर निराला) इन सभी स्त्री पात्रों में परिलक्षित होती है। 'पल्लवी' उपन्यास में जहाँ बिन्दु पति की मृत्यु के पश्चात अपने सास-ससुर की उपेक्षा करती है और वकील साहब से विवाह कर धोखा खाती है, वहीं पल्लवी दूसरा विवाह न कर अपना सारा जीवन ग्राम की सेवा में समर्पित करती है।

प्रथम उप-अध्याय–**"सामाजिक परिवर्तन"** है। इसके अंतर्गत समाज में आए विभिन्न परिवर्तनों को विवेचित किया गया है। यह सबसे बड़ा सामाजिक परिवर्तन है जिस ओर डॉ. निशंक संकेत कर रहे हैं। दहेज प्रथा हमारे समाज का कलंक रहा है और अभिशाप भी न्यूनाधिक यह कलंक और अभिशाप अब भी चल रहा है। इस दहेज प्रथा ने हजारों-लाखों युवतियों- निरपराध युवतियों को असमय काल के गाल में पहुँचाया है। बीरा के चरित्र के द्वारा डॉ. निशंक ने युवतियों को एक नयी ऊर्जा प्रदान की है और यह ऊर्जा है स्वलम्बन की, समाज सेवा की।

द्वितीय उप-अध्याय–**"राजनीतिक परिवर्तन"** है। इसके अंतर्गत विभिन्न राजनीतिक बदलावों का विवेचन किया गया है। राजनीति को कभी जनता की सेवा का माध्यम माना जाता था। निशंक की आदर्श परिकल्पना उपन्यास 'ज़िन्दगी रुकती नहीं' के 'प्रधान जी' के रूप में व्यक्त हुई है। इसके विपरीत अधिकांश नेता राजनीतिक पद पाते ही गर्व से चूर हो जाते हैं। पद पाने के पूर्व तक चुनाव जीतने के लिए 'जनता की सेवा करने के लिए सेवक' बनते हैं। फिर जनता को अपने सहज कार्यों को कराने के लिए इनसे 'विनती' करनी पड़ती है–'सेवक' से मालिक (जनता) विनती करता है। वर्तमान राजनीति का कड़वा सच यही है।

तृतीय उप-अध्याय–**"धार्मिक परिवर्तन"**है। इसके अंतर्गत धार्मिक क्षेत्र में आए परिवर्तनों को विश्लेषित किया गया है।धर्म का स्वरूप भी परिवर्तनशील रहा है, किन्तु केवल बाह्य रूप ही । "धारयेति इति धर्मः" के अनुरूप जो तत्व धारण करने योग्य हैं, वे तो शाश्वत हैं, अपरिवर्तनीय हैं । इन तत्वों पर देश-काल-वातावरण किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ता और इसका आधार है आस्था और श्रद्धा। इसी श्रद्धा के धारण करने के कारण ही डॉ. निशंक के तमाम औपन्यासिक पात्र श्रेष्ठ कार्य और मानवीय चेष्टाएँ करने हेतु तत्पर रहते हैं और आदर्शों की स्थापना करने हेतु प्रयत्न करते रहते हैं। 'मेजर निराला' का निराला, 'बीरा' का दीपक, 'छूट गया पड़ाव' की सरोज, 'पहाड़ से ऊँचा' का मोहन और गीता, 'पल्लवी' का ध्रुव और पल्लवी, 'निशान्त' का निशान्त, 'भागोंवाली' के शास्त्री जी, 'प्रतिज्ञा' की सुनीता, 'अपना-पराया' के पांडे जी और राहुल, 'कृतघ्न' का अम्बुज तथा 'ज़िन्दगी रुकती नहीं' के विक्रम और कमल ऐसे पात्र हैं जो धर्म के आदर्श रूप की स्थापना के लिए कटिबद्ध हैं और उसके लिए पौरुष करते हैं।

चतुर्थ उप-अध्याय–**"आर्थिक परिवर्तन"**है। इसके अंतर्गत आर्थिक क्षेत्र में आए परिवर्तनों की विवेचना की गई है। परिवर्तित समय में एक और क्रांतिकारी कार्य परिलक्षित हुआ । पहले नारी शक्ति का कार्य घर की चारदीवारी तक था। अधिक हुआ तो कृषि कार्यों के लिए खेतों

तक अपना योगदान करती थीं, घास और लकड़ी लाती थीं तथा पशु उत्पाद–दूध निकालना, दूध से छाछ, दही, घी मक्खन आदि निकालने में ये सहयोग करती थीं। परन्तु लड़कियाँ अब शिक्षा प्राप्त कर सरकारी नौकरी कर रही हैं, निजी नौकरी कर रही हैं और परिवार को आर्थिक दृढ़ता प्रदान कर रही हैं। इतना ही नहीं, डॉ. निशंक अपने उपन्यासों के स्त्री पात्रों को 'बेचारगी' से बाहर निकालते हैं और उन्हें आर्थिक स्वावलम्बन प्रदान करते हैं। 'छूट गया पड़ाव' की नायिका सरोज, सरकारी शिक्षिका है और दुर्गम पहाड़ी ग्राम-बिनगढ़ में नौकरी करती है। 'पल्लवी' उपन्यास की नायिका अपने सैनिक पति- ध्रुव के शहीद होने पर स्वयं ही फौज में भरती होती है और अधिकारी बनती है।

पंचम उप-अध्याय – **"सांस्कृतिक परिवर्तन"** है। इसके अंतर्गत सांस्कृतिक स्तर पर आए परिवर्तनों को उद्घाटित किया गया है। संस्कृति अपरिवर्तनशील होती है। तथापि परिवर्तन तो प्रकृति का नियम है। परिवर्तन संस्कृति में भी परिलक्षित होता है। भारतीय संस्कृति में तो परिवर्तन परिलक्षित होता ही है, लोक संस्कृति में भी परिवर्तन परिलक्षित होता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अति विकसित रूप का प्रभाव लोक संस्कृति पर भी पड़ा है और परिवर्तन उसमें भी हुआ है। बाजारवाद की गिरफ्त में लोक संस्कृति भी आ चुकी है। पश्चिमी सभ्यता और आधुनिकता का लोक पर प्रभाव पड़ा है। इन परिवर्तित हो रहे सांस्कृतिक प्रतिमानों के प्रति उपन्यासकार डॉ. निशंक का दृष्टिकोण स्वस्थ है। 'पल्लवी' उपन्यास की नायिका 'पल्लवी' के मिलिट्री अफसर बनकर गाँव लौटने पर समूचा गाँव आनन्दित होकर ढोल नगाड़ों एवं डी.जे. के दमघोंटू कानफाड़ संगीत की अभिव्यक्ति के द्वारा खुशी की अभिव्यक्ति करता है।

लोक में जब परिवर्तन होते हैं तो समाज के प्रत्येक अंग में यह परिलक्षित होता है। विवाह संस्कार भारतीय संस्कृति का एक पावन अंग है। समाज का आकार-प्रकार प्रायः एक-सा नहीं रहता। प्रत्येक सामाजिक संरचना परिवर्तन के अधीन है। पहाड़ी जीवन में लोक को डॉ. रमेश

पोखरियाल 'निशंक' ने यथावत शब्द तो दिये ही हैं, उनमें हो रहे परिवर्तनों को भी उपन्यासकार ने पढ़ा है, समझा है और विश्लेषित किया है।

पंचम अध्याय - **"डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों की भाषा-शैली"**है। इस अध्याय को दो उप-अध्यायों में नियोजित किया गया है। प्रथम उप-अध्याय- **"भाषा"** है। इसके अंतर्गत भाषा का अर्थ, परिभाषा एवं डॉ. निशंक के उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। रचनाकार जो सृजन करता है, भाषा उसे प्रदर्शित करने का माध्यम होती है। भाषा प्रत्येक रचनाकार की अलग-अलग होती है। यह शैली रचनाकार के व्यक्तित्व की परिचायक भी होती है। डॉ. निशंक ने तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज, शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है। उन्होंने मुहावरे और लोकोक्ति का भी प्रयोग किया है, जिससे भाषा रोचक होने के साथ-साथ सजीव भी हो उठी है। अलंकारों के प्रयोग से उनकी भाषा में मनोरमता आई है। उनके उपन्यासों में पात्रानुकूल, सांकेतिक तथा आलंकारिक भाषा का प्रयोग हुआ है।

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के अधिकतर उपन्यास ग्राम्य जीवन पर केंद्रित हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज के समस्त जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। उन्होंने अपने हर उपन्यास के पात्रों को निराशा से हौसला देकर फिर से आत्मविश्वास के साथ समाज को सुधारने उठ-खड़ा होते प्रस्तुत किया है। सामान्यतः भाषा को वैचारिक आदान प्रदान का माध्यम कहा जा सकता है। भाषा आंतरिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। इतना ही नहीं, वह हमारे अन्तर के निर्माण विकास, हमारी अस्मिता तथा सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान का भी साधन होती है। भाषा के अभाव में मनुष्य अपूर्ण और पशुवत् होता है।

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने अपने सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में समुचित भाषा का प्रयोग किया है। डॉ. निशंक को अपनी लोक भाषा से हार्दिक प्यार है। डॉ. निशंक ने संग्रहीत लोकभाषा के मात्र उन शब्दों को ग्रहण किया गया है, जिनके अर्थ उनके साथ नहीं दिये गये

हैं। इनके अतिरिक्त सैकड़ों शब्द ऐसे प्रयुक्त हुए हैं, जो लोकभाषा –गढ़वाली के हैं। लोक संस्कृति और लोक भाषा का प्रभाव डॉ. निशंक के समस्त उपन्यासों में परिलक्षित होता है।

डॉ. निशंक को हिन्दी के विशुद्ध रूप के प्रति कोई आग्रह नहीं है। जो भाषा रूप सहज है और सर्व स्वीकार्य है, उसी का प्रयोग करने के वे पक्षधर हैं। इनके विचारों के अनुरूप ही डॉ. निशंक की औपन्यासिक भाषा– सहज, सरल और बोलचाल' की है।

द्वितीय उप-अध्याय –**"शैली"** है। इसके अंतर्गत शैली के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए निशंक के उपन्यासों की शैली को विवेचित किया गया है। प्रत्येक उपन्यासकार की अपनी अलग शैली होती है। जिसकी सहारे कथा को कथावस्तु में बदल दिया जाता है। उपन्यासकार डॉ. निशंक की भी अपनी शैली है। उसी शैली की सहायता से उन्होंने अपने उपन्यासों को श्रेष्ठता प्रदान की है। भाषा के माध्यम से साहित्यकार अपने विचारों को शब्द रूप देता है तो शैली की सहायता से उन विचारों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। परिवेश शैली का भी उपन्यास के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। कथा का विकास किसी न किसी परिवेश में होता है। डॉ. निशंक की उपन्यासों में प्रयुक्त प्रमुख शैलियाँ हैं– आलंकारिक, चित्रात्मक आदि।

डॉ. निशंक ने लोक चेतना के विविध आयामों (सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक) के परिवेश के तन्तु अपने उपन्यासों में निर्मित किए हैं। अपने उपन्यासों के द्वारा उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विषमताओं पर प्रहार किया है। उन्होंने समाज की बुराइयों को पाठक के सामने लाकर लोक को जागृत करने का प्रयत्न किया है। उनका प्रत्येक उपन्यास लोक चेतना के यथार्थ चित्रण से ओतप्रोत है।

शोध-प्रबंध के निष्कर्ष बिन्दु

1. विद्वान ग्राम्य संस्कृति से लोक चेतना का अर्थ ग्रहण करते हैं।
2. डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' ने अपने उपन्यासों में जिस लोक चेतना की बात की है, उसका अभिप्रेत यही ग्राम्य संस्कृति है।
3. डॉ. निशंक लोक चेतना के अंतर्गत उत्तराखण्ड के पहाड़ी ग्रामों का यथार्थ चित्रण करते हैं। इन्हें उसके स्वस्थ और प्राकृतिक परिवेश से लगाव है।
4. डॉ. निशंक अपने उपन्यासों के माध्यम से पहाड़ी ग्रामों की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तंत्र की व्याप्ति और उसकी संचालन-प्रक्रिया को प्रस्तुत किया है।
5. डॉ. निशंक के उपन्यास-साहित्य में अभिव्यक्त लोक चेतना वस्तुतः पहाड़ी अंचल की ही लोक चेतना नहीं है, अपितु समूचे देश की लोक चेतना की परिचायक है।
6. समय परिवर्तनशील है, तदनुसार परिवर्तन लोक में भी हुआ है। डॉ. निशंक के उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का सजीव वर्णन है।
7. डॉ. निशंक की औपन्यासिक भाषा बोधगम्य और पात्रानुकूल होते हुए, परम्परागत मुहावरों से सुसज्जित है। उनके द्वारा गढ़े गये नवीन मुहावरे भाषा की सम्प्रेषण शक्ति की वर्धक है।
8. डॉ. निशंक के उपन्यासों की लेखनगत प्रमुख शैलियाँ हैं– चित्रात्मक, आलंकारिक आदि।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ:

1. रमेश पोखरियाल 'निशंक', मेजर निराला, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
2. रमेश पोखरियाल 'निशंक', बीरा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
3. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पहाड़ में ऊंचा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
4. रमेश पोखरियाल 'निशंक', निशान्त, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2008
5. रमेश पोखरियाल 'निशंक', अपना पराया, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
6. रमेश पोखरियाल 'निशंक', पल्लवी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
7. रमेश पोखरियाल 'निशंक', छूट गया पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
8. रमेश पोखरियाल 'निशंक', प्रतिज्ञा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2014
9. रमेश पोखरियाल 'निशंक', कृतघ्न, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2015
10. रमेश पोखरियाल 'निशंक', भागोंवाली, प्रभात पकाशन, दिल्ली, 2015
11. रमेश पोखरियाल 'निशंक', जिन्दगी रुकती नहीं, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021

सहायक ग्रंथः

1. अभिमन्यु सिंह, लोक साहित्य सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रतिमान, प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, महाराष्ट्र, 2021
2. कपिलदेव पांवर, निशंक के साहित्य में लोक तत्व, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022
3. कुंदन उप्रेती, लोक साहित्य के प्रतिमान, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1971
4. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1957

5. कृष्णदेव उपाध्याय, भारतीय लोक विश्वास, हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद, 1991
6. कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोक संस्कृति, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1989
7. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014
8. गोविंद चातक, संस्कृति- समस्या और संभावना, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
9. गोपाल शर्मा, निशंक-एक अंतरंग पाठ, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021
10. गोविंद चातक, भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ: मध्य हिमालय, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
11. गणपति चंद्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (भाग 1, भाग 2), लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2015
12. डी. डी. शर्मा, उत्तराखण्ड का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, अंकित प्रकाशन, हलद्वानी, 2017
13. दानबहादुर पाठक एवं डॉ. मनोहरगोपाल भार्गव, भाषा विज्ञान, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ, 2015
14. दिनकर जोशी, भारतीय संस्कृति के सृजन, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 2022
15. देवीसिंह पोखरिया, उत्तराखण्ड: लोक संस्कृति, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 2009
16. नगेन्द्र ध्यानी, डॉ. निशंक की सृजन यात्रा, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2017
17. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2013
18. नीलम सराफ़, हिंदी उपन्यास: सामाजिक समस्याएँ, हिंदी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 2022
19. पंकज विष्ट, धर्म: प्रासंगिकता के सवाल, समयांतर प्रकाशन, दिल्ली, 2006
20. परशुराम शुक्ल 'विरही', लोक संस्कृति: अवधारणा और तत्व, म.प्र. हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2011

21. प्रवेश कुमार, लोक साहित्य, भाषा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021

22. प्रेम सिंह, भ्रष्टाचार: विरोध, विभ्रम और यथार्थ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015

23. बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012

24. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015

25. बिहारी लाल जालंधरी, उत्तराखंडी भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन, देवभूमि प्रकाशन, देहरादून, 2012

26. भारत यायावर (सं), हिंदी भाषा (महावीर प्रसाद द्विवेदी), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007

27. मयंक मुरारी, लोक जीवन पहचान, परंपरा और प्रतिमान, प्रलेक प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, महाराष्ट्र, 2021

28. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', कथाकार निशंक के उपन्यासों में जीवन-मूल्य, डायमंड बुक्स, दिल्ली, 2017

29. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', डॉ. निशंक के काव्य में इन्द्रधनुषी चिंतन, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2019

30. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', डॉ. निशंक के उपन्यासों में जीवन-दर्शन, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2019

31. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', डॉ. निशंक की कहानियों में मानवीय संवेदना, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2019

32. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' के उपन्यासों में जीवन मूल्य, विनसर पब्लिसिंग कम्पनी, देहरादून, 2009

33. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', डॉ. निशंक की रचनाधर्मिता, हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 2021
34. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' और राष्ट्रीय शिक्षा नीति, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2022
35. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण' एवं बेचैन कण्डियाल, हिमवंत का राष्ट्रीय कवि: डॉ. निशंक, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2021
36. रवींद्र भ्रमर, हिंदी साहित्य में लोक तत्व, भारत साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1965
37. राघव प्रकाश, शैली विज्ञान और पाश्चात्य एवं भारतीय साहित्यशास्त्र, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1983
38. राजमणि शर्मा, आधुनिक भाषा विज्ञान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
39. रामचंद्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2006
40. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
41. रामविलास शर्मा, लोक जीवन और साहित्य, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1955
42. रैल्फ फोक्स, उपन्यास और लोक जीवन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 1957
43. रमा, देश प्रेम, प्रकृति और पहाड़, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020
44. रमेश पोखरियाल 'निशंक', जीने का नाम ज़िन्दगी, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021
45. रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
46. लखन लाल खरे, लोकभाषा और लोक साहित्य पर वैश्वीकरण का प्रभाव, शासकीय महाविद्यालय, कोलारस (म. प्र.), 2009

47. विवेक शंकर, हिंदी साहित्य, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2016
48. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृथ्वीपुत्र, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, 1949
49. विद्या चौहान, लोक साहित्य, सरस्वती प्रकाशन, कानपुर, 2020
50. शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य: युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1972
51. शरर लाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, हिंदुस्तानी एकाडेमी, इलाहाबाद, 2015
52. शशिभूषण शीतांशु, शैली और शैली विश्लेषण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
53. श्याम सुंदर दुबे, लोक परम्परा पहचान और प्रवाह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2003
54. श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1954
55. श्रीराम शर्मा, लोक साहित्य सिद्धांत और प्रयोग, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1992
56. सुरेश गौतम, भारतीय लोक साहित्य कोश, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
57. सत्येंद्र, लोक साहित्य विज्ञान, शिवलाल एंड कम्पनी, आगरा, 1971
58. त्रिभुवन सिंह, हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, वाराणसी, 2014

कोशः

1. मानक हिन्दी कोश, (सं) रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1978
2. संस्कृत-हिन्दी कोश, बामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स, दिल्ली, 1989
3. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1, 2), (सं.) धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल प्रकाशन, वाराणसी, 2000
4. ज्ञानशब्द कोश, (सं) मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, 1986

पत्रिकाएँ:

1. शोध सरिता, सं. विनय कुमार शर्मा, अंक 36, अक्टूबर-दिसम्बर, 2022

2. समसामयिक सृजन, संपा. डॉ. महेन्द्र प्रजापति, अंक: 1, जनवरी-मार्च, 2002

3. संकल्य, संपा. डॉ. गोरख नाथ तिवारी, अंक: 2, अप्रैल-जून, 2024

4. द्विभाषी राष्ट्रसेवक, संपा. प्रो. मोहन, अंक:2, मई, 2024